तलाश

(लेखिका की प्रतिध्वनित कहानियाँ)

यह पुस्तक
मेरे जीवन साथी
बृजेश मेहरोत्रा
को
समर्पित

तलाश

(लेखिका की प्रतिध्वनित कहानियाँ)

डॉ. ममता मेहरोत्रा

किताबवाले पब्लिकेशन
नई दिल्ली-110 002

© लेखिका एवं प्रकाशक

संस्करण : 2020

ISBN : 978-81-945561-4-5

प्रकाशक :
किताबवाले पब्लिकेशन
22/4735, प्रकाश दीप बिल्डिंग,
अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110 002

मुद्रक :
इन-हाउस
दिल्ली-110 002

भूमिका

''याद न जाये बीते दिनों की, उन्हें दिल क्यों बुलाये।''

स्मृतियाँ क्यों इतना रुलाती हैं, क्यों इतने करीब हो हमेशा यादों के सायों में कैद हो पीड़ा पहुँचाती हैं, शायद .....मन होता ही इतना संवेदनशील है कि यह यादों को, हर सम्बन्धों को अपने से जुदा नहीं करना चाहता।

हाय रे! सृष्टि का नियम, हम यादों के साये में कैद तो हो जाते है पर वक्त को कैद कर पाने में हम असक्षम है, तभी तो वक्त बीत जाता है, कारवाँ गुजर जाता है और हम खड़े-खड़े बयार देखते रह जाते हैं।

जीवन में कितने आये और कितने बिछुड़ गये, यह हम बहुत शिद्दत से महसूस करते हैं और कहीं गहरे हमें उनके जाने की कमी का अहसास होता है। चाह कर भी कुछ नहीं कर पाते क्योंकि हम इंसानी सीमाओं में बंधे हुए है। रिश्तों को संजोकर रखना अपने आप में एक इंसानी कौशल है जिससे हर शख्स मसरूफ़ नहीं होता! रिश्ते रेत की तरह होते हैं, और बहुत ही आसानी से हाथ से फिसलकर छूट जाते हैं। इन्हें बहुत ही संभालकर और हिफ़ाजत से हृदय की तिजोरी में बन्द करके रखना पड़ता है।

जीत या हार हमारे मन की उपज हैं। हम स्वयं ही स्वयं से हार मान लेते है। अगर हम अपने मन को केन्द्रित कर नियंत्रित कर लें तो हारना मुश्किल हो जायेगा और जीतना एक आदत में शुमार हो जायेगा।

तलाश संस्करण में कैद कुछेक ऐसी कहानियाँ हैं जो मुझे भीतर तक छू जाती हैं। किताबवाले प्रकाशन से सुधी पाठकों को मेरी यह एक अनुपम भेंट है। इसकी कहानियाँ कहीं-न-कहीं हमें स्वप्नों को जीने की एक अनूठी प्रेरणा देती हैं जिसे हम सबको आत्मसात कर आगे बढ़ना चाहिए।

जीवन स्वयं एक बेशकीमती स्वप्न है। जी लो इसके पहले की टूट कर बिखर जाये।

–ममता मेहरोत्रा

अनुक्रमणिका

1.	तलाश	1
2.	वो सात दिन	8
3.	तिजारत	14
4.	मकान	20
5.	परछाईं	26
6.	हॉर्न	30
7.	दोराहा	34
8.	साँसें	39
9.	अंतिम इच्छा	49
10.	समाजसेवा	63
11.	तीज	71
12.	मोल	79
13.	प्रतिशोध	85
14.	प्रोफेशनल	95
15.	सफर	102
16.	हँसी	113
17.	संघर्ष	121
18.	दिसंबर का महीना	133

19. दोयम मूल्य 142
20. श्मशान की आग 148
21. कबूतरबाजी 155
22. अक्स 165
23. रेहन 173
24. वह काला कप 184
25. ऋषिकेश पड़ाव 192
26. हाईवे की यात्रा 199
27. टुकड़ों-टुकड़ों में औरत का..... 204
28. अछूत 213
29. रोप-वे 230
30. दद्दू के अतीत से 237
31. परिचय 244
32. जाम 252
33. कूँ-कूँ 255

तलाश

वह सघन वन में भटक रही थी—कब से, शायद इसका उसको भी ज्ञान नहीं था। लेकिन यह भटकाव था या तलाश थी ? उसको किसकी तलाश थी, वह तरूणी अनभिज्ञ थी। पर वह इतना जानती थी कि वह भटक रही थी। यह भटकाव उसके मन की चाह से उपजी कोई गहरी संवेदना थी, और वह अपने को अपूर्ण समझ रही थी। स्त्रीत्व की संपूर्ण मंजिलों को पाकर भी वह अपूर्ण थी। हर क्षण उसको ऐसा प्रतीत होता, मानो उसका कुछ छूट—सा गया था। कुछ हिस्सा शायद वह बहुत पीछे छोड़ आई थी और आज वापस जाकर उसको पकड़ कर वह अपना बनाना चाहती थी। पगली थी, बेचारी। जो पीछे रह जाता है, उसे कोई चाहकर भी कहाँ पकड़ पाता है! वह तो अतीत का एक अभिन्न हिस्सा बन जाता है। और यह सत्य है कि जो चीज अपने से हट गई या अपने से छूट गई, वह एक अनंत में विलीन हो जाती है। उसी अंधकार में शायद वह बहुत पहले अपने को खो चुकी थी। आज की उसकी खोज निरर्थक नहीं, तो फिर क्या थी? वह जिद्दी थी, जो स्वयं को कष्ट देकर अपने खोए हुए कल के कुछ पन्नों को पकड़ने की चाह आज भी अपने भीतर कहीं गहरे में सँजोए हुए थी। हाँ, शायद उसने किसी वृक्ष की छाँव के नीचे अपनी खोई हुई वस्तु को आवरण से हटते देखा था। हाँ, वही तो था, अभी तो था, यहीं तो था। बहुत दूर भी उड़ेगा, तो हवा में इतना बहाव न था कि वह उस वस्तु को बहुत दूर तक पहुँचा दे। यहीं कहीं होगा और उसके समीप होने की आहट से ही उसके कदमों में तेजी आ गई।

मंजिल करीब देख ऐसे भी उत्साह बढ़ जाता है और कदम तेज हो जाते हैं। वह भी द्रुत गति से आगे बढ़ने लगी। तभी एक छाया—सा दृश्य क्षण—प्रतिक्षण उसके पास आता प्रतीत हुआ, वह एक मृग था। दूर से उसे वह अकेला खड़ा प्रतीत हुआ, पर नहीं, उसके पास आने पर दृश्य काफी स्पष्ट और सुंदर था। एक माँ अपने छौने को स्तनपान करा रही थी। हाय रे, मातृत्व! सारा ब्रह्मण्ड इसी के इर्द—गिर्द सिमट—सा जाता है। सहसा

उसके कदमों में भी जैसे बेड़ियाँ पड़ गई। अपनी निरर्थक यात्रा का उसको जैसे ज्ञान हो गया। चलने से पहले, वह अपने अबोध बच्चों को सोता छोड़ आई थी। उसके हृदय ने उसको धिक्कारा। हाय री, अबला नारी! तू कितनी निर्दयी है? माँ का हृदय भी कहीं इतना कठोर होता है? अरे, तूने ऐसा सोचा भी कैसे कि बच्चे तेरे बिना रह लेंगे? कहीं प्रकृति में कोई माँ अपने बच्चों को अकेला छोड़ देती है? माँ एक दायित्व ही नहीं, एक उपलब्धि है। एक समर्पण और त्याग ही नहीं, एक संपूर्णता है, लेकिन वह इतनी असानी से उसका तिरस्कार कर निकल पड़ी, अपने वजूद की खोज में।

वह 'धम्म' से एक वृक्ष की ओट में बैठ गई। अपने छौने के लिए उसका मन कलप उठा। उसके भी घर में दो बच्चे हैं। उसने उनको छोड़ने का कैसे मन बना लिया ? छिक्कार है उसके स्त्रीत्व पर, जो घर छोड़कर वह इस सघन वन में भटकने के लिए आ गई और वृक्ष–वृक्ष, डाली–डाली वह स्वयं को खोज रही है। एकबारगी मन किया कि वापस लौट चले और वह मुड़ी भी, पर पेड़ों से टकराकर रोशनी का एक तिलिस्म उसे दूर कहीं दूर नजर आया। एक सुनहरा तिलस्म, एक अजीब–सा जादू, एक अलौकिक कशिश। यह तिलिस्म कुछ–कुछ उसके बचपन के सपनों–सा हकीकत बन उसे दूर, कहीं दूर, पर स्पष्ट नजर आ रहा था। वह इसी को तो ढूँढ़ने निकली थी। शायद वही उसका सपना था। अभी तक तो वह सिर्फ भटकती रही थी, पर अब वह उसको पाकर ही रहेगी। मंजिल के इतने करीब आकर अब वह वापस नहीं जाएगी।

घर जाते हुए उसके कदम रुक गए। मन में हूक–सी उठी वापस मुड़ने के लिए, पर वह तिलिस्म उसके ऊपर जैसे एक जादू–सा कर गया था। वह उसको पाना चाहती थी। उसी तिलिस्म की तलाश में तो वह बचपन से भटक रही थी। बचपन में भी उसने उसको पाना चाहा था, पर बाबूजी की एक कड़ी निगाह मानो सबकुछ कह गई थी। उसके सपनों के महल को चूर–चूर कर गई थी।

''अरे, तुलसी की माँ! हमारे घरों की लड़कियाँ भी कहीं नौकरी करती हैं और नाच–गाना–उसका तो दूर–दूर तक सवाल ही नहीं उठता। अरे! कोई तवायफ का कोठा तो हमने नहीं खोल रखा है ना, फिर यह सवाल कहाँ से पैदा हुआ ? अरे, भले घर की लड़की है, चुपचाप हाथ पीले करो और जिम्मेदारी से मुक्त हो जाओ।''

माँ ने हामी भर दी थी। औरतों की मौन स्वीकृति ही हामी का पूर्ण संकेत है। शायद सदियों से चुप रहते–रहते औरत बोलना ही भूल गई है। उसने औरतों को तो खूब बोलते सुना है, पर वही व्यर्थ की बात, जिसका जीवन से कोई लेना–देना नहीं। औरतों को ऊल–जलुल के वार्त्तालाप में व्यस्त करके उसके सोचने की संपूर्ण क्षमता पुरुष ने खत्म कर दी है और उसकी माँ इसका अपवाद नहीं थी। शायद औरतों के पास दिमाग भी होता है, उनको इस बात का ठीक से ज्ञान नहीं होता।

''तुम औरतें भी बस रहोगी निरी मूर्ख–की–मूर्ख। अरे, जब कुछ नहीं समझ में आता, तो बहस पर उतारू हो जाती हो!''

तुलसी की माँ बहस न कर पाई। सिर्फ आँख के पोरों में फँसे हुए पानी को धोती के पल्लू से सोख लिया और उसी पानी में उसका सपना पानी–सा बनकर बह गया।

''जा बेटी, तेरी नियति भी आम औरतों जैसी है। मैं चाहकर भी तेरे जीवन की दिशा और दशा न बदल पाई!''

उस शाम दीवाली के पकवान छानते हुए उसकी माँ का कलेजा फट पड़ा। जो अविरल धारा आँसू की गिरी, उसमें समूचा फँसा हुआ तूफान तेजी से बह गया। उसमें से एक बूँद छिटककर तुलसी के दामन में आकर फँस गई। उसकी आत्मा चीखी, ''माँ, मुझे बचा लो। मैं पढ़ना चाहती हूँ। मैं अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती हूँ।''

चीख का एक–एक शब्द घुटकर गले की परिधि में ही दफन हो गया और आज तक वह वहीं फँसा हुआ है। उसने मोती–सी बूँद को अपनी मुट्ठी में कसकर बंद कर लिया था। आज भी मुट्ठी की कैद में एक स्वप्न बन वह छटपटा रहा था, मानो उसकी आत्मा उस बूँद में कैद हो गई है और छटपटाकर अपना पिंजर छुड़ाना चाहती है।

उसी साल तुलसी की शादी हो गई और उसका तिलिस्म–सा सपना मानो विवाह के बंधन में बँध गया। शादी की पहली रात वह चीख पड़ी। उसका वजूद तहस–नहस होकर टुकड़ों–टुकड़ों में बँट गया था और उसमें से सड़े माँस की गंध–सी आ रही थी। उसकी बगल में वह पुरुष सोया हुआ था, जिसको समाज में वह गर्व से अपना पति कहती थी और जन्म–जन्म के पवित्र बंधन में अपना सबकुछ न्योछावर कर देती थी। उस रात उसका स्वयं से प्रश्न था कि वह कौन है–एक संपूर्ण औरत या विखंडित व्यक्तित्व?

उसकी चीख बगल में सोते हुए पुरुष के खर्राटे में दबकर मर गई और उसकी भीगी आँखों का पानी उस आदमी की मुस्कान की गिरफ्त में कैद हो गया। अब पुरुष का अट्टाहास होगा और नारी का समर्पण। शायद नारी और पुरुष के बीच के संबंधों का सत्य मात्र समझौता ही है। पुरुष के हित में समस्त शर्तें और उनकी अवमानना पर औरत की पिटाई। तुलसी ने इस समझौते को अपने सपनों की चिता पर स्वीकार कर लिया था, पर अब नहीं। शायद हर अति का एक अंत होता है।

आज उसके उठे हुए कदम रुक गए। नहीं, वह वापस नहीं जाएगी। वापसी का मार्ग तो वह स्वयं ही बंद करके आई थी। अब तो उसको इस वन में आगे ही बढ़ते जाना है। हाँ, उसने घर के द्वार बहुत धीरे से बंद किए थे, पर उसकी प्रतिध्वनि बहुत दूर तक सुनाई दे गई थी। औरत का चारदीवारी के अंदर बंद होना एक एहसास है, पर उसके बाहर आना एक साहसिक कदम। आज वह लक्ष्मण रेखा पार करके इस वन में प्रवेश कर गई थी और यही उसकी नियति बन गई थी, तब तक चलते ही जाना, जब तक वह उस मृग–मरीचिका तक नहीं पहुँच जाती, जिसकी खोज में वह बचपन में भटक रही थी। आगे फैला हुआ एक भयानक वन था और बचपन में उसकी माँ भी डराती आई है। लड़कियों को वन में ऐसे ही इधर–उधर नहीं भटकना चाहिए। शेर और भेड़ियों की कहानी सुन–सुनकर उसका बचपन बीता है और उसे वाकई जंगली जानवरों से डर लगता है। उसकी लाल–पीली आँखें और लपलपाती जीभ से वह आतंकित होती है। उसे मौत का इतना भय नहीं, मौत तो फिर भी मुक्ति है, पर लहूलुहान होने का खतरा अधिक है और वह अपाहिज होकर नहीं जीना चाहती। औरतों के नसीब में तो मरना भी आसान नहीं। मुक्ति की चाह भी सीमित राहों पर आकर समाप्त हो जाती है। मौत हमेशा आसान रास्ता नहीं होता और न ही एकमात्र विकल्प। वह जीना चाहती है और जीवन में संघर्ष ही एक चुनौती है।

तुलसी ने यह चुनौती स्वीकार की थी। उसने अपनी माँ को मरते हुए देखा था, नानी को भी, पर वह मरना नहीं चाहती थी और जीने के लिए तो उसे घर की चारदीवारी लाँघने का साहस करना था। यह साहस उसमें कहाँ से आ गया, यह उसे भी नहीं ज्ञात था। शायद साहस कहीं कोने में दुम दबाकर पड़ा हुआ था और आज अनुकूल हवा पाकर प्रस्फुटित हुआ था। उसे स्वयं पर आश्चर्य हो रहा था और इस एहसास के बाद वह

अपने से भागने लगी। उसे अपना 'स्वयं' ही भयभीत कर रहा था। वह बदली–बदली नजर आ रही थी और यह बदलाव विस्मयकारी था। सदियों से औरतों में कोई बदलाव नहीं हुआ था और बदलाव की प्रक्रिया स्वयंमेव कष्टकारी है। शायद सर्प को केंचुल छोड़ने में भी दर्द का एहसास होता होगा, वह तो मानवी थी। वह भी छटपटाई थी। अपने बाह्य रूप का वह तिरस्कार नहीं करना चाहती थी। यह छटपटाहट उसके जीवन का एक अभिन्न अंग बन गई थी और उस छटपटाहट का अंत उस तिलिस्म को पाना था। उस इंद्रधनुषी छटा में वह अपने को डुबोकर नया रूप अख्तियार करना चाहती थी।

रास्ता कठिन था और डगर ऊबड़–खाबड़। इस पर उससे पहले कोई चला भी नहीं था। नई राहें हमेशा भय पैदा करती हैं। अब वह तिलिस्म ज्यादा दूर न था और वह हर हाल में उसको पाना चाहती थी। थोड़ी दूर चलने पर दोनों तरफ घने पेड़ों की छाया अंधकार पैदा कर रही थी। रास्ता भी गहरा और भयावह प्रतीत हो रहा था। झाड़ियों की ओट में से यदा–कदा रोशनी सदृश झाँकती हुई आँखें दिखाई दे रही थीं। हर एक उजाला उसकी हड्डी तक गला जाता था। नीचे से ऊपर तक एक सिहरन पैदा होती और वह काँप जाती।

अभी वह थोड़ा ही आगे बढ़ी थी कि सहसा पैर में कुछ चुभा और एक घुटी–घुटी चीख उसके मुँह से निकल गई। पैर में तीक्ष्ण दर्द होने से वह जमीन पर बिछ गई। वह अभी छटपटा ही रही थी कि पेड़ों की झुरमुट में कई जोड़ी आँखें चमक उठीं और अँधेरे में उनकी रोशनी से सहसा तुलसी चौंक पड़ी। हर तरफ खतरा था और उसकी जान पर बन आई। जान है तो जहान है। बाकी उपलब्धि के तो कोई मायने नहीं रह जाते। वह दर्द के बावजूद झट से उठी और कराहते हुए भागी। दिशा का उसको पता न था। सामने तिलिस्म था और पीछे परिवार, पर वह दिशा और दशा देखकर नहीं भाग रही थी। भागना उसकी मजबूरी थी। नहीं भागेगी, तो काल के गर्त में गिर जायेगी। थोड़ी देर भागने के बाद उसको लगा कि वह नाहक ही भाग रही है। रोशनीनुमा आँखें अंधकार में विलीन हो चुकी थीं। अब पीछे गहरा अँधेरा था। सामने भी पथ पर अंधकार छाया हुआ था, पर उसकी इच्छाशक्ति प्रकाश का कार्य कर रही थी। वह उसकी ही लौ में आगे बढ़ी चली जा रही थी। आगे बढ़ना, मानो उसकी नियति मात्र थी। वैसे भी

जीवन–चक्र की एक निश्चित धुरी होती है। एक बार जो तीर अपने कमान से छूट जाता है, वह गंतव्य पर पहुँचकर ही दम तोड़ता है।

जीवन में अंधकार और प्रकाश तो क्रमवत् आते ही रहते हैं। यह तो शायद जीवन–चक्र है, फिर अंधकार से क्या डरना? वैसे भी तुलसी ने जीवन में इतना अंधकार देखा था कि थोड़ा सा ज्यादा अंधकार उसको किंचित् मात्र भी भयभीत नहीं कर सकता। औरत का पूरा वजूद ही अंधकारमय है। तभी तो वह प्रकाश की खोज में है। वह मृग–मरीचिका के हर क्षण–प्रतिक्षण पास पहुँचती सी प्रतीत होती थी। पर हर बार उसे हताशा ही हाथ लगती। और मरीचिका थोड़ा और आगे बढ़ जाती।

रास्ते में उसे सियार की आवाज सुनाई पड़ी। उसका हौंकना अंदर तक कँपकँपी पैदा कर गया। तभी उसे कहीं दूर मरीचिका के पास शेर–सा कोई जानवर प्रतीत हुआ। उसकी तो घिग्घी–बँध गई। हे भगवान्! धरती फट पड़े और वह उसमें समा जाए। अब वह एक कदम भी आगे नहीं जाना चाहती थी। वह वापस मुड़ी, पर पीछे की तरफ भी उसे भेड़ियों का झुंड आता प्रतीत हुआ। हे भगवान्! अब तो सब तरफ मौत–ही–मौत है। भेड़ियों से बचती है, तो शेर खा जाता है और शेर से तो....। शेर तो सिर्फ भूखा होने पर ही मारता है, पर भेड़िए तो दरिंदे होते हैं। वह तो सिर्फ शिकार के लिए शिकार करते हैं। बोटी–बोटी नोचकर फेंक देते हैं। एक सिहरन उसके शरीर में दौड़ गई। चारों तरफ तो औरत के जीवन में सिर्फ भूखे दरिंदे ही हैं। वे इस मौके की तलाश में रहते हैं कि कैसे औरत के जिस्म के टुकड़े–टुकड़े करके अपनी अतृत्प भूख को शांत करें। सिर्फ शिकार के लिए शिकार करते हैं–भूख के लिए नहीं।

अब तो उसमें भाग पाने की शक्ति भी नहीं बची। उसकी आँखों के आगे अंधकार छा गया। धरती डोली और वह गिर पड़ी–चारों खाने चित। बेजान–सा शरीर धरती पर गिर पड़ा। सब तरफ मानो तिलिस्म 'खुल जा सिमसिम' सा फट पड़ा और तेज रोशनी चारों तरफ फैल गई।

जब उसकी आँख खुली, तो वह अपने घर के बिछावन पर थी। बगल में पति खड़ा पंखा झल रहा था। बेटी पानी का रूमाल गीला करके सिर पर रख रही थी और बेटा पैर का तलवा हाथ से घिस रहा था। गरमाहट उसके सारे शरीर में घुस रही थी। धीरे–धीरे कँपकँपी रूकने लगी। स्थिति नियंत्रण में थी और अब घबराने की कोई बात न थी। गरमाहट से उसको

हल्की सी निद्रा आने लगी। अचेतनावस्था में वह पुनः उस मृग–मरीचिका के समीप थी। उसका वजूद पेड़ पर टँगा हुआ मुक्त होने के लिए छटपटा रहा था। उसने उचककर उसे पकड़ना चाहा। अभी उसका हाथ लपका ही था कि नीचे से एक भेड़िए ने उसकी टाँग पकड़ ली। वह दर्द से कराही। इसी क्रम में, वह वजूद उसके हाथ से छूटकर अनंत आकाश की असीमित ऊँचाईयों में हमेशा–हमेशा के लिए मानो खो गया। वह अपने को बचाने के क्रम में तिलिस्म के ऊपर गिरी। काँच का होने के कारण वह टुकड़े–टुकड़े होकर टूट गया। भेड़िया अभी उसको नोच–नोचकर खा जाता, पर शुक्र है कि यह एक दिवास्वप्न मात्र था। जो खौफनाक बनने से रह गया। वह अब तक अचेतनावस्था से चेतनावस्था में आ चुकी थी। अब जो थोड़ी–बहुत गुजांइश बाकी थी, वह भी खत्म हो चुकी थी। उसका जो होशो–हवास गुम हो गया था, वह वापस आ चुका था।

औरत का जीवन ही एक तिलिस्म की खोज है और उसका वजूद अनंत की अनिश्चित सीमाओं में बँधा हुआ है। वह सदैव उसको खोजती रहती है। उसका वजूद स्वयं एक प्रश्नरूपी जीवन बन जाता है।

शायद हर औरत को जीवन रूपी मरीचिका में अपने वजूद की तलाश है।[1]

■

1 कहानी का यू–ट्यूब लिंक उपलब्ध है।

वो सात दिन

वो सात दिन बेहद कष्टप्रद बीते थे। स्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं। आखिरकार निशा का पेट एकाएक दस इंच फूल आया था। पहले–पहल तो बच्चों को, खासतौर पर बहुओं को लगा कि गैस होगी, पर जब रात भर के दर्द और तकलीफ के बाद भी कोई फायदा न हुआ तो सबकी चिंता बढ़ी।

चिंता का विषय बीमारी न था, इलाज था। अरे! पचहत्तर साल की विधवा अगर मर भी जाए तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा?पर मूल चिंता का विषय इलाज में होनेवाला खर्च था। बड़े बेटे को फोन किया गया था और सब उसके आने के इंतजार में थे।

इंतजार का वक्त लंबा और कठिन होता है। मानो कटता ही नहीं और बाकी दोनो बच्चों का भी नहीं कटा। भाई को आना न था, मानो शायद बहाना बनाकर न आया। सृष्टि का नियम है, माँ कितने भी बच्चों का गू–मूत साफ कर ले, पर एक भी बच्चा बीमार माँ को एक भी दिन बिस्तर पर बर्दाश्त न कर सकेगा।

बाकी दोनों बेटों ने भी इलाज करा पाने में असमर्थता जताई। दोनों के आगे तो पैसे की लाचारी थी। होनी भी थी। पिछले कुछेक वर्षों से व्यवसाय में लगातार घाटा हो रहा था और घर में वाकई पैसे की किल्लत थी। जब पैसा ही नहीं तो इलाज कैसे, पर मामला माँ का था और उससे भी अधिक समाज में बदनामी का। लोग क्या कहेंगे!

खैर, नालायक लड़कों को समाज का खासा भय नहीं होता, पर इन लड़कों को अपनी बड़ी बहन के प्रति था। वह क्या सोचेगी, अगर माँ को कुछ हो गया! कहेंगी, 'कम–से–कम मुझे तो सूचित कर देते। क्या मैं माँ को नहीं सँभाल लेती?' और इन लड़कों ने भी कर्त्तव्य की इतिश्री कर ली, बहन को सूचना देकर।

बहन आई और घर के हालातों के मद्देनजर अपनी माँ को अपने साथ ले गई। आखिर बेटे–बेटी में फर्क क्या है? फिर माँ की तो आँखें ही नहीं

खुल रही थीं, जो प्रतिकार करतीं। कौन बेटी के यहाँ जाकर मरना पसंद करता है! पति की मृत्यु के बाद तो माँ ने अपना जीवन घर की चारदिवारी के भीतर ही समेट लिया था। जब जीवनसाथी ही न रहा तो जीने की अदम्य लालसा भी मद्विम पड़ने लगी थी।

बेटी ने अपनी माँ को ले जाकर एक अलग कमरे में आराम से लिटा दिया और अपना स्थान स्वयं उसके बगल में बना लिया। माँ की हालत चिंताजनक थी और एक छोटा–सा बोरा बनी वह बिस्तर पर पड़ी थी। घर पहुँचते ही बेटी का बेटा अमित डॉक्टर को बुला लाया था। डॉक्टर ने आकर माँ को देखकर मुआयना किया और चलते–चलते हिदायत दे गया, 'बहत्तर घंटे अति महत्वपूर्ण हैं, पर कम–से–कम सात दिन तक इनकी ठीक से देखभाल बेहद जरूरी है। पलकों की छाया तले इनकी ठीक से सेवा कीजिए। आगे तो जीवन ईश्वर के हाथ में है।'

बेटी अनीता ने अपनी माँ के सिरहाने अपना भी बिछावन बिछा लिया। माँ के माथे पर छलक आए पसीने की बूँदों को साफ कर दिया। धीरे से माँ की आँखों को चूमा। उसकी अपनी आँखों की पोरों से बूँदें ढलककर माँ के माथै पर छलक गई। उसने उन बूँदों को वैसे ही रहने दिया।

बेटे ने धीरे से आकर दवाइयाँ माँ की बगल में रख दीं। "पीली वाली एक–एक गोली तीन घंटे पर और लाल पत्ते की दिन में दो बार। अभी सुई का असर है, रात भर नानी सोती रहेंगी। सुबह फिर कंपाउंडर आकर सुई लगा देगा। रात भर में नानी को आराम मिल जाना चाहिए। सुबह अल्ट्रासाउंड कराके पता चल जाएगा कि पेट में पानी क्यों भरा है? तब तक इन्हें आराम से सोने दो। अगर कोई जरूरत हो तो मुझे उठा लेना।"

"बेटा, एक बार बड़े मामा को फोन कर दो। नही तो अगर माँ को कुछ हो गया तो फिर यही कहेंगे कि हम लोगों ने नानी को मिलकर मार डाला और उनको सूचित न किया।"

"आप भी माँ! पापा ने डॉक्टर के जाने के बाद पूरी सूचना मामा को दे दी है और आग्रह भी किया है कि अगर वह सुबह आ जाएँ तो कोई भी निर्णय लेने में आसानी होगी। क्योंकि डॉक्टर कह रहे थे कि अगर दवाइयों से सूजन नहीं घटेगी और पेट का पानी कम नहीं होगा तो फिर सुई लगाकर पानी निकालना पड़ेगा। हो सकता है, नानी रात भर बिस्तर गीला करती रहें, ध्यान रखना।"

माँ ने धीरे से सिर हिला दिया। आँखें बंद कर लीं। बेटा भी दरवाजा धीरे से बंद करके बाहर चला गया। अनीता ने आँखें कसकर बंद रखीं। वह आँसुओं को काफी देर अपने अंदर समेटकर रखे रहीं, पर जब उफान कम न हुआ तो बेहद वेग से वह बाहर निकल आए। माँ की इस दुर्गति की तो उसने कल्पना भी न की थी। भाई इतने नकारा निकलेंगे, किसको उम्मीद थी! कहाँ गलती हो गई, अभी वह ठीक से निर्णय भी नहीं ले पाई थी कि माँ ने बिस्तर गीला कर दिया।

उसने धीरे से चादर बदली। माँ के कपड़े बदलने में उसे काफी जद्दोजहद का सामना करना पड़ा। उसने माँ के नीचे बच्चों वाला प्लास्टिक डाल दिया और माँ को गाउन दिया। गाउन के ऊपर चादर डाल, वह उनका हाथ पकड़ बगल में लेट गई।

माँ पूरे होशोहवास में थीं, पर बेहद घबराई। शायद संभावित मृत्यु की–सी स्थिति ने उनके अंदर भय पैदा कर दिया था।

"मैं मरना नहीं चाहती अनीता।" ये शब्द बेहद धीमे से कहे गए थे, पर अच्छे से कमरे में गूँज रहे थे।

"नहीं माँ, हम आपको मरने नहीं देगे।"

माँ ने धीरे से सिर हिलाया, फिर कुछ बुदबुदाई। शायद 'दिलीप' का नाम लिया था। दिलीप अनीता का बड़ा भाई था।

"हाँ, खबर कर दी है, कल सुबह तक आ जाएगा।" माँ ने फिर कुछ बुदबुदाया, जो अनीता की समझ में न आया। माँ ने धीरे से आँखें बंद कर लीं। थोड़ी देर तो अनीता को लगा, जैसे माँ आँखें बंद कर लेटी हों, पर नहीं, वह सो गई थीं। दवाईयों का असर था। अनीता की आँखों से नींद कोसों दूर थी। भय और दुःख का मिला–जुला घुमड़ता हुआ संसार था। ऐसे में नींद कहाँ आती! वह माँ का हाथ पकड़कर बैठ गई। माँ के हाथ में थोड़ी सी हलचल हुई, फिर सब शांत। पूरी रात अनीता वैसे ही बैठी रही। कब उसकी आँख लग गई, इसका इल्म न हुआ। इल्म तो उसको तब हुआ, जब सुबह बेटे ने आकर उठाया।

"माँ, कंपाउंडर आया है, उठो।" अनीता हड़बड़ाकर उठी। एक गलती का भाव मन में जाग उठा। अरे! आँख कैसे लग गई! कहीं माँ ने किसी जरूरत के लिए पुकारा हो और मैं जवाब न दे पाई हूँ। नजरों में जैसे चोरी का भाव था। माँ भी निश्चिंतता से सो रही थी। थोड़ी राहत मिली।

माँ के पेट से सूजन भी थोड़ी कम थी। कंपाउंडर ने इंजेक्शन दे दिया। बेटा नानी को अल्ट्रासाउंड कराने के लिए ले जाने लगा।

"नहीं, बेटा, तुम नहीं जाओ। पापा जाकर दिखा आएँगे। तुम जाओगे तो मामा लोग समझेंगे कि बेगार टाल दिया। पापा की बात और है।"

अपनी माँ को पति के साथ भेज वह थोड़ी निश्चिंत हुई।

अल्ट्रासाउंड की रिपोर्ट भी शाम तक आ गई थी। लीवर सिरोसिज थी, संयम बरतना था। तुरंत कोई चिंता की बात न थी, पर बीमारी तो थोड़ी खतरे वाली थी।

अनीता ने फोन कर तीनों भाईयों को सूचित कर दिया।

बड़ी भाभी का तो दोटूक उत्तर था, "जब आप सबकुछ खुद कर रहीं हैं, तो हमारी जरूरत ही कहाँ है?"

पर जरूरत माँ की आँखों में महसूस हो गई थी। उनमें न चाहते हुए भी बेटों के लिए उम्मीद की एक किरण बाकी थी। वह सिर्फ इतना कह पाई, "अनीता देख लो, दिलीप जरूर आएगा। उसको ठीक से फोन करके बता दो।"

और अनीता भी रोज ठीक से फोन करके अपने भाइयों को बता दे रही थी।

सात दिन और सात रातें उसने माँ के आँचल के साए तले काटीं। कोई दिन ऐसा न बीता होगा, जब माँ बेटों को याद कर रोई न हो। उधर अनीता ने उसकी सेवा में कोई कसर न छोड़ी थी। पूरी–पूरी रात सिर्फ पलकों में ही कट जाती थी।

सातवें दिन माँ के स्वास्थ्य में पहले से काफी सुधार था। बीचवाला भाई माँ को लेने आनेवाला था। माँ सुबह से ही प्रफुल्लित थीं। होती भी क्यों न! वह वापस अपने घर जो जा रही थीं। दोपहर होते–होते भाई आ गया। आते ही उसने माँ के हाथ को मुलायमियत से सहलाना शुरू किया।

"बेटा ठीक हो!" इससे पहले कि बेटा माँ से पूछता, माँ ने ही प्रश्न दाग दिया। "और घर में बच्चे! सबकी बहुत याद आई। और सविता!"

"माँ सब ठीक है। नहीं, भइया आए तो नही, पर अगर उन्हें ठीक से खबर हो जाती तो जरूर आते। शायद स्वस्ति आई होगी, अपनी ससुराल से। अब उनको छोड़कर कैसे आते?"

अनीता ने माँ का सब सामान बाँधकर अपने छोटे भाई को पकड़ा दिया और साथ में इलाज के सारे कागज।

"दिलीप से काफी संपर्क साधने की कोशिश की, पर सब व्यर्थ। शायद उसे डर हो कि माँ के इलाज में अच्छी–खासी रकम लगेगी।"

"नहीं बेटा, दिलीप ऐसा नहीं है। पिता के इलाज और मरनी–करनी में उसने ऐसे ही थोड़े न बीस हजार रूपए फूँक दिए थे। किसी कारण से वह फँस गया होगा।"

अनीता चुप रही। पुत्र–मोह से माँ ग्रस्त थी। अगर इतना मोह न किया होता तो आज ऐसी दुर्दशा उनकी न होती। सबकुछ पुत्रों को दे दिया। खुद दीन–हीन बनी घूम रही थीं। पर शायद यही संसार का नियम है और बुढ़ापे में माता–पिता ऐसे ही पुत्रों के सामने लाचारगी का अनुभव करते हैं।

चलते वक्त अनीता और उसकी माँ की आँखें मिलीं। उनमें कहीं–न कहीं शर्मिंदगी का भाव था। माँ को यूँ ही अनीता के यहाँ पड़े रहना कतई न सुहाया था। पर करती भी तो क्या करती! जब जिंदगी अपने बस में नहीं होती तो इंसान को सब कुछ सहना पड़ता है और हालात के आगे हथियार डाल देने पड़ते हैं। जब तक जोरे-पुस्त इंसान होता है, तब तक सबसे लड़ता फिरता है।

माँ ने धीरे से अपने बेटे के कान में कुछ कहा, बेटे ने जेब में हाथ डाला। थोड़ा टटोला पर खास कुछ न निकला। माँ ने धीरे से अपनी अँगूठी निकालकर बेटी के हाथ में रख दी।

"ये किसलिए सिद्धार्थ?"

"दीदी, माँ कह रही हैं, इलाज में जो खर्च हुआ है।" इलाज में खर्च, अनीता के नीचे से तो जैसे धरती ही खिसक गई। तो इससे पहले कि अनीता प्रतिकार कर पाती, माँ को बैठाकर सिद्धार्थ रिक्शे से आगे बढ़ गया।

वह अँगूठी अनीता के हाथ से जमीन पर गिर पड़ी और उसकी चीख गले में ही घुट गई।

'माँ, बीमारी के इलाज का तो आपने मुआवजा दे दिया, पर उन सात रातों की कीमत आप देना भूल गई, जो आपकी सेवा में मैंने व्यतीत किए थे। ओह! वो सात दिन!'

हाँ, वे सात रातें तो बिना अदायगी के आज भी बेटी का भाग्य बन, उसके अस्तित्व पर एक प्रश्नचिन्ह् लगा देती हैं।

शायद माँ बोली हो, बेटा! तुम्हारा खाकर नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। काहे मेरे ऊपर एहसान लाद रही हो!'

और अनीता वहाँ कब तक खड़ी रही इसका उसको भी एहसास न हुआ! माँ अब गली के छोर से मुड़ कर अपने घर की तरफ निकल गई होगी।

■

तिजारत

वह भूख से मर गया था शायद या फिर पंजाब से लौटते हुए लू लग गई होगी। जो भी हो, उसकी लावारिस लाश स्टेशन से लगी हुई गाड़ी के डिब्बे में मिली थी। सबसे पहले उसे घीसू ने देखा था।

घीसू को खीसें निकालकर दाँत निपोरने की आदत थी, जब देखो, तब खिलखिलाना। अजब अहमक था। छोटी जाति के बल पर जमादार की परमानेंट नौकरी रेलवे में पा गया था। पर था बेचारा अभागा। घर में माँ–बाप थे, जो अगलगी में जून की ठठरी गरमी में ढह गए थे। बीवी, बच्चे और परिवार के नाम पर मैदान बिल्कुल साफ। कोई बड़ा होता तो बात करता। अबकी अक्तूबर तक कुछ नहीं बना तो पड़ोस की भटकती जुल्फैला, माफ कीजिए, ज्योति को महरिया बना लेगा। जुल्फैला नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि जुल्फें हिलाती, कमर मटकाती, वह नैनों से घीसू पर डोरे डालती थी। अब घीसू भी कोई महात्मा थोड़े ही ठहरा कि बर्फ की तरह न पिघले।

सामने लाश देखकर उसके मुँह में पानी आ गया। चलो खुदा खैर करे मरनेवालों की, अब तो कुछेक दिनों की ठर्रे की चिंता गायब। सीधे लाश पहुँचा दूँगा अस्पताल के शिक्षा वार्ड में। वहाँ लड़कों को पढ़ने के लिए लाशों की सख्त जरूरत पड़ती है, एक का तो इंतजाम बस हो गया, समझो। बैठे–बैठे कड़क पाँच–दस हजार की बोली।

वाह रे! ऊपरवाले तेरी महिमा अपरंपार! पहले घीसू सीधा था। लावारिस लाशों को थाने में जमा कर देता था। और थानेदार बेच देता था। अब उसको भी धंधे के गुर आ गए हैं। कुछ कमीशन पकड़ा दो, काम खत्म। सब चुप और सौ की सीधी एक चुप्पी। थानेदार चुप तो सब चुप और घीसू चुस्त। ऊपरवाले के फजल से महीने भर में दो–तीन लाशें आ ही जाती थीं। गरमी में अधिक और इसीलिए घीसू को गरमी पसंद थी। भूख और लू से मरनेवाले अधिक और उसका धंधा चोखा। न हींग लगे, न फिटकरी और रंग चोखा–ही–चोखा! बैठे–बिठाए ऊपरी कुछ आ जाए, वह भी सीधे माध्यम से तो क्या हर्ज है!

शुरू–शुरू में तो उसे घिन भी आई थी और एक की तो आँखें रात भर उसे घूरती रही थीं। पर मुरदे भी कहीं जीवित होते हैं, कहकर उसने अपने को समझाया था और कसकर एक घूँट ताड़ी का सुड़क लिया था। उसके बाद से वह जब भी लाश बेचता, ताड़ी चढ़ा टुन्न हो जाता। अब मुरदे उसे परेशान नहीं करते थे। मुरदे वैसे भी किसी को परेशान नहीं करते। यह सब किस्से–कहानियों का शगल है और दादी का सुलाने का टोटका। नहीं तो सब फालतू का आडंबर। अब तो घीसू बड़ा हो गया है और उसे दुनिया के तरीके भी आ गए हैं।

दुनिया के एक तरीकों में था पैसा कमाना। घीसू ने काफी कोशिश की। वह लाश भारी थी। एक दिन पुरानी होने के कारण फूल गई थी। अंत में, जब न उठी तो टाँगों से खींचता हुआ, बाहर लाया और खींचते हुए वह उसको बैकयार्ड में ले गया। वहीं से फोन बूथ से फोन करके सौदा हो गया। अभी कुछ देर में अस्पताल के वार्ड ब्वायज आएँगे और उसे उठाकर ले जाएँगे। थोड़ी देर में सायरन बजाती गाड़ी आई और लाश को आरामदेह गद्देदार सीट पर लादकर अपने गंतव्य के लिए निकल पड़ी। बस, घीसू का काम समाप्त। वह निश्चिंत हो दूसरी गाड़ी की सफाई करेगा। और रात में ठर्रे के जाम में मदहोश हो, नैन मटक्का के सपने देखेगा।

चीर–फाड़ के बाद अब लाश को सिल दिया गया था। पूरा दिन उस पर अध्ययन होता रहा था। अब चीर–फाड़ के बाद वह बेकार हो गई थी। एक बेजान शख्सियत, एक गुमनाम व्यक्तित्व अब उसके प्रति किसी को कोई भी सार्थकता नहीं समझ में आ रही थी। क्लास के बाद उसे बाहर मुरदाघर में डाल दिया जाएगा। शायद उसके नसीब में वहीं पड़ा होना भी नहीं था। जितनी लंबी यात्रा में उस जीव का अंत हुआ था, अभी उससे भी लंबी उसके मानव शरीर को यात्रा सहनी थी।

उस पर सफेद कफन डाल, उसे फुलवरिया ले बाहर अस्पताल के बैठ गई। बिखरे बाल, मैली–कुचैली साड़ी, पैर में चप्पल नहीं।

''हाय मेरा सुहाग, मेरा सुहाग बिन इलाज के चल बसा। कोई तो रहम करो!''

और उसकी चीख अस्पताल परिसर तक भी सुनी गई थी। वार्ड ब्वाय के कानों तक भी यदा–कदा पहुँची थी। और फुलवरिया जानती थी कि उसकी चीखों का सबब बन, जो धन मिलेगा, उसमें उनका भी हिस्सा है। कोई बात नहीं। मिल–बाँटकर ही दुनिया चलती है।

मानवता शायद अभी मरी नहीं थी। लोग गुजरते और उस बदबूदार लाश के कफन के वास्ते चवन्नी, अठन्नी या रुपया दे जाते। जैसी जिसकी औकात, वैसा उसका धर्म। या जैसा जिसका ईमान, वैसे उसके कर्म। फुलवरिया हर आने–जानेवाले पर निगाह रखती और फिर चीख–मार लाश पर सिर पटकने लगती। बिल्कुल मार्मिक चित्र था। ऐसा लगता मानो, जैसे कोई उसका अपना सगा नहीं रहा था। और थोड़ी देर में अच्छी–खासी भीड़ भी जुट गई। जीवन में मजमा लगानेवालों और फालतू के तमाशबीनों की कहाँ कमी है ? लोगों के पास वक्त–ही–वक्त है और फिर दुःख–तकलीफ में तो शरीक होना इनसानियत की बात है। हम इनसान कुत्ते–बिल्ली से तो बेहतर सामाजिक प्राणी हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक भीड़ इक्ट्ठा करने में माहिर हैं।

थोड़ी ही देर में फुलवरिया के पास कफन के वास्ते अच्छी–खासी रकम इक्ट्ठी हो गई।

''चलो, लाश को इज्जतदार मिट्टी तो नसीब होगी।''

इसी बीच फुलवरिया का पति और दो जवान बच्चे आ गए। इस बीच भी फुलवरिया का विलाप जारी था।

''हाय, मैं स्वयं क्यों न चली गई! ये दिन भी देखना नसीब था। अब मेरा क्या होगा? मुझको भी साथ लेते जाते।'' और विलाप जारी था।

उसके पति और बच्चों ने लाश को उठाने में मदद की और उसे उठाकर पीछे मुरदाघर में छोड़ दिया।

''चलो अब विलाप बंद भी करो। आज की तो कमाई जबरदस्त है। और वहीं बरगद की छाँव के नीचे उसका पति और बच्चे नोट गिनने लगे।

एक, दो, तीन, चार, पूरे दो हजार। वाह रे ऊपरवाले! तू ऐसे ही लोगों को मारता चल और हमारा पेट पालता चल।''

वह लाश उस मुरदाघर में दो–तीन दिन पड़ी रही। जमादारों को होश तब आया, जब उसमें से बदबू आने लगी।

एक सफाई कर्मचारी बोला, ''क्या करें इसका?

''अरे! करना क्या है? उठाकर हॉस्पिटल के पीछे श्मशान में फेंक दो। पाँच सौ–हजार लाश को जलाने के वास्ते मिल जाएँगे। यहाँ पड़ी रही तो

साँस लेना दूभर हो जाएगा। साला मरा पर अपना अता–पता भी न छोड़ गया। कम–से–कम घरवालों को तो इत्तला मिल जाती। बेचारे इसका आसरा देख रहे होंगे और ये यहाँ!''

पहलेवाले ने थोड़ा कसकर ठहाके लगाए और बीड़ी सुलगा ली–''अरे कब से तुम इतना भावुक हो गए। अपुन का धंधा तो ये क्या कहते हैं यार, रोना–वोना माँगता नहीं हैं, अपुन फिर भी आदमी है। साला कोई मरे, कोई जिये, अपुन को क्या! अपुन के लिए तो ये एक लाश है बेजान, बिल्कुल बेजान।'' और उसकी आवाज में तारतम्य टूट गया।

दोनों ही चुप थे। एक अजब–सी खामोशी वातावरण में पसरी हुई थी। शयाद मौन रहकर दोनों वातावरण से बचना चाह रहे थे। कभी–कभी शब्द पीड़ा को बढ़ा देते हैं, पर मौन रहकर आदमी उस तकलीफ से बचने और भागने का प्रयास करता है। दोनों ही एक–दूसरे से आँखें चुरा रहे थे। उन्होंने धीरे से लाश को उठाने का प्रयास किया। एक प्रयास में न उठी।

''अरे, बड़ी भारी है भाई! फिर से उठाओ।'' और उन्होंने उठाकर स्ट्रैचर पर लाद दिया। धीरे–धीरे मदमस्त चाल से चलते हुए दोनों श्मशान घाट पर पहुँच गए। लाश को नीचे रखा गया। दोनों की निगाहें मिलीं। कुछ संवाद संप्रेषित हुए। ये संवाद हर लाश के साथ एक ही होते थे। लाश को नीचे गिरा, दोनों बिना मुड़े, तेज कदमों से वापसी के लिए चल पड़े।

बरगद की छाँव में पहुँच दोनों ने बीड़ी सुलगाई और एक कश मरा, तब जाकर कहीं दोनों को दम आया। तेजी से दोनों ने एक साथ कश मारा और मानो किसी आफत से पीछा छूटा हो और चुपचाप कश–पर–कश लेते रहे, बिना किसी संवाद के। जब मौत जैसे वीभत्स सत्य के समक्ष भी इनसान इतना बेमानी हो जाता है तो संवाद तक मौन हो जाते हैं। मौत प्रत्यक्ष है और उसके प्रति संवेदनहीनता, कहीं पर मौत बिकती है तो कहीं पर जिंदगी।

उधर उस लाश के घर में चार दिनों से चूल्हा नहीं जला था। भरा–पूरा परिवार था। बूढ़ा बाप था, जो दिन–भर खटिया पर पड़ा खाँसता रहता था। माँ को मरे अरसा हो गया था। शुक्र है, कैंसर में लाइलाज जल्दी मर गई। जी जाती तो भोग जाती। भगवान् ने सुन ली और उठा लिया। फटेहाल चिथड़ों में बीवी थी, जो खेत–खलिहानों में काम कर अपना और

अपने परिवार का दो जून पेट भरती थी। और ले–देकर पाँच बच्चे। तीन लड़कियाँ और दो लड़के। लड़कियाँ तो खेत में उसकी मदद करती थीं और लड़के छोटे थे, यही कोई सात–आठ साल के। छोटावाला तो मात्र छह साल का था और तीन दिन से उसको तेज बुखार था। सावित्री रह–रहकर उद्विग्न हो उठती थी। वह लाश, जिसका नाम शंकर था, शव बन मुरदाघर में पड़ा हुआ था। उसने पंजाब से तार भेजा था कि वह घर के लिए चल चुका है।

''फिर कहाँ रह गया रे तेरा बाप? परिवार पालने का दम नहीं और पैदा करके डाल दिए पाँच–पाँच। छठा आनेवाला है। अब मैं क्या करूँ, तुम्हारा बुखार तो उतरता नहीं है ? घर में पैसा भी नहीं। कहाँ से इलाज हो ?'' अपनी लड़की को बेटे के पास बैठा करके वह अपने मालिक के पास गई।

''साहब, रहम।''

''सुधार अपने कदम सावित्री। पैसा तेरे ऊपर बरसेगा। ये क्या सूरत बना रखी है, जा, खजाना खुला है। ले जा। पर ध्यान रखना, इसकी भी कीमत है।''

और सावित्री कीमत चुकाने के लिए तैयार थी। बेटे को अपने सामने तड़पता हुआ, मरता हुआ वह नहीं देख सकती थी। पेट भरे न भरे, पर जान है तो जहान है। और कभी भी जिंदगी से कीमती मौत नहीं हुई है।

अक्सर उसके मन में विचार आया कि बच्चों सहित आत्महत्या कर ले। पर कायरता विवशता बन उसका हाथ रोक लेती थी। छोटे–छोटे बच्चों का मासूम चेहरा जैसे ही नजरों में आता, उसका बढ़ा हुआ हाथ रूक जाता।

नहीं, जीवन बहुमूल्य है। निरूद्देश्य है तो क्या हुआ। पेट भरने की जद्दोजहद है तो क्या हुआ! वह कम–से–कम भूख से अपने बच्चों को मरने नहीं देगी। कुछ भी करे, पर भोजन का इंतजाम वह अवश्य करेगी। और भोजन की कीमत वह चुकाती आई थी। गिद्धों की हवस का शिकार वह बनती आई थी। खूँखार आँखें और लपलपाती जबान!

गिद्धों का जमावड़ा मैदान में लगा हुआ था। एक, दो, तीन, चार, नहीं; पाँच थे। खूब बड़े–बड़े। खूँखार आँखें, वीभत्स शरीर। चोंच मार–मार उस बेजान शरीर को नोंच खाने के लिए उद्यत थे। भूख थी–उनको पेट तो

भरना ही था। शायद आज कई दिनों के बाद भोजन नसीब हुआ था, क्योंकि मिनटों में ही लाश गायब हो गई। रह गईं तो सिर्फ अस्थियाँ। गिद्ध अपना काम तमाम कर अपनी अनंत दिशाओं में उड़ गए थे। शायद फिर कभी भी न मिलने के लिए।

उधर सावित्री भी कभी–कभी गिद्धों का ग्रास बन जाती है।

■

मकान

जीवन में अनंत सपने होते हैं। कुछ आधे, कुछ अधूरे। ऐसे ही विभाजी का भी जीवन के अंत तक सपना था कि एक मकान बना पाती। हर इनसान का एक ख्याब होता है विभाजी के प्राण बसते थे एक मकान में।

सही भी है, एक छत के बगैर जिंदगी भी कोई जिंदगी है! सभी चाहते हैं कि रोटी, कपड़ा और मकान, जीवन के हैं ये तीन काम। रोटी–कपड़ा के जुगाड़ में तो पूरी जिंदगी कोई दिक्कत न हुई, पर मकान का सपना–सा प्रतीत होकर अंत तक रह गया। तीन पुत्र पर भी कहीं चार पुत्रवधुएँ आज के समय में भी कहीं हो सकती हैं। पर बहुएँ मार डाली जा सकती थीं और नई आ जातीं, पर ऐसा बहुत कम होता है। ज्यादातर बहुएँ तो प्रताड़ित होते–होते ही जिंदगी बिता देती हैं; क्योंकि उनकी सासु माताएँ उनका साँस लेना दूभर कर देती हैं।

ऐसी ही थीं हमारी विभाजी। बेहद कठोर पर जीवनपर्यंत मकान का सपना ही आँखों में सँजोए रही। ससुर के बनाए हुए मकान में ताउम्र रहीं, अतः ईंट–से–ईंट लगाकर इमारत खड़ी करना मुश्किल–सा कार्य प्रतीत होता रहा। पर अपना भी एक मकान हो, बंद आँखों में खोया हुआ–सा सपना बना रहा।

लोग बंद आँखों से सपने देखते हैं। वह खुली आँखों से भी भवन–निर्माण का सपना देखती थी। उसी सपने की परिणीति था वह मकान, जिसके निर्माण में वह स्वयं ही नींव बन गई। ईंट–से–ईंट जोड़कर मकान का निर्माण शुरू हो गया। पसीने की एक–एक बूँद टपकती जाती और एक–एक ईंट में बदलती जाती। कितना पसीना टपका और कितनी ईंटें लगीं, ये विभा को भी नहीं पता चला। पता तो तब चला, जब वह अपने को स्वयं अर्पित कर मकान में परिवर्तित–सी हो गई। मकान बनाना है भी एक कठिन कार्य। एक आम हिंदुस्तानी मकान बनाते–बनाते स्वयं मानो खत्म–सा हो जाता है। विभा तो मानो एक मनुष्य से मकान में परिवर्तित हो गई थी। उनका एक–एक बाजू एक–एक कमरा बन खड़ा था। उनकी

आँखें उस मकान में हो रही हर हलचल पर केंद्रित थीं। उनकी गरम साँसों से मकान में ऊष्मा पैदा होती थी। कान उस मकान की हर आहट का जायजा लेते थे। उनके बाजुओं में इतना दम था कि मकान उन पर टिका था। कहीं गहरे उनके चरण नींव में दफन हो गये थे और मकान में दृढ़ता और मजबूती प्रदान कर रहे थे। उनके हृदय के कंपन से उस मकान का दिल धड़कता था। शायद उस मकान की आत्मा उनके वक्षस्थल में बसती थी। वह माँ थी, इसलिए सपनों को सँजोकर अपने हृदय की कोठरी में बंद कर दिया था उन्होंने।

मकान के निर्माण में पुत्रों ने पूरी मदद की, पर अब जैसे उनके सपने पंख लगा उड़ान भरने लगे थे। उन सपनों को पूरा करने में मदद उनके बेटे भी पूरी तन्मयता से कर रहे थे। माँ का सपना बच्चों का बन फल–फूल रहा था और अंततः उस मकान में बच्चों के साथ उनका प्रवेश हो ही गया। उस मकान का उस दिन गृह–प्रवेश था और माँ के चरणों से होते हुए सबने उस मकान में प्रवेश किया। पूरा मकान मानो गुंजायमान हँसी से कौंध उठा। सभी पुत्र एवं पुत्रवधुएँ तैयारियों में जुट गए। एक–एक कोना उनके स्पर्श से सजने लगा। सभी व्यग्र थे, सभी उत्साहित। सभी को जैसे होड़ थी कि कैसे वह आगे बढ़कर मकान को बेहतर से बेहतर सुसज्जित कर सके। माँ का हृदय आनंद से भर उठता था। उसका मकान, कोकिल ध्वनियों से गूँज उठा। विभा जी अपने उद्देश्य में शत प्रतिशत कामयाब रही थी। जब सपने हकीकत में बदलते हैं, तो यकीनन इनसान सफलता के हर्ष में मदहोश हो जाता है; क्योंकि जीवन में सपनों का फलीभूत होना स्वयं एक सपना है और मकान में परिवर्तित विभा ठठाकर हँस पड़ी। उसकी हँसी ऊर्जा बन पूरे घर में फैल गई और जब हँसी का आखिरी पड़ाव आया तो वह आग बन घर में फैल गई। क्रोधाग्नि की आग, ईर्ष्या की आग और उससे भी ऊपर स्व की आग। सबकी ज्वालाएँ धीरे–धीरे कब मकान में अंदर प्रवेश करने लगीं, किसी को भी इसका भान न हुआ।

बच्चे अपने एक–एक कमरे को सजा रहे हैं। वह आह्लादित होती। घर को सजाते हुए माँ नहीं समझ पा रही है कि बच्चे अपने लिए घर को सजा रहे हैं, पर माँ को लगता है, मानो वह स्वयं सज रही है।

जैसे मकान बनते ही जीवन की गाड़ी सुचारू रूप से चलने लगी। पहले कुछ दिन तक नहीं, कुछेक महीने–साल कहना ठीक होगा, क्योंकि

तब तक सब सुचारू चलता रहा। माँ रूपी मकान का उपभोग सब मजे से करने लगे। अपना–अपना परिवार, अपनी निजी जिंदगी। शुरू–शुरू में तो जैसे सब बच्चे एक साथ माँ के वक्षरूपी कमरे में इकट्ठे होते थे, पर धीरे–धीरे जैसे सब अब छितरने लगे। माँ का सीना खुला रहा, पर दूरियाँ बढ़ने लगीं। वक्ष के अंदर एक ज्वार उफान मारता, हिचकोले ले तूफान लाता, पर धीरे–धीरे हाथ को हाथ नहीं सूझता था। माँ वहीं थीं, मकान वहीं था, पर दूरियाँ अधिक थीं, बहुत अधिक। पहले माँ का हृदय सजता था, अब उसकी भुजाओं में स्थित कमरे सुसज्जित होने लगे। धीरे–धीरे घर का एक कोना सजा, फिर दूसरा, फिर तीसरा और कोने–कोने में मकान सजने लगा। पहले जो एक संपूर्णता थी, वह समाप्त होने लगी। अब टुकड़ों–टुकड़ों में पूरा संसार बसने लगा। जब तक वह आग एक चिनगारी का रूप थी, तब तक बस सिमटती रही, पर जैसे ही ज्वाला बनकर धधकी कि माँ का हृदय भी जलने लगा। और आग थोड़ी अधिक ही थी। थोड़ी बहुत आग होती तो आसानी से बुझ भी जाती, पर जब ज्वाला धधकती है तो वह अपने मुँह का ग्रास सभी को बना देता है। जो उसको बुझाने जाता है, वह भी जलकर भस्म हो जाता है। और उस मकान में भी आग कैसे फैल गई, कोई नहीं जान पाया। अन्दाज तब लगा, जब लौ की ऊष्मा महसूस होने लगी।

तब तक रिश्तों को आग ने निगलना शुरू कर दिया था। रिश्ते एक बहुत ही नाजुक डोर से बँधे होते हैं। एक हल्की सी तरंग और वह टूट जाते हैं। रिश्तों की डोर को बहुत सहेजकर रखना पड़ता है, नहीं तो टूटते उनको देर नहीं लगती।

उस दिन तो एक कमरा दूसरे से बोल, "तुम्हारी मजाल कैसे हुई मेरी कुरसी उठा ले जाने की? इसमें तो बाबू पढ़ता है। यह उसके पिता ने उसके लिए लाकर दी थी। चुपचाप हमारी चीज वापस करो।"

और चुपचाप न सही, थोड़ी अशांति से वह कुरसी चलते हुए वापस अपने स्थान पर पहुँच गई। कुरसी को थोड़ा गुमान भी हुआ कि देखा मेरा महत्व! दो सगे परिवार मेरे कारण आपस में लड़ रहे हैं। रात–भर सामानों की खट–पट सुनाई पड़ती रही। पूरा परिवार तो सो गया, पर माँ का हृदय जाग रहा था। दिन में वह कुरसी उसको भेदती हुई गई थी। उस कुरसी की ठक्–ठक् को उसने अपने सीने में महसूस किया था। तभी से कानों में

वह ठक्–ठक् की ध्वनि गुंजित हो रही थी और माँ का हृदय काँप उठा। धीरे–धीरे उष्मा से भरने लगा।

माँ रूपी मकान को लगा कि यह शायद आनेवाले भूकंप का पहला झटका था और पूरी शिद्दत से उसने महसूस किया था। झटका बहुत मामूली था, पर निस्संदेह नींव को हिला गया था। शायद उस झटके के स्पंदन माँ रूपी मकान काफी दिनों तक महसूस करते रहे थे।

जब भी भूकंप के झटके आए हैं, मामूली ही सही, नींव कमजोर कर जाते हैं, और आनेवाले तीव्र झटकों का संकेत दे जाते हैं; क्योंकि झटके वहीं आते हैं, जहाँ धरती कमजोर होती है और आने के बाद दरारें छोड़ जाते हैं।

वह माँ रूपी मकान शायद यह समझी नहीं, गलतियाँ कहाँ हुई हैं! उसने तो अपना सबकुछ न्योछावर कर दिया, पर फिर यह त्रुटि कहाँ है, क्यों है? हृदय के साए तले सब पुत्र, पुत्रवधुएँ एकत्रित होती, पर बेनूर सी। अब वहाँ परिवार के किसी सदस्य का जमावड़ा नहीं होता था। वह छत अब किसी को प्रश्रय नहीं देती थी। प्रश्रय देती थी तो सिर्फ एक अजीब–सी खामोशी को, जो सिमट आई थी उन रिश्तों में, दरारों के साथ, उन तहजीबों में खामोशी ने अपना अमली जामा लपेट लिया था।

पहले–पहल तो वह वक्षस्थलरूपी कमरा खुला भी रहता था, पर धीरे–धीरे जब सबने वहाँ आना और एक साथ मिलना–जुलना छोड़ दिया, तो बड़ी बहू ने आकर उसको बंद कर दिया। जब वह दरवाजा बंद हुआ तो हवा में भी कोई सरसराहट नहीं हुई थी। न कोई वाद–प्रतिवाद, सिर्फ एक एहसास कि वह हृदय, जिसके साए तले सब मिलते थे, आज से बंद हो गया है। शायद आगे बढ़ने के लिए बदलते वक्त और हालात के साथ समझौता होता है; क्योंकि आज तक कोई वक्त के साथ टक्कर नहीं ले पाया है। धीरे–धीरे एक विशाल अट्टालिका तैयार हो गई। आजकल जब पूरा देश सिमटकर तीन कमरों की कैद में समा रहा हो तो बड़े–बड़े महल के माफिक ही प्रतीत होंगे। उस मकान को बनाने में एक पूरे परिवार का एक सम्मिलित प्रयास था जो धीरे–धीरे बिखर गया।

उस दिन वाला तांडव झटका न था, भूकंप था और अगर मापदंड देखा जाए तो काफी तीव्र। बड़ा भाई छोटे भाई से हिसाब–किताब की रकम पूछ रहा था। और हिसाब में गड़बड़ी आने पर बड़े भाई का पारा चढ़ रहा था। दोनों भाइयों की पत्नियाँ भी जोर–शोर से इस भूकंप को बढ़ा रही

थीं बात रूपए से शुरू होकर पहले बीवियों पर आई और फिर ले–देकर बच्चे भी इसका मोहरा बनने लगे। जब तक बात पुत्रवधुओं पर थी, तब तक माँ का हृदय आनंदित हो रहा था। अपने जानी दुश्मनों को यूँ लड़ते और जलील होते देख कौन आनंदित नहीं होगा? जब बात पोता–पोतियों पर आई और उनका हिस्सा होते देख, माँ की हृदयरूपी नींव हिलने लगी। बड़ा, "माँ ने ही तुम्हें इतना सिर चढ़ा दिया है, इतना संरक्षण दिया कि तुम बड़े–छोटे का कायदा भूल गए हो। माँ की ही परवरिश में कोई दोष था, जो तुम इतने बेईमान निकले। अब हम साथ नहीं रहेंगे। बीच में दीवार खिंच जाएगी और अपना हिस्सा बेचकर तुम मेरा हिसाब चुकता करो।"

देखते देखते भाई–भाई के कमरे के बीच दीवार खिंच गई। माँ का एक बाजुनुमा कमरा एक भाई को मिला और दूसरा दूसरे को। दीवार ठीक माँ के हृदय के बीचोबीच खिंची, और माँ का कलेजा फट गया।

दीवार खिंचना भी उस मकान के लिए काफी न था। कुछ दिनों बाद वहाँ कोर्ट का नोटिस लग गया। यह भूमि नीलामी के लिए है।

बड़े भाई ने छोटे भाई पर चार सौ बीसी का मुकदमा कर दिया था और अपना हिस्सा वापस लेने के लिए कोर्ट में वसूली का नोटिस दे दिया था। माँ रूपी मकान सरेआम सरेबाजार नीलामी के लिए तैयार था। उसकी कीमत देनेवाला चाहिए था।

ऊँची बोली का दिन आ गया।

दस लाख एक, दस लाख दो और दस लाख तीन।

मकान अब फलाँ–फलाँ मिष्ठराम प्रसाद का हुआ। अब कानूनन शंकर साहू और उमेश साहू को बतौर मुआवजा यह रकम दी जाएगी। मुकदमा खत्म हुआ। और माँ बिक गई, उनका सपना बिक गया। दूसरे दिन ही उमेश साहू और शंकर साहू अपने–अपने रास्ते चल दिए। अपने कमरों को समेटने में उन्हें ज्यादा वक्त न लगा। मकान बनाने में जितना वक्त लगा था, उससे भी कम टूटने में लगा।

शंकर के बेटे ने एक उचटती निगाह उस टूटी कुरसी पर डाली, जिसके कारण वह एक बार अपने चचेरे भाई से लड़ा था।

"पापा, इस कुरसी का क्या काम? ये तो बिल्कुल बेकार है। क्या करेंगे, इसको ले जाकर?"

"हाँ बेटा, फेंक दो। आलतू–फालतू चीजों को इकट्ठा नहीं करना चाहिए।"

बेटे ने तो ठीक से ही कुरसी फेंकी थी, पर वह सीधे माँ के हृदयरूपी कमरे पर गिरी और वहाँ छेद कर गई।

अब वहाँ कोई झटका नहीं लगा। क्योंकि वहाँ कोई उबाल नहीं था। वहाँ का वेग बर्फ के सदृश शांत था। वह कुरसी वहीं पड़ी रही।

शंकर साहू और उमेश साहू के जाने के बाद नीलामी पर जिन साहब ने मकान खरीदा था, उन्होंने प्रवेश किया।

आते ही अपने मुनीम को पहला आदेश दिया।

"गिरा दो ये दीवार, तोड़ तो सारे कमरे। यहाँ पर एक शराबखाना बनेगा।" तत्काल ही माँ रूपी मकान जमींदोज हो गया। कुछ ही दिनों में उसका नामोनिशान न बचा। ट्रैक्टर रौंद–रौंदकर माँ रूपी मकान के अंगों को तहस–नहस करने लगा। एक हिस्सा यहाँ गिरा, दूसरा वहाँ।

नींव वहीं रह गई।

कुछ ही दिनों में वहाँ एक नया पेंट किया हुआ बोर्ड लगा–

'स्वनिल मयखाना आइए,

जन्नत का मजा पाइए।

मयखाने के गीत से नींव की ईंट बज उठी।'

माँ का सपना था मकान। हर इनसान के जीवन का एक सपना होता है। अफसोस सपने देखना गलत नहीं है, पर सपनों का चुनाव होना चाहिए। माँ ने अगर घर का सपना देखा होता तो आज भी दोनों भाई साथ होते। घर, घर होता है और मकान मकान!

मकान चारदिवारी से बनता है, जिसको ढहने में ज्यादा वक्त नहीं लगता, पर घर के रिश्ते तो खुशबुओं से बनते हैं। उनमें इतनी ऊर्जा होती है कि रिश्ते उसी ऊर्जा से जुड़े रहते हें।

माँ का सपना–क्या सही था?

■

परछाईं

तुम तो मुझको छोड़कर चले गए थे, हमेशा–हमेशा के लिए, एक ऐसे जहाँ में जहाँ से कोई शायद जाकर वापस नहीं आता। कैसे जाता है, पता है ? मैंने तो तुम्हें अश्रुपूरित निगाहों से अपने घर से विदा किया था, जैसे कोई छोटी दीवाली के दिन यम का दिया निकालकर बाहर रखता है, कभी वापस अंदर न लाने के लिए। तुमको मैं हर बार विदा करती थी ड्यूटी पर जाने के लिए पर तुम वापस आ जाते थे। उस दिन क्यों नहीं आए? और मुझसे क्या खता हो गई थी, जो तुम रूठ गए थे?

तुम्हारा ही यह निर्णय था कि मैं बच्चों के साथ इसी शहर में रह जाऊँ और तुम जिस शहर में तुम्हारा तबादला हुआ था, वहाँ ज्वॉइन कर लो। दोनों शहरों में ज्यादा दूरी नहीं थी। अतः हर शनिवार–इतवार तुम मेरे पास चले आओगे। तुम आते भी थे। पूरे हफ्ते मुझे तुम्हारा इंतजार रहता था, पर सप्ताहांत शायद प्रतीक्षा की बेसब्री बढ़ा देता था। मैं बाहर गेट पर निगाहें लगा तुम्हारी गाड़ी का इंतजार करती थी। तुम्हारे आते ही वह सूना–सा पड़ा घर जैसे एकदम से खिल उठता था, मानो सूनी पड़ी धरती पर जैसे वर्षा की प्रथम फुहारें पड़ी हों और वह लजाकर हरीतिमा की चादर ओढ़ ले रही हो।

तुम्हारे रहने से कब वक्त बीत जाता था, पता ही न चलता और फिर पूरे सप्ताह का कष्ट। शांत से घर में तुम कैसे जान डाल देते थे! तुम्हारे स्पर्श को मैं हर जगह महसूस करती थी। जब तक तुम रहते, तब तक यह एहसास भी मुझको न हो पाता कि तुम्हारी साँसें कैसे इस कमरे के एक–एक कोने में बस गई हैं!

मैं सुबह उठकर आईने में जब निगाह डालती तो तुम वहाँ शीशे के पीछे खड़े होकर बोल रहे होते। पिछली बार जब तुम आए थे तो अपना टूथब्रश भूल गए थे। उसको पहले मैंने सहेजकर रखना चाहा कि तुम जब इस बार आओगे तो तुम्हें सौंप दूँगी, पर उसको छूते ही मेरे हाथों में एक

स्पंदन हुआ और मैं सिहर उठती। तुम्हीं तो कोमलता से मेरे हाथ छू रहे थे। वह तुम ही तो थे, जिसको मैं कैसे नहीं महसूस कर पाई?

तुमको कपड़े सहेजकर रखने की आदत है और मैं ठहरी अस्त–व्यस्त। इस बार तो तुमने हद कर दी। जाने के पहले मेरी आलमारी का एक–एक कपड़ा तुम सहेजकर रख गए थे। शायद मेरे अस्त–व्यस्त जीवन को तुम सहेजना चाहते थे। मैंने जब पहनने के लिए काली साड़ी खोली, जो तुमको बेहद प्रिय थी, तो मैं तुम्हारे एक–एक स्पर्श को अपने अंदर महसूस कर रही थी।

शायद यह भी तुम्हारी कोई शरारत रही हो, मुझे सताने की। अब तो मैं हर कपड़े पर उभरे हुए तुम्हारे निशान के साए में ताउम्र सिमटी रहूँगी। तुम मुझको हमेशा ढके रहोगे, हर तकलीफ में ढाल बनकर।

तुममें बहुत चुलबुलापन था। तुम खुद ही कहते थे कि जिंदगी छोटी–सी है, इसको पूरे तौर पर जी लेना चाहिए। हमें यह नहीं पता था कि तुम्हारी जिंदगी इतनी छोटी होगी! शायद तुम्हें अपने जाने का एहसास था। इसीलिए इस बार जब आए थे तो देव के सूर्य मंदिर लेकर गए थे। एक घंटे के सफर में दस लोग गा–बजाकर आनंद मनाते रहे थे, पर तुम पूरा समय चिंतित थे। बाद में तुमने बताया कि चूँकि तुम कार ड्राइव कर रहे थे और पूरा परिवार उसमें था, उसकी जिम्मेदारी तुम्हारी थी। तुम तब भी बीच–बीच में मौका निकालकर कनखियों से चश्मे के बीच में मुझको देख लेते थे और मुझसे निगाह मिलते ही तुम मुसकरा पड़ते, जैसे मेरी चोरी पकड़ी गई हो। तुम हाई–वे पर कोई भी रिस्क नहीं लेना चाहते थे। अब हमें दुर्घटना से कौन बचाएगा? हम सबकी नौका को कौन पार लगाएगा ? शायद इसीलिए तुम हम सबको ईश्वर के संरक्षण में सौंपना चाहते थे कि तुम्हारे जाने के बाद हम सब उनकी छत्रछाया में रहे।

इतनी तड़प, इतनी पीड़ा। ओफ! आज भी जब मैं मंदिर के प्रांगण में प्रवेश करती हूँ तो तुम्हारे साए तले ईश्वर का नमन करती हूँ। वह जगह, जहाँ तुमने झुककर ईश्वर की पूजा की थी, मैं आज भी वहाँ तुम्हें महसूस करती हूँ। तुम्हारे साथ मंदिर जाना मेरे लिए सबसे अनुपम ईश्वर का प्रसाद था। कहाँ उसकी पूजा में चूक हो गई, जो तुम हमेशा के लिए मेरी जिंदगी से चले गए ?

ईश्वर पर चढ़ी हुई माला तुमने मेरे गले में डाल दी थी। आज भी मैंने उसे सहेजकर रखा है। मेरी जिंदगी की वह अमूल्य निधि है।

जब तक पास थे, तब तक जीवन का मूल्य नहीं पता था। सबकी जिंदगी सुचारू चलती है, मेरी भी चल रही थी। सबकुछ जीवन में कितना अचानक होता है! अपने यूँ हमेशा के लिए छोड़कर चले जाते हैं, और ऐसी रिक्तता छोड़ जाते हैं, जिसकी पूर्ति कोई नहीं कर सकता।

तुम्हारे आने से पहले ही तुम्हारे कदमों की चाप की गूँज कानों में पड़ जाती है। आज भी मैं हर चीज में तुम्हारा स्पर्श महसूस कर रही हूँ।

इस बार जब तुम आए थे तो शायद सोचकर आए थे कि अबकी दुबारा यह आने–जाने का क्रम खत्म हो जाएग। काश, इस भवसागर से आने–जाने का क्रम तुम्हारा खत्म न हो? मैं अगले जन्म में भी तुम्हारी अर्धांगिनी बनूँगी। जीवन भी कैसा हो, सिर्फ चलता रहता है। रूकना तो हम जानते हैं। रुक जाते हैं, दूर हो जाते हैं। मैं भी सिर्फ जिए जा रही हूँ, चूँकि मर नहीं सकती। जिंदगी के सफर में हँसकर ही सही, गम को जिए जा रही हूँ।

दौलत है खजाने भर की, पर असली दौलत की तड़प है। यादें हैं हसीन, उन्हीं को सँजोने की चेष्टा मात्र है।

जाने के पहले बच्चों ने बोधगया घूमने की जिद की थी। इस बार तुम बोले थे कि मैं ही गाड़ी चला लेता हूँ। घर से वहाँ तक का सफर अंतहीन होता तो कितना अच्छा होता। सड़क के हर घुमावदार मोड़ पर तुम मुसकरा पड़ते थे। अब अगर कोई भी घुमाव आएगा तो मैं किसका सहारा लूँगी? जब तुम गियर बदलते थे तो अनायास ही मेरे हाथों का स्पर्श तुम्हारे हाथ को करता था और तुममें एक नया स्पंदन पैदा हो जाता था। आज भी तुम्हारे हाथों का स्पर्श उसके ऊपर मैं महसूस करती हूँ। जब गाड़ी चलाती हूँ तो तुम जाने कहाँ से अनायास मेरे बगल की सीट पर आ जाते हो और मेरा मार्गदर्शन करते हो। मैं अकेली कहाँ हूँ ? तुम हमेशा मेरे साथ चलते हो।

याद है, वह मुसलाधार बारिश। जब सारी तरफ घटाटोप बारिश हो रही थी। तुम्हें बारिश कितनी पसंद थी! और बारिश में नहाना हो तो बस तुम्हें एक बहाना चाहिए। तुम मेरे साथ होने के लिए नौकरी से छुट्टी लेकर आ गये थे। जब मैंने दरवाजा खोला था तो तुमको सामने पाकर मैं प्यार के कोमल स्पर्श से भीग गई थी। तुमने खेल–खेल में मेरे हाथ पर बारिश की एक बूँद रखी थी। बिल्कुल साफ और मासूम सी बूँद। आज भी बाहर अँधेरा

है। घनघोर बादलों ने चारों तरफ से धरा को आच्छादित कर दिया है। लगता है, पृथ्वी उसकी कालिमा में लिपट गई है। बीच में बिजली कड़कती है तो घटा में रोशनी का संचार करती है। मेरे हाथ में आज भी एक बूँद है, जो मेरे नेत्रों से लुढ़ककर मेरी हथेली पर आ गिरी है। उतनी ही बड़ी है। पर उतनी साफ और कोमल नहीं है। थोड़ी नमकीन है। इसमें मेरी जिंदगी की कडवाहट मिली है। मैं इस बूँद का क्या करूँ ? डर है कि अगर कसकर हथेली बंद करूँगी तो यह कड़वाहट मेरे चारों तरफ फैल जाएगी। इसको उड़ जाने देती हूँ जिससे शायद कुछ शीतलता आएगी। इसी तरफ से मेरे गम भी शायद उड़ जाएँ।

वह बिछिया, जो दुर्गापूजा में तुमने खरीदकर दी थी, मैंने उतारकर एक छोट डिब्बे में रख दी है। दुर्गा प्रतिमा का आशीर्वाद जो उसको मिला हुआ है। सिंदूरदानी का सिंदूर भी एक दिन आदित्य ने गिरा दिया। उसके छींटे सब तरफ छितरकर बिखर गए। और मेरी माँग सूनी हो गयी।

मैंने वह काली साड़ी बक्से में बहुत सहेजकर रख दी है। तुमने हमेशा कहा था कि वह साड़ी मेरे ऊपर काफी फबती है। लिहाजन तुम्हारे सिवा उस साड़ी में मुझको और कोई न देखे। तुम जैसे तह कर गये थे, मैंने वैसे ही उसको बक्से में डाल दिया है।

वह माला जो तुमने विष्णुपद से लौटते हुए मुझे पहनाई थी, मैंने सहेजकर अलमारी में बंद कर दी है।

कल जब मैंने आलमारी खोली तो वह फूल पूरे सजीव हो उठे थे। उनमें से वही खुशबू आ रही थी, जो उस दिन थी, जब तुमने मुझे पहनाई थी।

आज सुबह जब मैंने दरवाजा खोला तो आदित्य और सोना पेड़ के नीचे बाहर खेल रहे थे। वर्षा के बादलों ने जो कालिमा गोद ले ली थी, हट चुकी थी। हरीतिमा की लहर सब तरफ फैली हुई थी। चमेली के फूल खिलकर बिखर रहे थे। मैं कैसे नहीं देख पाई कि तुम तो कहीं नहीं गए थे। तुम्हारी हँसी की आवाज उन पेड़ों के झुरमुट के नीचे से आ रही थी। चमेली के फूल में भी तो तुम सजीव हो उठे थे। तुम्हारे कदमों की पदचाप मेरे कानों में देर तक गूँजती रही और मैं सामने की डगर पर तुम्हारी आकृति को पास आते देखती रही। तुम कहीं गए ही नहीं थे। तुम तो मेरे पास ही थे। और मैं मुसकरा उठी।

शायद बहुत समय के बाद मैं मुसकुराई थी। ■

हॉर्न

पति की तरफ उसने कनखियों से देखा और अपना हाथ स्टीयरिंग के ऊपर बढ़ा दिया। कार की स्टीयरिंग के ऊपर अभी उसका पूरी तरह से नियंत्रण नहीं हुआ था, पर गाड़ी चलाते हुए कुछ खासा वक्त बीत गया था।

आज वह अपने पति को अचंभे में डालना चाहती थी। पति के साथ आज घूमने का विचार बना था और आज दोनों ने निर्णय लिया कि लांग ड्राइव पर जायेंगे। शोभा ने गाड़ी चलाने की जिद की और विवेक मान गया। शोभा के पास ड्राइविंग लाइसेंस भी था और गाड़ी चलाते हुए कुछ अच्छा खासा वक्त बीत ही चुका था। लिहाजा, चिंता की कोई विशेष बात नहीं थी।

शोभा ने गाड़ी स्टार्ट की। पैर गियर पर कसकर दाबा और एक्सीलेटर पर पैर रखा ही था कि विवेक ने कसकर सलाह दी–''अरे, एक्सीलेटर पर पैर रखी रहो। मत हटाओ, मत हटाओ। उफ् ओ! ऐसे कहीं गाड़ी स्टार्ट होती है।'' शोभा का दिमाग शून्य हो गया और हाथ वहीं–का–वहीं रुक गया। हल्की सी पीछे से स्टाफ ड्राइवर की हँसी सुनाई दी। अपने को नियंत्रित करके शोभा ने फिर से मोरचा सँभाला। अबकी कोई कसर नहीं छोड़ूँगी। मन–ही–मन सोचा और फिर गाड़ी की चाबी घुमा दी। पिछले महीने से गाड़ी चलाना सीख रही है, पर ऐसा पहले तो नहीं हुआ। शोभा ने कसकर आँखें बंद की, और दोनों पैर बारी–बारी से गियर और स्टीयरिंग पर रख दिए। ये क्या गाड़ी एक तेज धक्के से स्टार्ट हो गई।

''अरे, अरे! क्या गाड़ी भिड़ा ही दोगी! पैर गियर पर से हटाओ। थोड़ी सी गाड़ी की स्पीड बढ़ाओ और दूसरा गियर लगाओ।''

शोभा ने वैसा ही किया। गाड़ी की स्पीड थोड़ा बढ़ाया और दूसरे नंबर का गियर लगा दिया और यंत्रवत् गाड़ी को चलाती रही। बगल में पति की मौजूदगी का एहसास उसे अच्छे से हो रहा था। पति की चिंता को वह हल्के–हल्के महसूस कर रही थी। जिसकी पत्नी ड्राइविंग सीट पर हो,

उसका पति यूँ ही न चाहकर भी चिंता तो करेगा, यह तो बड़ी स्वाभाविक सी बात थी।

गाड़ी खर्र–खर्र चल पड़ी। धीरे–धीरे शहर की भीड़–भाड़ पीछे छूट गई। अब गाड़ी हाइवे पर आ गई थी। ''ओफ! अगर ऐसे ही तुम गाड़ी चलाती रही तो इस जन्म में तो हम लोग 'मैथन' पहुँच ही चुके!''

शोभा ने गाड़ी की स्पीड बढ़ा दी। सहसा विवेक चीखा, ''ब्रेक लगाओ।'' शोभा का पैर भय के मारे तेजी से ब्रेक के ऊपर आ गया। गाड़ी चर्रर की आवाज से कुछ दूरी पर जाकर रुक गई। वह तो गनीमत हुई कि स्पीड ज्यादा तेज न थी और गाड़ी पलटने से बच गई, नहीं तो कोई बड़ा हादसा होता।

''तुम भी बस!''विवेक चीखा।'' अभी हम सब मरते। अरे, इतनी तेजी से भी ब्रेक लगाते हैं! गियर और ब्रेक पर एक साथ पैर पड़ना चाहिए, तब न गाड़ी धीरे होती है। चलो, अब स्टार्ट करो।''

शोभा की आँखों में आँसू आ गए। थोड़ी हिम्मत करके उसने फिर से गाड़ी को स्टार्ट करने की कोशिश की। दो–तीन बार के असफल प्रयास के बाद गाड़ी स्टार्ट हुई। थोड़ा आगे बढ़ने पर शोभा ने रोते हुए पूछा, ''पर ब्रेक लगाने के लिए आपने क्यों कहा था ?''

विवेक थोड़ा खीझ उठा, ''तुम औरतों की यही आदत तो बुरी होती है। कुछ भी समझाओ, सिखाओ, पर सब व्यर्थ। मूर्ख हो मूढ़! अरे, समाने स्पीड ब्रेकर था। अगर ब्रेक पर पैर रखने के लिए नहीं बोलते तो गाड़ी जंप करती। उलट भी सकती थी।''

''पर स्पीड ब्रेकर तो मैंने भी देखा था। मैं उसको देखकर स्पीड को तो कम कर ही रही थी।''

''ये लो। अरे, गाड़ी पर ध्यान दो। तुम औरतों की ये आदत और भी खराब होती है कि कुछ भी कहो, बस बहस पर उतारू हो जाती हो। अच्छा न, अब हम नहीं बताएँगे। जैसे चलाना है, चलाओ। जिसे कुचलना है, कुचलो। जब भिड़ना है, भिड़ो।''

शोभा विवेक की बातें न सुनकर गाड़ी चलाने में मशगूल हो गई। इतना कुछ कहने के बाद भी विवेक चौकस ही बैठा था। न जाने कब कोई सलाह देने का मौका आ जाए। विवेक के चेहरे की चढ़ती–उतरती रेखा, उसकी मानसिक स्थिति का बोध बयाँ कर रही थी।

अब पूर्ण हाइवे आ गया था। शोभा ने भी गाड़ी को स्पीड दे दी थी।

''थोड़ा और बढ़ाओ, ''विवके बोला, ''थोड़ा और। अरे, अरे बस, इतनी तेज नहीं, थोड़ा कम, बस, हाँ अब ठीक है। बस, अब इसी स्पीड में चलती रहो।'' फिर विवेक ने गियर की तरफ देखा, ''हाँ, इस स्पीड में फोर्थ गियर दे दो। बदलो।''

और अचानक शोभा का हाथ गियर पर गया और अपने आपसे ही थर्ड से फोर्थ हो गया। गाड़ी चलती रही। सामने एक गाँव आने वाला था।

विवेक ने गाड़ी धीरे करने के लिए कहा, ''दूसरा गियर दे दो। सँभालकर चलाओ। गाँव में बच्चे सड़क पर ही खेलते रहते हैं। उनका ध्यान रखो।'' शोभा सब बात सुनती जा रही थी। उसका ध्यान अपनी गाड़ी और स्टीयरिंग पर ही था। बीच–बीच में विवेक के शब्द उसमें खलल डालते थे।

सहसा सामने से भेड़ों और गायों का झुंड सड़क पर आ गया। उनको हॉर्न पर हॉर्न देने से भी कोई लाभ नहीं हुआ। ये उनका इलाका था। सड़क भी उनकी थी। यहाँ हल्ला मचाना एक व्यर्थ की बकवास थी। शोभा ने गाड़ी को धीरे से कच्ची सड़क पर उतार लिया और गाड़ी धीरे–धीरे चलाती रही। फिर भेड़ों और गायों के झुंड के हटते ही गाड़ी को सड़क पर ले आई और धीरे से स्पीड बढ़ा दी और दूसरा गियर दे दिया। गाड़ी थोड़ा तेज हो गई। सामने से तेज स्पीड से बस आ रही थी। लोकल बस थी और गाँव–गाँव रूककर यात्री को बैठाती थी और पास के जिले में ले जाती थी। बस अपनी तरफ चल रही थी और गाड़ी अपनी तरफ। कहीं कोई डर नहीं। कोई चिंता की बात नही। शोभा ने स्पीड थोड़ा और बढ़ा दिया। अब गंतव्य पास था और तेजी से पहुँचने की हड़बड़ी। पता नहीं क्या हुआ, कैसे हुआ कि वह बस शायद, जो रुकी तो एक माँ अपनी चार साल की बेटी के साथ उससे उतरी। उतरने के क्रम में वह बच्ची भागती हुई सड़क की दूसरी तरफ आ गई। और शोभा के गाड़ी के नीचे आती–आती बची। इससे पहले कि विवेक कुछ कह पाता, शोभा ने बड़ी ही चतुराई से गाड़ी पर ब्रेक दिया और दूसरा पैर गियर पर चला गया। तुरंत में की गई कार्रवाई से गाड़ी तुरंत रुक गई और बच्ची बस मडगार्ड के पास टकराकर नीचे गिर पड़ी। उसकी माँ चीखते हुए आई और अपनी बच्ची को कलेजे से लगा लिया।

उसको सहलाती जाती थी और रोती जाती थी। बच्ची अभी दहशत में थी, पर धीरे से उसने आँखें खोल दीं।

''माँ'' कहा और अपनी माँ से चिपट गई। आस–पास के लोग भी इकट्ठा हो गए थे। बच्ची को मामूली सी भी खरोंच नहीं आई थी। फिर शोभा की तो गलती भी नहीं थी। अतः थोड़ी देर वहाँ रुकने के बाद शोभा फिर से गाड़ी की स्टीयरिंग पर आकर बैठ गई।

विवेक ने भी बगल में बैठकर माथे पर छलक आए पसीने की बूँदों को पोंछा। ''शुक्र है, एक बड़ा हादसा टलते–टलते बचा। नहीं तो आज लेने के देने पड़ जाते। कितनी बार कहा है कि गाड़ी ठीक से चलाया करो। कहीं भी कोई भी हादसा हो सकता है। तुम भी न!''

पीछे स्टाफ कानाफूसी कर रहा था। 'आज मैडम की कुशलता से एक हादसा होते–होते बचा। मैडम एक कुशल ड्राइवर हैं। शोभा उस सबसे बेखबर गाड़ी को चला रही थी। पहले वह जिन चित्रों से बेखबर रही, उनका अब आनंद ले रही थी। पेड़–पौधे और हरियाली उसके साथ भाग रहे थे। गाँव की सीमा पार करने से पहले उसने कसकर गाड़ी का हॉर्न दिया, एक बार, दो बार, पाँच बार और गाड़ी की स्पीड बढ़ा दी। स्टीयरिंग पर उसका कसाव बढ़ गया।

उसने धीरे से गाना लगा दिया और उसका आनन्द ले गाड़ी चलाने लगी। आज महिला ने जीवन–रूपी गाड़ी की स्टेयरिंग अपने हाथ में ले ली थी।

■

दोराहा

हम दोराहे पर खड़े थे। नहीं, यह चौराहा था। हम जिस मुकाम पर थे, वहाँ दो राहें आपस में मिलती थी। एक तरफ मेरी गाड़ी और दूसरी तरफ वह नीली मारूति कार। उसमें सवार एक सुंदर युवक। कुछ ऐसा अजीब संयोग हुआ कि उस दोराहे पर मेरी गाड़ी ऊपर थी और दूसरी सड़क नीची थी और नीचे से ऊपर को आती थी। पहाड़ी इलाका नहीं था, पर सड़कें तो ऐसी ही होती हैं। कोई तारतम्य नहीं, कोई हिसाब नहीं।

सड़क बेहद पतली और सँकरी थी। उसमें ज्यादा जगह नहीं थी। वैसे भी जनसंख्या इतनी अनियंत्रित है कि हमारे देश में किसी के लिए भी जगह की सख्त कमी पड़ गई है। इनसान तो इनसान, जंगल में शेरों को भी अपना इलाका छोड़कर दूसरे शेरों के इलाके में प्रवेश करना पड़ रहा है। शहरों की स्थिति तो माशाअल्लाह हर सेमिनार, समारोह का विषय ही होती है। बढ़ती आबादी और इन्क्रोचमेंट, हर का इन्क्रोचमेन्ट, स्थान का और हर सामान का, और उससे भी बढ़कर इनसानी वजूद का इन्क्रोचमेंट।

अब दिक्कत यह हो गई कि दोनों की गाड़ियाँ आमने–सामने। कौन पीछे जाए, इस पर अमौखिक प्रश्न। मेरा ड्राइवर भी कम अक्खड़ न था। उसको तो जैसे दिक्कत ही नहीं, असंभव और स्वभाव के विपरीत लगता था गाड़ी खिसकाने में। उसके लिए पीछे हटना, मानो मैदान–ए–जंग से पलायन करना।

उसका तो हाइवे पर ये मिजाज रहता है कि क्या मजाल कोई गाड़ी उसको ओवरटेक कर ले। उसकी शान में मानो गुस्ताखी हो जाती है। अपनी शान भला वह नीचे क्यों गिरने देगा ? वह डटा रहा और स्टीयरिंग पर उसका इतना जबरदस्त नियंत्रण है कि कोई गाड़ी उसको पार नहीं कर सकती। बहुत ही पुराना ड्राइवर है। मँजा हुआ खिलाड़ी, पर गलतियाँ तो किसी से भी हो सकती हैं। फिर वह जो चार पहिए की मुआ मुर्दा चीज चला रहा होता है, जिसको विज्ञान की भाषा में गाड़ी बोलते हैं। है भी तो

महज यह मशीनी इंजन। कब दगा दे जाए ? जब इनसानी कल–पुर्जों का भरोसा नहीं, तो यह तो इनसान का ही बनाया हुआ है। जब तक ऊपर वाले की इनायत, तब तक ठीक। उसके बाद सब बेकार। 'बोलो राम' होते देर नहीं लगती। जनाब, ड्राइवर साहब अफीम खाकर अपनी मूँछों पर मानो ताव देते हों कि सड़क पर उतर गए तो पीछे की तरफ कूच नहीं करेंगे। सब–की–सब राणा सांगा की औलाद हैं। राणा तो मर गया, पर अपने वंशज छोड़ गया, जो अब ड्राइवरी कर इधर–उधर भटक रहें है और नये साम्राज्यों की कल्पनाओं में पंख मार रहे हैं।

अब साम्राज्य तो गए। न राजे रहे, न महाराजे रहे। न घोड़े रहे, न बग्घी। आधुनिक शान–शौकत के नाम पर पेट्रोल से खिंचनेवाली ये अत्याधुनिक गाड़ियाँ जरूर हैं, जिनको हाँक रहे हैं ये ड्राइवर। जब घर से निकलते हैं तो मानो कफन बाँधकर निकलते हैं कि जो बोले सो निहाल, सतश्री अकाल, अब फतह हुई कि तब। अगर शाम होते–होते ठीक–ठाक घर पहुँच गए तो मानो संग्राम में शहीद होने से बच गए।

समस्या यहाँ संग्राम की नहीं थी। समस्या गाड़ियों को पार करने की थी, और वह थी कि अड़ी हुई थी। न इधर वाली टसक रही थी, न उधर वाली मसक रही थी। उनमें सवार ड्राइवर मानो मोर्चा सँभाले अपनी प्रतिष्ठा का सवाल बनाए अड़े खड़े थे। दोनों ही ड्राइवरों की मूँछें नहीं थी, पर उन पर ताव ऐसे दे रहे थे, मानो अब मरे कि तब।

तभी पीछे से एक गाड़ी ने मेरी वाली गाड़ी को टक्कर मारी। मेरी गाड़ी का ड्राइवर उतरा और बोला, ''देखते नहीं कि गाड़ी खड़ी है?'' एक भद्दी सी गाली भी दी और झुककर गाड़ी का मुआयना करने लगा कि कहीं गाड़ी को कुछ नुकसान तो नहीं पहुँचा है। सबकुछ ठीक–ठाक देखकर वह संतुष्टि के भाव के साथ आकर बैठ गया। फिर से उसने कमान मानो सँभाल ली है। शुक्र है, गाड़ी में चोट नहीं लगी थी। नहीं तो एक गदर अलग हो जाता। गदर का होना तय था।

जिस गाड़ीवाले ने हमारी गाड़ी को ठोंका था, मुसकान दबाकर बोला, ''शुक्र है, अभी तो टक्कर मारी थी और गाड़ी बच गई, नहीं तो गाड़ी को तो अच्छे से ठोंक देता। अरे! ऐसी खड़ी हो गई, मानो कोई मोटी औरत। टस–से–मस नहीं हो रही है।''

मेरे ड्राइवर के चेहरे पर क्षण भर के लिए क्रोध का भाव आया, पर वह उसको दबा ले गया। बोलना व्यर्थ था। अभी उसका मकसद गाड़ी को पार करना था, और वह अपनी सीट दुबारा छोड़ना नहीं चाहता था। उसने एक निगाह उस गाड़ी के ड्राइवर पर डाली। एक बाँका–सजीला नौजवान था। नीरा ने थोड़ा मुसकराने की कोशिश की। शायद उसकी मुसकुराहट इस इनसान पर कोई तीर का काम करे और वह अपना हठ छोड़ दे। उसने तो नीरा की तरफ देखने की जरूरत भी महसूस नहीं की। नीरा के दिल को ठेस लगी। ऐसे कैसे कोई नौजवान उसको बिना देखे रह सकता था? फिर नीरा का ध्यान उसकी बगल में बैठी औरत पर गया। एक साधारण नाक–नक्श वाली मोटी महिला। शायद वह उस पुरुष की पत्नी थी। वह ऐसी भी सुंदर नही थी कि वह पुरुष दाएँ–बाएँ न झाँके। पर पत्नी के साथ गाड़ी में बैठा अथवा एक साथ रहने की स्थिति में बेहद दब्बू हो जाता है पुरुष। बाहर डींगें हाँकता फिरता है, पर घर में तो, ''नो नॉनसेंस।''

चलो, यह तीर भी हाथ से गया।

नहीं, तो अपनी मोहिनी अदा से कम–से–कम उसके दंभ को तोड़ सकना मुश्किल बात नहीं थी, पर अफसोस! वह तीर भी हाथ से निकल गया। अब गाड़ी में बैठना दुश्वार हो गया था। एक तो इतनी गरमी, ऊपर से यह उलझन। मन–ही–मन उस घड़ी को कोसा, जिसमें घर से निकले थे। उसके बाद ड्राइवर को गाली दी। कैसा जाहिल है ? व्यर्थ की उलझन में खुद फँस गया और मुझे भी डाल दिया।

शुरू–शुरू में जो महज एक खेल–सा लगता था, अब व्यर्थ एक झंझट बन चुका था।

कैसा निकला जाए इस समस्या से ? दोनों गाड़ियों के पीछे भी लोगों की गाड़ियों का जमावड़ा होना शुरू हो गया था। लोगों की कुछेक गालियाँ उछल–उछलकर कानों में पड़ रही थीं। नाहक ये शर्मिंदगी मोल ली।

रोज कितने आराम से काम पर जाती थी और कितने आराम से वापस आती थी। न कोई समस्या, न कोई आफत। न जाने किसका मुँह देखकर घर से निकली थी ? फिर स्वयं ही दाँतों से जबान को काट लिया। गेट के बाहर एक बार स्वयं की निगाह ही गाड़ी के फ्रंट शीशे पर आई थी। नहीं–नहीं, वह तो महज एक इत्तफाक था। सोचकर मन को समझाया। मैं कोई इतनी अभागिन थोड़ी ही हूँ कि मुँह देखने से काम बिगड़ जाए ?

अभी वहाँ गहमागहमी और आपाधापी चल ही रही थी कि पुलिसिया गाड़ी आती दिखाई दी। उसके पहुँचते ही माहौल में जैसे स्तब्धता छा गई।

पास आते ही जीप रूकी और एक–एक करके तीन–चार जवान उसमें से उतरे। आगे से एक मोटा ताजा, गोलनुमा आदमी निकला, जिसको देखकर प्रतीत होता था कि पुलिस विभाग में ठीक–ठाक खाना मिलता है। उसके पीछे से जो जवान निकले, उनमें से अधिकांश को देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो अब गिरे कि तब। शायद पुलिस में यही सिपाही काम के लिए दौड़ते रहते होंगे। बाकी विभाग तो खाने–पीने में मशगूल रहता होगा और कुरसी पर बैठे–बैठे इन मरगिल्ले सिपाहियों को आदेश देता होगा।

फिलहाल जो भी हो पुलिस की वरदी भय पैदा करने के लिए काफी है और उसकी सीटी मानो ये आदेश देती हो, ''रुक जाओ कानून की खातिर।''

वैसे कभी भी थाना कानून की खातिर सजग नहीं होती। तभी तो उसके इलाके में चोरी–डकैती, बलात्कार सरेआम होते हैं, और वे बेफिक्र बिना जवाबदेही के रहते हैं। कहीं पुलिसिया रोब झाड़ने की बात आ गए तो तत्परता देखिए।

खैर, उस जीप के आने से इलाके के लोग शांत हो गए। एक डंडा कस के मेरी गाड़ी पर भी पड़ा और शीशा थोड़ा चटक गया, पर मेरे वाले ड्राइवर को जुबान हिलाने की हिम्मत न हुई।

''क्यों भाई, क्या तमाशा लगा रखा है?'' कड़ककर दरोगा बोला।

''कुछ नहीं, सरकार।''

''तो फिर यहाँ जाम कैसे लग गया है? किसके कारण हुआ?'' फिर वही कड़क आवाज।

मेरे वाले ड्राइवर ने दूसरी वाली गाड़ी के ड्राइवर को देखा। मौन संप्रेषण हुआ और दोनों मुस्तैदी से स्टीयरिंग सीट पर बैठ गए। चुपचाप मेरी वाली गाड़ी पीछे हुई और दूसरी गाड़ी के लिए जगह बन गई और वह एक विजयी मुसकान के साथ गाड़ी निकाल ले गया। इसी बीच सिपाही पीछे रास्ता खाली करा रहे थे और जगह बना रहे थे। मेरा ड्राइवर हार गया था, पर इस समय पराजय का दुःख नहीं था, जितनी जान बचाने और भागने की हड़बड़ी थी।

उस दोराहे से निकलकर हम स्कूल वाले रास्ते पर आ गए थे। एक व्यर्थ की पीड़ी का अंत हुआ। जीवन में अक्सर ऐसे दोराहे आ जाते हैं, जब हम अपनी जिद पर इतने अड़ जाते हैं कि सरल रास्तों को कठिन बना देते हैं।

दोराहे नयी मंजिले तलाशने के लिए होते है, न कि उलझनें बढ़ाने के लिए।

■

साँसें

साँसों का आना और जाना एक अविराम चक्र है। पुनरावृत्ति दोष जीवन जीने की एक सहज प्रक्रिया और जीवन का एक अभिन्न अंग है। जीवन ही साँसें हैं और साँसों में जीवन है, एक गहरी दोस्ती..... एक खामोश रिश्ता है।

शव ही शिव है और शिव ही शव है; सिर्फ प्राणों का संचार है, जो ओंकार को श्वेत धूल में परिवर्तित कर देता है और जीवन का समागम रूक जाता है।

अस्पताल एक साफ–सुथरा आई.सी.यू. अर्थात् इंटेंसिव केयर यूनिट। हर तरफ क्लोरोफॉर्म की महक, स्प्रिट का एहसास। इतनी सफेदी है कि हे राम! जीवन के कालेपन से भय लगने लगता है।

टैंपो से उतरकर रानी ने अपना पर्स टटोला। दो–तीन रूपए की चिल्लर उसके हाथ लगी, जो उसने टैंपो–चालक को पकड़ा दी। वह भी कितनी बेवकूफ निकली। पानी में भीगने से अच्छा था कि पहले ही पर्स से पैसा निकाल लेती। जब दिमाग उलझन में हो, तो सब काम उलटा–पुलटा होता है। करे भी क्या! इधर माँ की बीमारी और उधर जीवन में समस्त झंझट। घर देखो या दफ्तर देखो? क्या करो और क्या न करो! ससुराल में तो सबका मुँह देखकर चलना पड़ता है। अपने हाथ में तो कुछ है ही नहीं। खुलकर तो कोई नहीं कहता, पर दबी जुबान से सास की निगाह काफी कुछ कह जाती है। उन तीनों की कसमसाहट–क्यों उसकी माँ ही बीमार पड़ी, क्यों उसकी शादी बड़े शहर में हुई और क्यों उसकी बीमारी की हालत में माँ को कस्बे से शहर में लाना पड़ा–से उसका हृदय चीत्कार कर उठा। क्यों वह लड़की के चोले में इस धरती पर आई? काश वह लड़का होती, तो उस पर ऐसी बातों का प्रहार तो न होता। आँखों के कोने पर उभर आए आँसुओं को उसने हल्के से पोंछा। तब ये दुर्गति उसकी माँ की कदापि न होती।

बौछार की एक बूँद उसके मस्तक पर पड़ी और वह अतीत में खो गई–बचपन के वह दिन पानी में भीगना और बीमार पड़ना। पानी की पहली फुहार के साथ वह और उसकी बहनें घर के बाहर निकल जाती थीं तथा बौछारों की मधुर ताल पर नृत्य करती थीं। प्रकृति और उसमें समागम ही तो जीवन का उद्देश्य है। मूल्य विनिमय तो मनुष्य के लिए है। ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण मुनष्य के आनंद के लिए ही किया है। मनुष्य इसको भोगते–भोगते इतना पीड़ित हो गया कि उसने अपने चारों तरफ दुःख की एक माया ही रच डाली और वह अपनी रची माया से ही पीड़ित हो गया।

रानी की माँ भी दुःखी थी। जीवन के झंझटों में उलझी उनकी ताउम्र रोते–सिसकते हुए ही बीती थी। रानी को भी याद नहीं पड़ता कि उसकी माँ कभी खुलकर हँसी भी थी। बेटियों को जनने का बोझ और उस पर तानों की बौछारों से तो जैसे पूरा जीवन ही चारदिवारी में सिमट गया हो। घर के बाहर का आंनद वह न तो कभी उठा पाई और न ही उठाना चाहा। उठाती भी कैसे? पिताजी कभी उन्हें कहीं ले जाते तब न ? वह ठहरे जीवन जीने के बेहद शौकीन। मीट–मुर्गा से लेकर जीवन के हर रंग के वह फनकार ठहरे। शराब और शबाब के वह बेहद कद्रदान थे। माँ जितना प्रतिरोध करती, वह उतना ही प्रतिशोध लेते।

एक दिन तो हद ही हो गई, जब उन्होंने अपनी एक महिला मित्र के सामने ही माँ को चाँटा मार दिया था, ''अरे, यह औरत, इसे तो कुछ भी ठीक से करना नहीं आता।''

महिला मित्र की विद्रुप हँसी और उसमें छुपा मंतव्य जानकर माँ तिलमिला उठी थी। उस दिन से माँ ने औरत और पत्नी का दर्जा भी छोड़ दिया था। वह मात्र एक हाड़–मांस की प्रतिमा ही रह गई, जो सिर्फ इसलिए चल–फिर रही थी, क्योंकि उसमें साँसों का संचार था, बच्चों का दायित्व था और परिवार की जिम्मेदारी थी। वह शव नहीं, शिव थी। आज वही साँसें टूट रही थीं। उसकी माँ उससे दूर जा रही थी और वह कुछ नहीं कर पा रही थी। वह कुछ कर भी नहीं सकती थी। वह कुछ करना भी नहीं चाहती थी।

सहसा रानी को अपने ऊपर क्रोध आया और क्रोध आया अपनी माँ पर, जिसने जीवनपर्यंत कभी पिता के किसी कृत्य का विरोध नहीं किया..... क्यों? वह माँ को झिंझोड़कर पूछना चाहती थी। शायद नहीं.... चार बेटियों

के बाद माँ करती भी क्या ? आज वह भी अपनी ससुराल में बहुत कुछ कहाँ कर पा रही थी ? वह तो नौकरी करते हुए भी बेबस और कमजोर है। शायद अबला को इस समाज में विरोध करने का कोई हक नहीं है। वह जन्मजात लाचार है। रानी का मन दुःख और हताशा से भर उठा।

पानी बरसते ही मौसम साफ और धुला हुआ प्रतीत होता है, पर धरती कादो और कीचड़ से भर जाती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आसमान अपना समस्त उन्माद पृथ्वी पर लुटाकर स्वच्छ हो उठा हो। अपनी समस्त गंदगी जैसे पृथ्वी पर उँड़ेलकर मानो आकाश हल्का हो गया हो और अनंत नई दिशाओं की खोज में निकल पड़ा हो। पर धरती–वह तो गरिमामय हो, सबकी गंध अपने में समाकर मानो जी उठती है।

उसका पैर कीचड़ से सना देखकर एक वार्डब्वॉय ने कहा, ''बाबा, पहले पैर साफ करो, तब आगे बढ़ो।''

रानी ने अस्पताल के अंदर जाकर बाथरूम में पानी की धारा के नीचे अपना पैर साफ किया। रानी की माँ को आज अस्पताल आए करीब एक महीना हो रहा था। बात बहुत मामूली थी, पर गंभीर हो चली थी। हल्का–सा वायरल जानलेवा निमोनिया में तब्दील हो गया था। वही माँ का अपनी देखभाल न करने का प्रण। जो माँ पूरी–पूरी रात जागकर बीमारी में उन सबकी देखभाल करती थी, वह अपने प्रति इतनी लापरवाह.....और उससे भी ज्यादा उदासीन तो उसके पिता रहे हैं, माँ के प्रति। अगर पिताजी को मामूली–सा सिर दर्द हो, तो पूरे घर को सिर दर्द व्याप्त जाता था।

एक बार पिताजी अपने मित्र के यहाँ से शराब पीकर लौटे थे और पूरी रात उलटी कर रहे थे। वह माँ की सेवा–सुश्रुषा ही थी, जो उनको जिला गई। माँ की अपने ईश्वर के प्रति काफी आस्था थी और यह पूर्ण विश्वास कि उनके रहते उनके पति को कुछ नहीं होगा। पता नहीं, माँ पिताजी से प्रेम करती थी या फिर उनके बिना अकेले जीने का भय मन के किसी कोने में दबा था। क्योंकि वह दिन–रात सिर्फ ईश्वर से पिताजी की सलामती माँगती थी। रानी अक्सर माँ से कहती, ''आप पिताजी को छोड़ क्यों नहीं देतीं?''

माँ के चेहरे पर जैसे भय के भाव जाग उठते, ''नहीं, रानी। औरतों के लिए ऐसा खयाल करना भी पाप है। फिर मैं कहाँ जाऊँगी, क्या करूँगी ? देखना रानी तुम चारों को ब्याहने के बाद मैं बचूँगी नहीं।''

तब रानी उनके मुँह पर हाथ रखकर कहती, "क्या माँ, आप भी...कैसी नकारात्मक सोच है आपकी?

रानी की माँ इस बीमारी से आज मानो अकेले लड़ रही थी, पर उनके साथ उनका पूरा परिवार उनके जीवन–संघर्ष में शामिल था। सभी अस्त–व्यस्त थे। सभी हैरान, परेशान और दुःखी थे। सभी उनको जीवित रखना चाहते थे। कोई भी माँ को खोना नहीं चाहता था। जीवन जब कठिनतम प्रतीत होता है, तब अनायास दबे हुए विचार ज्वलंत रूप में उभर आते हैं। बहनों का हाथ उस ईश्वर के प्रति उठ गया, जो जीवनदाता है, "हे प्रभु, मेरी माँ को इस कष्ट से मुक्ति दो।"

रानी को माँ के पास बैठे दो घंटे के ऊपर हो गया था। माँ कल रात से ही कोमा में आ गई थी। डॉक्टरों ने उनको जवाब दे दिया था, "बेहतरी इसी में है कि आप इन्हें घर ले जाएँ। इस तरह के केस में बचने की उम्मीद न के बराबर होती है। कभी भी, कुछ भी हो सकता है।"

"नहीं....।" चारो लड़कियों ने समवेत स्वर में कहा, "ये मेरी माँ हैं। इन्होंने मुझे जन्म दिया है। पाला–पोसा है, बड़ा किया है। ऐसे कैसे हम इन्हें छोड़ दें? हम भरसक प्रयास करेंगे। चाहे जितना भी पैसा खर्च हो, होने दीजिए पर माँ को हमारी खातिर ठीक होना ही पड़ेगा।"

डॉक्टर काफी देर चुप रहा। बच्चों की बातों ने उसे कटघरे में कातिल–सा खड़ा कर दिया था। वह डॉक्टर कम, जल्लाद अधिक प्रतीत हो रहा था। "ठीक है, जैसी आपकी मर्जी। वैसे केस में दम नहीं है। अब सब बाद में यह न कहिएगा कि हमने आपको अँधेरे में रखा। अगर आप किसी बड़े अस्पताल में ले जाना चाहें, तो ले जा सकते हैं। हम रेफर कर देंगे। नहीं तो जब कहिएगा, इन्हें वेंटिलेटर में डाल देंगे। साँसें, आती–जाती रहेंगी, पर ठीक होने के उम्मीद नहीं है।" डॉक्टर कमरे से बाहर हो लिया।

"डॉक्टर के लिए तो माँ मात्र एक केस है, पर हमारे लिए तो वह सबकुछ हैं। हम उन्हें मरने के लिए कैसे छोड़ सकते हैं?" नीता के स्वर में काफी उत्तेजना थी।

नीता रानी की सबसे छोटी बहन थी और अभी तक उसकी शादी नहीं हुई थी। उम्र तो हो चली थी, पर चार बहनों में छोटी होने के कारण विलंब होता रहा। अब जब शादी की बात कुछ आगे बढ़ी, तो माँ की बीमारी के कारण रूक गई। एक साल पहले जब माँ का एक्सीडेंट हुआ था, तो उसी

ने माँ की पूरे जतन से सेवा की थी। तीनों बहनें तो अपने–अपने संसार में लिप्त थीं, पर वही माँ का अविलंब बनकर खड़ी रही। किसी भी मोड़ पर उसने माँ को टूटने नहीं दिया था। वह माँ के बाल काढ़ती और अपने हाथों से खाना खिलाती। एक बार तो माँ जैसे बोल उठीं, "नीता, तू मेरी इतनी सेवा क्यों करती है?"

"आप भी कैसी बातें करती हैं? आप मेरी माँ हैं। मैं आपको ऐसे नहीं छोड़ सकती।"

फिर जैसे आत्मग्लानि का भाव क्षमा में तब्दील हो जाता, "पर बेटा, मैंने तो तुझे जैसे जन्म के बाद छोड़–सा दिया था। वह तेरी बहनें न होतीं, तो तू कब की मर गई होती!"

नीता इस भाव के साथ ही बड़ी हुई थी। अक्सर बचपन में माँ के प्रति उसका मन घृणा से भर जाता, पर आज नहीं, "नहीं माँ, वह आपकी मजबूरी थी।" नीता बोली। उसने माँ को कमजोर समझ लिया था, लेकिन सबसे बड़ा अफसोस था कि पिताजी जीवनपर्यंत माँ को चार बेटियों की पैदाइश का दोषी मानते रहे। माँ ने तो जैसे इसे जुर्म ही मानकर सारा दोष अपने सिर मढ़ लिया था और हालात से समझौता कर लिया था। न करती, तो क्या करती? कहाँ करती? कहाँ जाती? और वही हार और हताशा वह नीता के ऊपर निकालती रही थी।

माँ ने एक गहरी साँस छोड़ी और बोल उठी, "बेटी, माँ कभी कुमाता नहीं होती। मुझे इस जनम में जननी का भी दोष लगेगा। अपनी ही पुत्री संतान के साथ ऐसा सलूक कर मैं तो जन्म–जनमांतर तक पाप की भागी रहूँगी। पुत्र या पुत्री, दोनों ईश्वर की देन हैं। दोनों का जन्म विधाता ने सृष्टि की संरचना को आगे बढ़ाने के लिए किया है। फिर ईश्वर के इस खेल में भेदभाव करनेवाले हम अल्पज्ञ मूर्ख कौन होते हैं? ये तो ईश्वर की कृति का अपमान है।" वह नीता का हाथ पकड़ते हुए बोली, "बेटी, मुझे क्षमा कर दो।"

सिसकियों में उसी दिन माँ–बेटी के मन का सारा मैल धुल गया।

ऑफिस से आते ही रानी माँ की सेवा में लग जाती थी, पर रात में माँ की देखभाल नीता ही करती थी। रानी बार–बार घड़ी देख रही थी, बच्चे अकेले होंगे। वह सुबह से उन्हें छोड़े हुए थी।

रानी ने घड़ी देखी, "यह लड़की भी कभी–कभी बिल्कुल गजब करती है। अरे, सात बजे तक आ जाना चाहिए था, पर इतना लेट कर दिया? रूको, आने दो। फिर उसकी ठीक से खबर लेते हैं।"

और रानी के जाते ही नीता की आँखों में आँसू ढुलक आए। बत्तीस साल की उम्र में शायद सपने देखने का भी उसे हक नहीं था। वह धीरे–धीरे माँ का सिर सहलाने लगी।

(3)

आज सुबह से ही इस आई.सी.यू. के कमरे में भीड़–भाड़ बढ़ी हुई थी। चारों बेटियाँ यहाँ एकत्रित थीं। उनका इक्कीस साल का भाई भी वहीं पर था। पिताजी आज सबसे पहले आ गए थे। नीता की माँ की हालत कल रात से ही नाजुक बनी हुई थी। रह–रहकर साँस उखड़ जाती थी और वेंटिलेटर पर देना पड़ा था। पिताजी काफी देर तक माँ के पास बैठे रहे, पर जब तकलीफ देखी न गई तो उठकर बाहर आ गए और बरामदे में चहलकदमी करने लगे। वह बाहर वाले दरवाजे के पास देख रहे थे। आँखों के कोनों में उभर आए आँसुओं को शर्ट की बाँह से पोंछा।' मर्द भी कहीं रोते हैं' की तर्ज पर उन्होंने अपने को समझाया और खुद को सँभालने का भरसक प्रयास किया। वह अच्छी तरह जानते थे कि मृत्यु पर किसी का नियंत्रण नहीं है, पर आज खुद के लिए ये शब्द नाकाफी प्रतीत होते थे। आज उन्हें एहसास हुआ कि वह नितांत अकेले हैं। जीवन में धन–दौलत थी, बाल–बच्चे थे, पर अपना कोई न था। जो अपनी थी, वह भी आज साथ छोड़कर जा रही है।

सारी रिपोर्ट्स मुंबई के अनुसंधान सेंटर को भेजी जा चुकी थीं और वहाँ से जवाब आना बाकी था। शायद कोई नई दवा, नया इलाज अब तक ढूँढ़ा जा चुका हो।

उधर, सारे बच्चे माँ की ऐसी हालत में चिंतामग्न बैठे थे। किसी उपाय से उनकी माँ की वापसी की उम्मीद बन जाए, शायद।

डॉक्टर ने आकर रिपोर्ट्स बच्चों को पकड़ा दीं। कोई उम्मीद नहीं। सिर्फ वेंटिलेटर पर ही उनको रखा जा सकता था। जब तक उनको जीवित रखना था, तब तक सिर्फ यही मशीन एक सहारा थी।

बाहर फुसफुसाहट जारी थी। बड़ी बेटी ऊहापोह की स्थिति में बोली, "अरे, पिछले एक महीने से माँ की ऐसी स्थिति बनी हुई है। समझ में नहीं

आ रहा है कि क्या करें? बंटी की पढ़ाई तो जैसे सत्यानास हुई जा रही है। ऊपर से अब तो सास भी चिल्ल–पों मचाने लगी है। ठीक है, हममे से कोई नहीं चाहता कि माँ को कुछ हो, पर ऐसा कब तक चलेगा? ईश्वर ही मालिक है।"

दूसरी बेटी ने भी दुश्चिंता में श्वास छोड़ी, "दीदी, में तो इतना पहले से यहाँ आ गई। इनको तो अगले महीने यू.एस. जाना है। उसकी भी तैयारियाँ करनी हैं। यहाँ कब तक पड़ी रहूँगी?"

नीता माँ से ज्यादा पिताजी की हालत को लेकर चिंतित थी। रात भर वह माँ के करीब बैठकर जागते रहते थे। यह वही शख्स थे, जिनको माँ बिल्कुल सुहाती न थी। आए दिन माँ का अपमान मामूली–सी बात हो गई थी। माँ ने भी अपने को बच्चों में समेट लिया था। बेटियाँ ही उनके जीवन की धुरी हो गई थीं, पर शायद बेटियों ने पिता के स्नेह का अभाव सर्वाधिक महसूस किया था। आज वे अपने–अपने घरों के सीमित दायरों में गरमाहट का अस्तित्व खोज रही थीं। अपने जीवन को प्रेम के स्पर्श से सींच रही थीं।

सभी बहनें थोड़ी देर रुककर लौट गई, पर नीता और पिताजी रुक गए। भाई को भी अपनी नौकरी के सिलसिले में जाना था, अतः वह भी चला गया।

नीता माँ की बगल में आकर बैठ गई। पिताजी खड़े होकर खिड़की से बाहर देखने लगे। उनकी आँखें भाव–शून्य थीं। वह धीरे–से बोले, "नन्ही, देख, माँ की साँसें चल रही हैं कि नहीं?"

"जी पिताजी, माँ ठीक हो जाएगी। आप विश्वास कीजिए, माँ को कुछ नहीं होगा।"

तभी नर्स आकर एक इंजेक्शन ठोक गई। इंजेक्शन की चुभन से माँ को हल्का–सा दर्द महसूस होगा, क्योंकि उनके हाथ में मामूली सी हरकत हुई और फिर सब शांत।

"नन्हीं, माँ कितने दिन से इस मशीन के सहारे जिंदा है?"

"यही कोई चार दिन हो रहा होगा, क्यों?"

"कुछ नहीं, बस यों ही।" फिर वह मौन हो गए। थोड़ी देर कमरे में नीरवता रहीं, पर बच्चियों के शब्द उन्हें बेध रहे थे। सब अपनी–अपनी दुनिया में व्यस्त थे। किसी के पास उन लोगों के लिए समय न था।

उन्होंने मन–ही–मन में पूछा, ' क्यों स्त्री जीवन में उनके सबसे करीब होते हुए भी इतनी दूर रहीं? कहाँ कमी रह गई? क्या कमी रह गई? किसमें कमी रह गई?' वह भारी कदमों से सिर्फ बरामदे में घूमते रहे। अंदर जाने की न तो उनमें हिम्मत थी और न आशा। सहसा रानी की माँ लाल चुनरी में उनके सामने आकर खड़ी हो गई। शादी का जोड़ा था, लाल चूड़ियाँ थीं, फूलों का हार था–सब तरफ गजरे की महक थी।

'अरे तुम? तुम यहाँ ...फिर अंदर कौन?' उन्होंने भौचक होकर पूछा।

रानी की माँ ने इशारा करके उनको अपनी तरफ बुलाया। वह मदहोश से उसकी तरफ बढ़ गए। इतनी सुंदर रानी की माँ हो सकती है–यह तो कभी उन्होंने सोचा ही न था। जीवन में कहाँ गलती हो गई? खुशनुमा जिंदगी तो उनके कितने करीब थी? वह नाहक ही बाहर भागते रहे, पर अब वह दुबारा ऐसी गलती नहीं करेंगे और वह सामने से आती हुई रून–झुन की आवाज के पीछे चल दिए। वह रानी की माँ को हमेशा–हमेशा के लिए पकड़ लेंगे और तन–मन–धन से अपना बना लेंगे।

होश तो तब आया, जब डॉक्टर ने पीछे से आवाज दी, "सर, रिपोर्ट्स।"

रानी के पिताजी चौंक गए। उन्होंने उस डॉक्टर की तरफ खीझ और क्षोभ से देखा। फिर जैसे स्वप्न से जाग्रत होने का उन्हें एहसास हुआ। तब तक रानी की माँ, जो उनके इतने करीब थी, दूर जा चुकी थी। हवा में लाल दुपट्टा भी विलुप्त हो चुका था। उन्होंने आगे बढ़ना चाहा, पर पैर थम–से गए।

"क्या हुआ?" पीछे से डॉक्टर की आवाज आई।

"कुछ नहीं।" झेंपकर रानी के पिता ने कहा, " हाँ, आप कुछ रिपोर्ट्स के विषय में कह रहे थे।"

डॉक्टर ने नकारात्मक भाव से सिर हिला दिया, "कोई उपाय नहीं। सिर्फ वेंटिलेटर ही सहारा है।" फिर डॉक्टर आगे बढ़ गया।

"अच्छा, नीता!" थोड़ा ठहरकर पिताजी बोले, "क्या तुमने माँ को तैयार कर दिया?"

"अभी नहीं। बस, तुरंत कर देती हूँ।" नीता को एक आत्मग्लानि–सी अनुभव हुई। उसकी माँ जब तक ठीक थी, तब तक कोई दिन ऐसा नहीं गया, जब नीता के बाल उन्होंने न काढ़े हों। चाहे वह कितनी भी थकी रहती थी, पर नीता जिद करके माँ से ही तैयार होती थी।

"ऐसा करो, माँ को ठीक से तैयार करा दो। उनको लाल रंग बेहद प्रिय है। वही पहना दो। हाँ, चूड़ियाँ भी पहनाना और बिंदी लगाना न भूलना।" यह कहकर पिताजी बाहर जाकर स्टूल पर बैठ गए।

नीता ने नर्स की मदद से माँ को ठीक से तैयार कर दिया। माँ इस बीमारी की हालत में भी अच्छी लग रही थी। एकबारगी उसने अपने पिता की आँखों में कुछ चमक महसूस की, लेकिन क्षण भर में ही स्क्रीन सदृश सब कुछ साफ हो चुका था। बस, रह गई थी तो नमी, उसे पिता ने टिकने नहीं दिया। वह पहले के समान यथावत् अपने नियंत्रण में थे। अपनी भावनाओं की लगाम न वह पहले छोड़ते थे और न अब। उन्होंने तुरंत अपने को संयमित कर लिया। नीता ने सोचा कि उसके पिता कितने सख्त दिल इंसान हैं, भावनाओं रहित। जैसे भी हैं, हैं तो मेरे पिता ही।

"बेटा, डॉक्टर को बुला लाओ। उनसे कुछ बात करनी है।"

पिताजी ने धीरे–से सिर उठाया। शायद उनकी आँखें बहुत कुछ कहना चाहती थीं, पर वह इतना ही बोले, "हाँ, आइए डॉक्टर साहब! इनको जिंदा रखने के लिए मशीन पर कितना खर्च आएगा?"

"यही कोई सात हजार रुपए रोज।"

"और हम कब तक इन्हें जीवित रख सकते हैं?"

डॉक्टर थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला, "वैसे तो जब तक आप चाहें, पर थोड़े ही दिन रखा जा सकता है।"

"उसके बाद कोई उम्मीद?"

"डॉक्टरी शब्दों में कुछ नहीं। ये सिर्फ लाश हैं। अगर आप इनके ऊपर पैसे लगा सकते हैं, तो क्या हर्ज है? शायद ईश्वर कारसाज हो उठे।"

पिताजी काफी देर तक सोचते रहे। फिर बोले, "कृत्रिम साँसों का इतना मूल्य नहीं है कि वह जीवन पर हावी हो जाए।" उन्होंने स्टूल को दोनों हाथों से पकड़ लिया। फिर गहरी आवाज में बोले, "ऑक्सीजन की मशीन हटा लो।"

नीता को लगा, जैसे उसके पिताजी की आवाज किसी गहरे कुएँ में से आ रही हो। जीवन भर का साथ लम्हों में सिर्फ एक साँस की दूरी पर हो गया। नीता दौड़कर माँ से लिपट गई और फफक–फफककर रो पड़ी। पीछे से पिताजी की आवाज आई, "अब कोई फायदा नहीं रोने से। सबको खबर कर दो कि माँ मर गई।"

डॉक्टर ने थोड़ी देर पिताजी की तरफर देखा। शायद वह अपना निर्णय बदलना चाहें। पर नहीं, हमेशा की तरफ पिताजी अडिग रहे।

माँ की गर्दन एक तरफ लुढ़क गई।

■

अंतिम इच्छा

अखबार के पन्ने उलटने हुए उसका मन कसमसा गया। सब तरफ हत्या, लूट और मारपीट की खबरों ने जैसे अखबार के पन्नों को एकाएक लहू के रंग से रँग दिया था। खून की कीमत शायद कुछ रह ही नहीं गई थी। शायद मौत से सस्ता था–जीवन। पृष्ठ के दाईं ओर दारा सिंह का फोटो छपा था। वह फिल्मों में आनेवाले पहलवान दारा सिंह नहीं, अपितु उड़ीसा का निर्मम कातिल दारा सिंह था, जिसने अपनी उन्माद में एक फिरंगी का जीवन छीन लिया था। वह शायद एक हत्या कर अपनी आग को ठंडी नहीं कर पाया और उसने गाड़ी में बैठे हुए दो मासूमों को भी खत्म कर दिया। उसने एक पल भी नहीं सोचा कि वह कैसे इतनी जिंदगियों को खत्म कर रहा है? कितना बेखौफ और कितना निर्दयी? मासूमों की आँखों में शायद वह मृत्यु का भय भी पढ़ नहीं पाया था। क्या मनुष्य ऐसा ही होता है? अपने उद्देश्यों की पूर्ति में वह इतना संलग्न हो जाता है कि दूसरे की भावनाओं के प्रति उदासीनता अख्तियार कर लेता है।

यह सब सोचते–सोचते मिसेज चौहान उर्फ पम्मी को ज्ञान ही नहीं हो पाया कि उसका नाम क्लीनिक में पुकारा जा रहा है।

नर्स एक–दो बार पम्मी का नाम पुकार चुकी थी, क्योंकि इस बार उसकी आवाज थोड़ी खिजलाई हुई थी, "मिसेज चौहान?"

वह हड़बड़ाकर उठी, "जी, मैं यहाँ हूँ। बस, आ रही हूँ। "वह पर्स उठाते हुए डॉक्टर के रूम मे प्रवेश कर गई और यंत्रवत् कब उनके सामने थी–इसका उसे ज्ञान ही न रहा। डॉ. कपूर उसकी रिपोर्ट्स का गंभीरतापूर्वक मुद्रा में अवलोकन कर रहे थे। वह चाहते हुए भी नहीं समझ पा रहे थे कि बात कहाँ से शुरू की जाए? फिर ऐसा नहीं कि मरीज अनपढ़ गँवार था। 'पेट में गोला है, जिसका इलाज जरूरी है, "कहकर बात समाप्त कर देने से कोई फर्क न पड़ेगा। यहाँ तो एक पढ़ी–लिखी, सौंदर्य से परिपूर्ण अधेड़ उम्र की महिला बैठी थी, जो अपना मर्ज कुछ–कुछ जानती थी।

उसको आप इधर–उधर घुमा भी नहीं सकते। डॉ. कपूर ने एक नजर उस मरीज पर डाली और दूसरी रिपोर्ट पर । फिर अपने आपको सहज करने के लिए कमरे के चारें तरफ दृष्टिपात किया। दीवारें पर मेडिकल साइंस की उपलब्धियों की एक–से–एक बेमिसाल तसवीरें लगी थीं। जीवनदायिनी दवाओं के नाम बड़े–बड़े अक्षरों में पटिट्यों पर अंकित थे, पर मौत– वह तो एक अबूझ पहेली बनकर हमेशा मौन चुनौती दे जाती थी। फिर जब जीवन है, तो मृत्यु दूर कहाँ? डॉक्टर का जीवन इसी में बीतता है। कभी–कभी मृत्यु की घोषणा कठिन नहीं प्रतीत होती, पर कुछ एक में तो मानो वज्रपात हो पाता है। वह शांत और संयत होकर अपने मरीज का अवलोकन करने लगे। मिसेज चौहान के सुंदर चेहरे पर कहीं–कहीं जीवन की दुश्चिंताएँ लकीरें बनकर उभरने लगी थीं। उसी ने मौन तोड़ा, "डॉ. साहब, मुझे क्या हुआ है?"

यह प्रश्न गोली–सा डॉक्टर के सीने में जा लगा, जैसे प्रश्न का उत्तर सही या गलत में उनको प्रश्न–पत्र में करना था। तपाक से उनके मुँह से निकला, "कैंसर।" फिर जैसे अपने ही शब्द उनके कानों को सँभालने हुए डॉ. साहब बोले।

पम्मी की आँखें बीमारी का नाम सुनकर भर आई थीं, पर जैसे उसे अपनी बीमारी का पूर्वानुमान हो गया था। काफी देर मौन रहने के बाद उसने अपने को समेटना शुरू किया। ये उसको क्या हो रहा है? सारी भावनाएँ जैसे एक–एक कर शून्य हो चली हैं। वह एक अँधेरे पाताल में गिरती जा रही थी। पर नहीं, उसको अंधकार से बाहर आना होगा। उसे पता ही नहीं चला कि कब डॉ. ने उठकर उसके कंधे पर अपना हाथ रख दिया, "मेरा मकसद आपको दुःखी करना नहीं था। पर आपसे बीमारी छुपाकर हम कोई सफलता नहीं हासिल कर पाते, क्योंकि आपका इलाज लंबा चलेगा। आपको कीमोथेरैपी की आवश्यकता है। चूँकि आपको खुद आना पड़ेगा, तो बेहतर है कि आप शीघ्र शुरू करें। प्रक्रिया लंबी है।" यह कहकर डॉ. साहब चुप हो गए। उन्होंने आगे यह नहीं कहा कि यह बीमारी तकलीफदेह भी है और अंत निश्चित है। जीवन के बस कुछ महीने या एकाध साल ही शेष है।

पम्मी बहुत कुछ पूछना चाहती थी और बहुत कुछ जानना चाहती थी, पर सामने बैठा डॉक्टर नहीं था। वह तो जज था और पम्मी दारा सिंह। जज

उसकी फाइलों का अवलोकन कर रहा था। उसके जुर्मों का लेखा–जोखा पढ़ रहा था। सजा मुकर्रर करने में उसे अभी वक्त लग रहा था।

"डॉक्टर साहब, मैंने क्या अपराध किया है, जो ईश्वर ने मुझे ऐसी सजा सुनाई? मैंने तो सपने में भी किसी का दिल नहीं दुःखाया। कभी किसी का बुरा नहीं सोचा और विधाता आज इतना निर्दयी होकर आँखों में पट्टी बाँध निर्णय ले रहा है। "वह चीखना चाहती थी कि मुझे इंसाफ चाहिए– इंसाफ! मैं जीना चाहती हूँ। लेकिन उसकी आवाज गले में घुटकर रह गई।

डॉक्टर ने हौसला बढ़ाते हुए कहा, "घबराइए नहीं, मेडिकल सांइस काफी प्रगति कर गया है। सब ठीक हो जाएगा।

"सब ठीक हो जाएगा? "उसने डॉक्टर की आँखों में घूरकर देखा। डॉक्टर साहब सकपका गए।

मरीज किस मानसिक अवसाद से गुजर रहा है, इस स्थिति का उसको ज्ञान था। उन्होंने दराज खोलकर दो टैबलेट निकाल पम्मी के हाथ पर रख दिए और घंटी बजाकर नर्स को बुलाकर पानी लाने का इशारा किया।

पम्मी को संयत होने में थोड़ा वक्त लगा, पर इस कमरे में आने के पहले और कमरे से निकलने के बीच की दूरी अनंत हेा गई। जैसे वह एक संपूर्ण जीवन का फासला तय करके आई है, पर इतने लंबे फासले में वह सर्वथा अकेली थी। उसने गाड़ी में आँखें बंद कर लीं, शायद मौत का भय विलुप्त हो जाए। पर एक झीने आवरण से जैसे उसने तन तो तन, मन को भी ढक लिया था। सहसा उसे हल्की सर्दी सी कँपकँपी लगी और उसने साड़ी का पल्लू कसके अपने तन पर खींच लिया।

जीवन का इतना लंबा सफर उसने निखिल के साथ कैसे पूरा कर लिया–इसका उसको कभी ज्ञान हीं न हुआ। अगले महीने शादी की पच्चीसवीं सालगिरह है। पच्चीस साल का एक लंबा सफर और कहाँ एक दिन काटना मुश्किल हो रहा था। इतने लंबे सफर में उसने कितनी ही बार निखिल को समझना चाहा। हर बार उसको ऐसा लगा कि वह मंजिल के कितने करीब है और हर बार जैसे पकड़ कुछ ढीली हो जाती तथा मंजिल दूर। ऐसा नहीं था कि निखिल उसको चाहता नहीं था। चाहता ही होगा, पर एक आम भारतीय पुरुष की तरह उसका अहं इस बात को कहने से रोक देता कि वह अपनी स्त्री का गुलाम है। पम्मी के सारे गुण उसके स्त्री होने के दोष के नीचे दब गए थे। बच्चे होने के बाद तो जैसे उसका जीवन

सिमटकर घर की चारदिवारी में उलझ गया था। अपनी आकांक्षाओं और जीवन की ललक को उसने अपने बच्चों के भविष्य में सँजो दिया था। ऐसा नहीं था कि उसको अपने पति से प्यार नहीं था, पर एक अनजानी चुप्पी और असुरक्षा की भावना ने उसको चारों ओर से घेर लिया था। उसका आतुर मन पति के प्रेम के लिए तरसता और पति का व्यक्तित्व एक ढाल बनकर खड़ा हो जाता, जिसको वह चाहकर भी न तोड़ पाती।

जीवन भर पम्मी नितांत अकेली रहीं और आज मौत के समय भी वह नितांत अकेली है। एकाएक वह घबरा उठी। जाड़े की गुनगुनी ठंड के बावजूद उसके माथो पर हल्की पसीने की बूँदें छलक आईं और आँखों के कोनों में हल्की नमी।

घर पहुँचने पर खाली इमारतों ने मौत की खबर का स्वागत किया। वह सिहर उठी। यह अब तक उसका घर था, पर कब तक? पम्मी ने एक–एक करके घर की सजी–सजाई चीज पर सरसरी–सी निगाह डाली। कहाँ–कहाँ से जतन करके उसने अपने घर को सजाया था और आज जैसे सब निष्ठुर एवं प्राण–विहीन हो उठे थे। कल तक वह जैसे एक–एक चीज से बोलती प्रतीत होती थी और आज सब किसी अन्य लोक के प्रतीत हो रहे थे। नहीं, सब वस्तुएँ इसी लोक की हैं। सिर्फ वह इस लोक में मेहमान बन गई है। सहसा उसके आँसू कपोलों को छूने लगे। यह उसके क्या हो गया है? वह शायद पागल हो रहीं है। उसने अपने कमरे का दरवाजा अभी खोला ही था कि फोन की घंटी बज उठी। फोन उसके पति का था। काफी देर तक तो वह कुछ बोल ही न पाई सिर्फ 'हैलो' कहकर चुप हो गई।

"पम्मी, क्या हुआ? कुछ तो बोलो।"

वह न चाहते हुए भी बोल उठी, "कैंसर।" और रिसीवर रख दिया। उसकी आवाज कीं गहरे कुएँ से निकलती प्रतीत हुई थी। यह उसकी आवाज न थी, यह किसी और के ऊपर बीत रही थी। यह किसी दूसरे की आवाज थी। वह बेजान–सी होकर पलंग पर लुढ़क गई और रोती रही। उधर फोन की घंटी काफी देर तक 'ट्रिन–ट्रिन' बजती रही और वह उन सबसे बेखबर बेसुध पड़ी रही।

उसका पति भी उसके दुःख से अनजान अपनी अंजान मंजिल पाने में लगा था। उसके जीवन की जो मंजिल होनी चाहिए थी, वह उससे दूर होती जा रही थी।

पम्मी डर और असुरक्षा के कारण सिमटकर सिसक उठी।

शनैः–शनैः पूरा घर बीमारी के आवरण में जीने लगा।

अनजाने ही दारा सिंह के प्रति एक रूझान हो गया। इधर उसकी दवा शुरू हुई और उधर दारा सिंह पर केस की कार्रवाई।

(2)

पम्मी के इस थके जीवन में पन्द्रह वर्ष पूर्व ताजगी की एक बहार आई थी। आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व उत्कल ने उसके जीवन में प्रवेश किया था–एक बेहद वाचाल खुशमिजाज इनसान, जिसने पम्मी के जीवन और सोच को बदलकर रख दिया। जैसे उत्कल नाम, वैसे ही संस्कृति से ओत–प्रोत। धीरे–धीरे चाहे–अनचाहे पम्मी उसके रंग में रँग गई थी। यह कब हुआ और कैसे हुआ–इसका उसे कभी ज्ञान न हो पाया, पर उसके अस्तित्व की गरिमा का भान वह जरूर करा गया। उसके हल्के–से स्पर्श से पम्मी बदलने लगी। और यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी कि वह निखरने लगी। उसके अंदर से गुण, जो लुप्तप्राय जीव से विलोपित हो गए थे, उन्हें पुनर्जीवन मिला। उसकी सोच को एक दिशा मिली और जीवन को उद्देश्य। शायद यह प्रेम का स्पर्श है, जो बहते हुए उच्छृंखल पानी के वेग को बाँध पाने की क्षमता रखता है। हर चुनौती से पहले पम्मी पूछती, 'क्या मैं इसको कर पाऊँगी?'

वह उत्तर देता, 'या तो चुनौती स्वीकार करो या फिर जीवन भर बैठकर रोओ।

और नए जीवन के सपनों में वह सृजनात्मक होती चली गई। उसको पेंटिंग का कभी शौक रहा था। एक दिन उत्कल की निगाह दीवार पर बने उसके स्कूली जीवन के चित्र की तरफ चली गई, "पम्मी, ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी कलाकार ने साक्षात् इसमें रंग भर दिए हैं।

"पर मैं तो ठहरी छोटी–मोटी कलाकार! मुझमें मिस्टर घोष जैसा हुनर कहाँ? "वह घबराकर बोलती। इतने साल पति के साथ रहते–रहते उसमें हीन भावना ने अच्छी तरह घर कर लिया था।

पम्मी ने जीवन में दुबारा कलर और ब्रश उठाया, तो पति ने हँसकर कहा था, "बुढ़ापे में ये क्या ऊटपटाँग शौक पाल रखा है? अरे, अब कहीं उम्र रह गई है पेंटिंग–वेंटिंग करने की? घर बैठो और बच्चे देखो। अब बेटी इतनी बड़ी हो गई है कि उसको कुछ सिखाओ–विखाओ। कहाँ ये चक्कर ले बैठी? "और पम्मी अपने पक रहे बालों को ही शीशे में निहारने लगती।

वह वाकई मन–ही मन सोचती, 'अब मैं कुछ करके भी क्या हासिल कर पाऊँगी? उम्र हो चली है। बेहतर इसी में है कि स्मिता को कुछ बता दूँ।'

पर उत्कल का प्रोत्साहन उसमें जीवन का संचार कर देता, "पम्मी, चौंतीस साल का मैं हूँ और चौंतीस की तुम। अरे, क्या हुआ जो जल्दी शादी हो गई? इससे घाटा ही क्या है? कुछ नहीं तो, फिर से ट्राई करने में हर्ज ही क्या है?"

और वाकई पेंटिंग बनाने से उसका कोई नुकसान तो होनेवाला नहीं। अलबत्ता, वक्त ही कट जाएगा। इधर वह देख रही थी कि बच्चों के पास भी उसके लिए वक्त नहीं था और वह नितांत अकेली पड़ती जा रही थी। फिर इससे उसका मन लगा रहेगा। यह सोचते ही पहली पेंटिंग का श्री गणेश हो गया।

जैसे–जैसे उसकी पेंटिंग में रंग भरने लगे, वैसे–वैसे उसके जीवन के उदासीन रंग भी लालिमा लेने लगे। तैलीय रंगों में भी जीवन के सच उभरकर आने लगे। हर चित्र की पूर्णता उसके अंदर एक स्फूर्ति के संचार के साथ–साथ ज्योतिर्मय मार्ग प्रशस्त करने लगे।

पम्मी अपनी पहली चित्र प्रदर्शनी के लिए चित्र बनाने में मशगूल हो गई। इधर उसके सर्वांगीण विकास के साथ–साथ अपूर्ण व्यक्तित्व को पूर्णता मिल गई। पर जब कभी वह उत्कल के करीब आने की कोशिश करती, वह प्यार से झिड़क देता, "पम्मी, हमारे जीवन से इतनी जिंदगियाँ जुड़ी हैं कि हम कुछ भी गलत नहीं कर सकते। मैं तुम्हें बेहद चाहता हूँ, पर चाहत और समर्पण के बीच एक झीना परदा रहने दो। इस जीवन में मैं इतना जरूर चाहता हूँ कि अगले जीवन में सिर्फ तुम और मैं रहेंगे–यह मेरा वादा है।"

और पम्मी रो पड़ती, "मेरी मृत्यु पर तो आओगे। मेरी चिता को आग अवश्य देना।"

उत्कल चिढ़ाते हुए बोलता, "अरे, मरने के पहले कम–से–कम तुम या कोई दूसरा खबर तो करेगा कि मेरी पम्मी मरने वाली है। मैं दौड़ा–दौड़ा चला आऊँगा। पर कहाँ मैं जीने की बात कर रहा हूँ और तुम मरने पर आ गई। बस, तुममें यही बुराई है। दिन मे एक बार अवश्य मरने–मारने की बात

करती हो। जीवन मिला है जीने के लिए–मरनेवाले तो कायर होते हैं। मेरी पम्मी तो बहादुर है। वह अवश्य जीवन जी के दिखाएगी।"

पहली चित्र प्रदर्शनी में उत्कल नहीं आ पाया था। उस समय तक उसका तबादला हो गया था। वह दूसरे शहर चला गया, पर जाने से पहले बोल गया, "मैं तुम्हारा इंतजार करूँगा। माफ करना, मैं तुम्हारी सारी ख्वाहिशें कभी पूरी नहीं कर पाया। यह दो परिवारों की प्रतिष्ठा थी, पर मेरी चाहत में कमी नहीं रही। हम लोगों ने मर्यादित ढ़ंग से अपने प्रेम का निर्वाह किया। कभी सीमा नहीं लाँघी, पर मेरी आँखों में देखो, पम्मी! सागर की–सी गहराई है इसमें, और वह अथाह सागर सिर्फ तुम्हारे प्रति अनुराग है।"

पम्मी उसके चरित्र की महानता के प्रति नतमस्तक हो गई थी। उसको नहीं पता कि पवित्र प्रेम इसी को कहते हैं, जिसमें डूबकर कोई व्यक्ति उपने जीवन में इतनी श्रेष्ठता हासिल कर सकता है।

उसकी प्रदर्शनी को काफी सराहा गया। शहर के अनेकानेक गण्यमान्य व्यक्ति उसमें उपस्थित थे और उसका पति हर एक से सगर्व कह रहा था, "सर, ये वाली देखिए।" हर तरफ उसकी पत्नी की श्रेष्ठता की तारीफ थी।

श्रेष्ठ पत्नी की श्रेष्ठता का श्रेय निखिल लेकर चारों तरफ घूम रहा था और पम्मी एक कोने में बैठी अपनी सफलता में निखिल का योगदान ढूँढ़ रही थी। एक गहरी साँस छोड़कर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। सामने उत्कल खड़ा था, हाथ फैलाए। जीवन भर की असफलताओं पर सीधा प्रहार। पम्मी के डॉ. परमिंदर चौहान बन जाने के मूलमंत्र। पम्मी के शून्य अस्तित्व से संपूर्ण अस्तित्व की गाथा और पम्मी रो पड़ी। अश्रुओं की धारा एक–एक बूँद समर्पित चरण स्पर्श बनकर उत्कल के पैरों पर गिरने लगी।

"उत्कल, आज तो तुम्हें मेरे पास रहना चाहिए था।" उत्कल का हाथ उसके हाथ में आ गया। एक चुनौतीपूर्ण जीवन में अदम्य मजबूत सहारा।

"हाँ, उत्कल। तुम्हारे सहारे मैं एक व्यक्तित्व हूँ–सिर्फ तुम्हारे सहारे।"

"पम्मी कहाँ हो? "एक कर्कश आवाज ने उसकी तंद्रा भंग कर दी। उसका पति उसको खोज रहा था। कोई मिस्टर खन्ना उसको ढूँढ़ रहे थे। मिस्टर खन्ना–दिल्ली की आर्ट गैलरी के मैनेजर उसकी पेंटिंग से काफी प्रभावित थे। वे उसकी एक प्रदर्शनी दिल्ली में चाहते थे और निखिल गर्व

मिश्रित प्रशंसा से उसको मिलवा रहा था, "जी, मेरी पत्नी डॉ. परमिंदर चौहान।"

(3)

दारा सिंह पर केस लंबा चलना था, चला भी। हाईकोर्ट ने उसे फाँसी की सजा सुना दी, "हैंग टिल डेथ।"

उस दिन दौड़कर टुडू ने बताया था, "मालिक, एक अंग्रेज फिरंगी अपने परिवार सहित गाँव में आया है। ईसाइयत का संदेश फैला रहा है। बाहर की हवा लाकर यहाँ की संस्कृति का विनाश करता है। पहले भी अंग्रेज आए और हमें बरबाद कर गए। ये भी। उसकी आँखों में खून उतर आया। पिछली बार जो अंग्रेज आया था, उसके घर टुडू की बहन झरिया काम पर जाती थी। झरिया को जाते–जाते पेट में बच्चा दे गया। आज भी उस नाजायज संतान को देखकर टुडू की आँखों में खून उतर आता है।

यह बात दारा सेठ को पता थी। यह भी मालूम था कि टुडू अंग्रेजों से घृणा करता है। पता था कि टुडू के पूर्वजों ने सदियों से उसके परिवार की सेवा की है। तब से की है, जब से दारा सिंह के पूर्वज गया जिले से आकर यहाँ बस गए। दारा सिंह के पूर्वज यहाँ लोहा ढूँढ़ने आए थे और लोहे की जंजीर में बँधकर यहीं के होकर रह गए। टुडू के पूर्वजों ने रक्त की शुद्धता को बनाए रखा था।

"देखे लेंगे, टुडू। काहे चिंता करते हो? अरे, जब पहले किसी को टिकने नहीं दिया, तो यह फिलिप्प क्या चीज है? जाएगा नहीं तो अपनी मौत मारा जाएगा।"

लेकिन फिलिप्प जाने के लिए नहीं आया था और न ही ईसाई धर्म फैलाने आया था। वह तो समाजसेवी था। गरीबों से प्रभावित होकर इस गाँव में अपनी निष्ठापूर्ण सेवा प्रदान करने आया था। पेशे से डॉक्टर फिलिप्प इस गाँव से झाड़–फूँक और ओझा को भगाने आया था। गरीब खुश थे, पर ओझा नाखुश।

"देखना, देवता का कहर बरसेगा फिलिप्प पर–देवा का प्रकोप। अभी नादान ठहरा। भाग जा, गाँव को छोड़ दे। नहीं तो तेरी बलि हम देवता को चढ़ाएँगे।" रात में डुगडुगी बजाकर हीरा माँझी गाँव की चौपाल पर चिल्ला–चिल्लाकर ऐलान करता और गाँववाले डरकर दरवाजे बंद कर लेते। हीरा माँझी पाँच फीट का भुजंग काला व्यक्ति था। वह जितना कुरूप

तन से था, उससे अधिक मन से। श्मशान में बैठ, देवी–देवता सिद्ध कर लिये थे उसने। उनका भय दिखाकर वह गाँववालों को डराता और मुफ्त में पैसे ऐंठता। दारा सिंह के अलावा अगर आदिवासी किसी से डरते थे, तो वह था–हीरा माँझी।

लेकिन फिलिप्प जात–पात से ऊपर विचारों और कर्म की श्रेष्ठता की बदौलत गाँव में अपनी एक पैठ बनाए हुए था। धीरे–धीरे उसके स्वतंत्रता के सिद्धांत गाँववाले आत्मसात् करने लगे थे। स्वतंत्रता किसे प्रिय नहीं होती ?

स्वतंत्रता हेंब्रम मुर्मु को भी प्रिय थी। प्रिय क्यों न होती–पुश्तों से उसका परिवार दारा सिंह के यहाँ काम कर रहा था। खेत जोतता, खलिहान देखता और बदले में मिलते थोड़े से चावल। आज सुबह से ही उसका दिमाग खराब था। रह–रहकर वह मँगरा पर झुँझला रहा था, ''तुमसे कोई काम ठीक तरह नहीं होता।

जब देखो, तब गड़बड़। वहीं अपने बाप के यहाँ रह जाओ। वहीं तुम्हारे नखरे चलेंगे।''

मँगरा मुँह बंद करके काम करती रही। वैसे भी इतने साल से हेंब्रम के साथ रहते–रहते उसके दिल–दिमाग ने सोचना बंद कर दिया था। हेंब्रम उधर दारा सिंह के यहाँ जुटा रहता और इधर यह उसके घर में। वह जान रही थी कि हेंब्रम क्यों नाराज था? कल उससे गलती से बैल खड्ड में गिर गया। जब काफी देर बाद भी नहीं निकला, तो जाने कैसे दारा सिंह को इसकी खबर हो गई। खेत पर आकर उसने हेंब्रम की पिटाई लगा दी, 'सड़ाक–सड़ाक।' हेंब्रम दर्द से छटपटा उठा।

मँगरा प्यार से आकर उसके पास बैठ गई और नंगे बदन पर उभर आए चोटों के निशान पर हल्दी का लेप लगाने लगी। हेंब्रम पहले तो अचकचाया, फिर शीतलता का अनुभव आत्मसात् करने लगा।

''बहुत मारा तेरे को ?'' मँगरा बोली।

हेंब्रम ने सिर झुकाकर मौन स्वीकृति दे दी, लेकिन पत्नी के आगे इस तरह हीन ठहरना उसे अच्छा नहीं लगा। वह जमीन पर थूकते हुए बोला, ''साले ने मारा ही नहीं, उस बैल की तरह जुतवाकर पूरे खेत में घुमाया भी है। मैं उसका खून पी जाऊँगा।''

मँगरा सिहर उठी। उसने अपने आसपास के लोगों को खेत से बाहर निकल जंगल में जाते देखा था। जंगल में देवता के सामने जाकर सब कसम खाते हैं कि आनेवाले वक्त में वे अन्याय नहीं सहेंगे तथा हथियारबंद क्रांति से वह व्यवस्था बदलेंगे।

'ठाँय...ठाँय।' बंदूक की आवाज से वह सिहर उठी। अभी कुछ ही दिन पहले संगठन के एरिया कमांडर जितेंदर महतो की पुलिस मुठभेड़ में मृत्यु हुई थी। वह हेंब्रम को खोना नहीं चाहती थी। वह धीरे–से उठी और आड़ में रखी हुई हँड़िया लाकर हेंब्रम को पकड़ा दी। पहला घूँट पीते ही वह जैसे मस्त हो गया।

मँगरा घर को लीप–पोतकर हाट–बाजार के लिए निकल पड़ी। ढेरों काम पड़ा था। बकरी को भी आज हाट में बेचना था। उसके कदम तेजी से बाजार की तरफ उठ गए। हेंब्रम खाट पर पड़ा हँड़िया पीता रहा और चिलम कसता रहा।

उस अंग्रेज की जड़ें समाज में गहरी होती जा रही थीं और जितनी उसकी जड़ें हो रही थीं, उतना ही दारा सिंह को उसके प्रति घृणा।

''मार दो साले को। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।''

फिर उस काली स्याह रात में पेड़ के नीचे टुडू और हीरा माँझी के साथ बैठकर एक भयानक षड्यंत्र को अंजाम देने की योजना बन गई।

''कोई खतरा....?'' टुडू थोड़ा सहमते हुए बोला।

''खतरा और वो भी दारा सिंह को ? हा...हा...हा। अरे, मार के फेंक देंगे साले को खेतों के बीच। रात में मारेंगे तो सियार और गीदड़ ही लाश का काम तमाम कर देंगे। मेरे होते डर काहे का ? मैं दारा सिंह..।'' अभिमान भरी हँसी ने माहौल में विद्रूपता भर दी थी।

हेंब्रम दारा सिंह का पैर दबा रहा था। तभी उसकी आँखों में खून उतर आया। उधर पहाड़ों के महिमामय खंडों के बीच एक वेगमान नदी, जिसे आदिवासी भाषा में 'चंडी' बोलते हैं, कलकलाती हुई बह रही थी। प्रवाह तेज था। वह उफनती हुई समस्त बाँध जैसे तोड़ देना चाहती थी। स्वच्छंदता और स्वतंत्रता उसको प्रिय थी। वह यौवन की आँधी में परिपूर्ण थी। दुर्गम रास्ते तय करना उसकी फितरत थी।

हेंब्रम अँधेरे में ही नदी की तह पकड़े भागा जा रहा था। वक्त रहते ही वह फिलिप्प को सूचित कर देना चाहता था कि गाँव छोड़ दो। यह जगह

तुम्हारे विचारों को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त नहीं है। चले जाओ वापस अपनी धरती पर, अपने लोगों के बीच। इस गाँव में देवी का प्रकोप है। सुनते हैं कि बहुत पहले देवी को ठीक से बलि नहीं चढ़ी थी। तब से देवी कुपित हो एक–एक कर गाँव वालों को लील रही है। ऐसा ही बोला था न हीरा माँझी ने–ऐसा ही बोला था। जब जंगल में दावानल की तरह आग लगी थी, तो वह जंगल, पर्वत, नदी–सब लील जाना चाहती थी। ऐसा ही कहा था हीरा माँझी ने।

वह भागना चाह रहा था, पर भाग न पाया। पत्थर पर गिर पड़ा और लुढ़क गया। चोट सिर पर आई थी। वह काफी वक्त तक मूच्छित पड़ा रहा।

नदी कलकल कर बहती रही। बहना ही उसका काम था। धीरे–धीरे चाँदनी नई हवा के झोंकों के साथ अपने गंतव्य की ओर प्रस्थान कर रही थी। भोर फट चुकी थी। हेंब्रम को भी रह–रहकर होश आ रहा था। काफी देर बाद वह साहस जुटा पाया खड़े होने के लिए। वह अपने पैरों पर जैसे ही खड़ा हो पाया, वैसे ही सहसा उसको फिलिप्प का खयाल आया। वह भागा–फिलिप्प को सचेत करने के लिए।

उधर फिलिप्प जिंदा जलकर खाक बन चुका था। रातोरात दारा सिंह ने अपने काम को मुकाम दे दिया था।

''नहीं!'' हेम्ब्रम जोरों से चीखा और थाने की ओर लपका। बदहवासी में वह चीख रहा था, ''थानेदार साहब, दारा सिंह ने ही मारा है। उस अंग्रेज फिरंगी को दारा सिंह ने मारा है।'' हेंब्रम को अपनी आवाज बेमानी प्रतीत हो रही थी। आज तक कभी भी वह इतनी जोर से नहीं चीखा था। उसकी तो आवाज ही नहीं निकलती थी। कहीं बँधुआ मजदूरों की आवाज होती है?

बस, दारा सिंह से यही गलती हो गई। फिलिप्प कोई गाँव का साधारण व्यक्ति नहीं था। वह अंग्रेज फिरंगी था। पूरा देश उसके साथ था और दारा सिंह जीवन में पहली बार अकेला पड़ा था– नितांत अकेला। पहली बार उसको मौत से डर लगा था। मौत उसको भी आ सकती थी और आ ही गई।

''ऑर्डर–ऑर्डर! फिलिप्प और उसके दो पुत्रों की हत्या के जुर्म में–ही शुड बी हैंग टू डेथ।''

शाम को हेंब्रम तेज जलती अग्नि के ऊपर साबुत मुरगी पका रहा था। पुरजोर दावत का इंतजाम था। आदिवासी समुदाय ढोल के बोल पर थाप देते हुए नृत्य कर रहा था। दारा सिंह की सजा एक जश्न था और उत्सव मनाया जा रहा था।

(4)

पम्मी का इलाज बेहद तकलीफदेह था। हर बार इलाज के दौरान वह तिल–तिल कर मरती थी। फिर हिम्मत करके अपनी अतींद्रिय शक्तियों को इकट्ठा करके नए जीवन में जुट जाती। मरनेवाले के मन में अक्सर जीवन जीने और साहस से लड़ने की भावना खत्म हो जाती है। उसने जैसे अपने भाग्य से समझौता कर लिया था। वह इस बात से नहीं मुक्त हो पा रही थी कि मरने से पहले वह एक बार भी उत्कल से नहीं मिल पाएगी। उत्कल ने वादा किया था कि वह आएगा। इस लोक के सभी दैहिक बंधनों से वह उसी के हाथों मुक्त होना चाहती थी। एक दिन मर्माहत पीड़ा से वह रो उठी, '' उत्कल, इस शरीर से तो निखिल मुक्त कर देगा, पर मन के बंधन से मुझे मुक्त करो, उत्कल! मुझे मुक्त करो। अब मैं अधिक कष्ट नहीं सहन कर सकती।''

एक दिन उसने निखिल से स्वीकृति चाही, ''निखिल! अब मैं बचूँगी नहीं।''

निखिल तड़प उठा, ''ऐसा क्यों कहती हो ? मैं तुम्हे मरने नहीं दूँगा।''

पम्मी ने गहन पीड़ा से उसकी आँखों में आँख डालकर देखा, 'तुमने मुझे जीने ही कहाँ दिया, निखिल ? मैं एक स्त्री थी। तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी गुलाम। तुमने मुझे जीते–जी मार दिया। मैं तुम्हारी कैदी थी, कैदी हूँ। कम–से–कम मेरी आखिरी ख्वाहिश तो पूरी हो जाने दो।' चाहकर भी वह ये शब्द मुँह से न निकाल पाई। वे शब्द सिर्फ गले में ही प्रतिध्वनित होकर आत्मा के द्वारा पर वापस लौट गए। उनको बाहर आने का हक न था।

''निखिल, मेरी एक बात मान लो।''

''बोलो।''

''पहले वादा करो कि तुम पूरा करोगे।''

''नहीं, मैं ऐसे वादे नहीं करता। कहीं पति–पत्नी के रिश्ते में भी कसमें–वादे होते हैं? अरे, जिन रिश्तों की कोई बुनियाद न हो, क्या उसको वादे जोड़ पाते हैं ? फिर भी बोलो।''

पम्मी बहुत देर तक निखिल का अवलोकन करती रही। फिर बोली, ''नहीं, आज नहीं, फिर कभी।'' वह बात पूरी करने का साहस न जुटा पाई।

और एक दिन पम्मी ने बोल ही दिया, ''निखिल, मुझे एक बार उत्कल से मिलकर आने दो।''

निखिल की समझ में सारे बंधन टूटते नजर आए।

''पम्मी, सारा जीवन तुमने निरर्थक बिता दिया।'' उसका शरीर काँपने लगा।

''पम्मी बेवफा नहीं।''

वह चीख उठा, ''तुम ऐसा नहीं कर सकती, पम्मी! तुम मुझे धोखा नहीं दे सकती।''

पम्मी शांत रही। इसी ज्वार–भाटे की उसे उम्मीद थी।

''निखिल, मैंने तुम्हें कोई धोखा नहीं दिया। मेरे और उत्कल के बीच पवित्र रिश्ता है। वह मेरा.... सबसे अच्छा दोस्त है। एक ऐसा इनसान, जिसकी मैं सच्ची श्रद्धा से पूजा करती हूँ। आज मेरे जीवन के समस्त मुकाम उसकी भेंट हैं। वह एक ऐसा इनसान है, जो मेरे जीवन की दिशा बदलकर खुद किसी दुनिया में खो गया।''

निखिल काँप रहा था। उसका पुरुषत्व इसे चुनौती समझ प्रतिकार करना चाहता था। एक हिंदुस्तानी पति की स्त्री जीवनपर्यंत उसकी कैदी होती है। उसकी स्वतंत्रता का अर्थ–चरित्रहीनता। चरित्र और भावनाओं का फर्क वह नहीं कर पाता। सच्ची दोस्त और स्त्री–पुरुष–उसके अहं को ठेस पहुँची। फिर वह सचेत होता हुए बोला, ''पम्मी, अगर मैं तुम्हें इजाजत भी दे दूँगा, तो यह समाज..।''

पम्मी को इजाजत चाहिए भी नहीं। जब आज तक निखिल ने कोई भी काम उसकी इजाजत लेकर नहीं किया, तो आज मृत्यु से पूर्व निखिल की इजाजत क्यों चाहती है?

''समाज...।'' पम्मी हँस पड़ी, ''समाज तो तुम्हारा ही गठित है, निखिल! तुम उसको पोषित करते हो। वह तुम्हारा खरीदा हुआ टट्टू है। एक पालतू कुत्ता, जो सदा मालिक के प्रति वफादारी दिखाता है। जिस दिन मुझमें उसको खरीदने की ताकत आ जाएगी, उसी दिन वह मेरा हो जायेगा।''

आज पम्मी मौन थी। सदियों से स्त्रियाँ सिर्फ मौन रही हैं, क्योंकि समाज के आगे उनका अस्तित्व गौण है। जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं, वह अस्तित्व की लड़ाई क्या लड़ेगा ?

पम्मी पहाड़ों के उस पार वृक्षों की शृंखला के बीच सफेद पक्षियों के उड़ते हुए झुंड को देख रही थी। चिड़ियाँ भी स्वतंत्र थीं–हवा भी, पेड़ भी और वह? वह मरने से पहले कुछ एक दिन भी अपनी इच्छाओं के अनुरूप नहीं जी पा रही थी।

वह सहसा उठी और अपने पेंटिंग रूम में गई। वहाँ वह सारे चित्रों को तहस–नहस करने लगी। वह अट्टाहास करती जा रही थी और फाड़ती जा रही थी। वह कैसी थी... उसकी अंतिम इच्छा.... एक जीवन पर ... मृत्यु.... पूर्ण विराम....।

निखिल के दूसरे विवाह की तैयारी चल रही थी।

दारा सिंह को आज ले जाया जा रहा है। जल्लाद गले का फंदा तैयार कर रहे हैं। सर्वधर्म के पुजारी, पादरी और मौलवी एकत्रित हैं। ईश्वर का नाम लो। आत्मा तो परमात्मा का अंश है।

जज पूछता है दारा सिंह से, ''आपकी कोई आखिरी इच्छा हो तो बताइए।''

दारा सिंह बोला, ''जी,'' जज आप दारा सिंह की आखिरी इच्छा को पूरी करने का वायदा कीजिए।

''लास्ट विश ग्रांटेड।''

जेल के बाहर उसकी पत्नी और बच्चे रो रहे हैं। पत्नी सिसक–सिसककर आँसू बहा रही है, ''अब मुझ बेसहारा को कौन सहारा देगा ? मेरा जीवन शून्य हो गया। मैं बरबाद हो जाऊँगी, नाथ! आप मुझे छोड़कर न जाओ।''

दारा सिंह की लाश फंदे में झूल गई।

पम्मी की लाश को जलते देर न लगी। उधर कुछ दिनों के बाद निखिल के विवाह की तैयारियाँ चल रहीं थीं। शहनाईयाँ बज रहीं थीं।

■

समाजसेवा

काफी बड़े पैमाने पर जलसे का आयोजन हुआ था। समाजसेवियों का जमावड़ा था। मुख्यतः इसमें शहर की चुनिंदा प्रतिष्ठित महिलायें थी जो अपना कीमती वक्त पार्लर और रेस कोर्स से बचाकर मानवता के कल्याणार्थ देती थीं, अभी इंसानियत मानो बाकी थी। होती भी क्यों न, शहर के बड़े–बड़े समाजसेवियों का आज गणतन्त्र दिवस के अवसर पर अभिनंदन समारोह रखा गया था। शहर के क्लब के प्रेसिडेंट, सेक्रेटरी, ऑफिसर्स और जानी–मानी तमाम बड़ी हस्तियाँ मौजूद थी। अपना पैसा और समय समाज की सेवा में लगाते थे, जाहिर है समाज का भी दायित्व बनता था कि और कुछ न सही तो कम से कम उनको सम्मान तो दे ही सकता था।

महफिल में थोड़ी–बहुत कानाफूसी हो रही थी। सब के सब मुख्य अतिथि के आने का इंतजार कर रहे थे। मुख्य अतिथि यानी मिनिस्टर साहब को आने में थोड़ा विलम्ब हो रहा था।

तभी मिसेज हलधर ने मिनिस्टर साहब को मोबाइल पर फोन किया।

''सर कितनी देर में आपका आना हो रहा है। यहाँ सब तैयार है।'' मिसेज हलधर शहर के बहुत बड़े सर्जन की पत्नी थीं और रोटरी क्लब की प्रेसिडेंट। वह हर उस जगह मौजूद रहती थीं, जहाँ कुछ भी घटित होता था, अपने क्लब के बैनर और कैमरे के साथ। इस छोटे से शहर में जब लोगों का जमावड़ा होता था तो एक जलसे के रूप में तब्दील हो जाता था। छोटा–सा एक ही समुदाय था जो समाज के प्रतिष्ठित वर्ग में बार–बार अपनी उपस्थिति दर्ज करता था और कमोवेश हर समारोह में यही समुदाय घूम–फिरकर दिखाई पड़ जाता था। आज का दिन माकूल दिन था, जिस दिन हर शख्स कहीं न कहीं सम्मिलित होना चाहता था। आज के दिन हर कोई शहरी समारोह और जलसे में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए बेताब रहता था।

''बस मैं रास्ते में हूँ। तुम लोग स्वागत की तैयारी करो।''

''जी सर।''

मोबाइल रखते ही वह एक्शन में आ गयीं। किसी को इधर खड़े होने का निर्देश मिला तो किसी को उधर। मुख्य अतिथि के पहुँचते ही समस्त लोग उनकी गाड़ी की तरफ लपके। दरवाजा खोलकर उनको मंच पर ले गये। स्वागत भाषण के बाद मुख्य अतिथि ने काफी विस्तार से इन सब महानुभावों के समाज के प्रति योगदान की चर्चा की और तारीफों के पुल बाँधे गये। ऐसा प्रतीत हुआ मानो समाज इन्हीं के कंधों के ऊपर टिका हुआ है।

फिर सबको सम्मानस्वरूप शाल भेंट किये गये। तड़ातड़ फोटोग्राफरों के कैमरे क्लिक होने लगे, टीवी वाले सम्मानित नागरिकों के सामने माइक लेकर लपके। पूरा समाँ उत्साहवर्धक हो उठा था। इधर मिसेज हलधर घूम–घूमकर सबों को शाम के डिनर के लिए बुला रही थीं। उनको भी बेस्ट प्रेसिडेंट का अवार्ड मिला था। शाम को उन्होंने एक पार्टी अपने घर पर रखी थी। अभी उपस्थित करीब–करीब सभी आगन्तुक उनकी मेहमानवाजी का लुत्फ उठाने वाले थे। सबको बुलाकर वह अपने घर के लिए प्रस्थान कर गयीं।

शाम को दावत क्या थी, मानो एक छोटा–मोटा जलसा था। शहर के तमाम बड़े और नामी–गिरामी लोग उपस्थित थे। मिसेज हलधर की तारीफ हर तरफ हो रही थी।

''देखो कितनी कुशल महिला हैं। घर और बाहर दोनों में कितना अच्छा सामंजस्य स्थापित कर रखा है।

''हाँ, कुशलता तो है पर पति का भी तो बेहद सहारा है।'' एक महिला नाक–भौं सिकोड़कर बोली। ''वह करती क्या है! बस मौके पर पहुँचकर खड़े हो जाने से कोई समाजसेवी नहीं बन जाता है। अरे देखें अगर कुछ भी बिना पति के योगदान के कर पाये तो मानें। दिन भर तो अपनी प्रैक्टिस छोड़ के इनके पीछे घूमता–फिरता है।'' पहली महिला ने कोहनी मारी, ''श....श.... देखो डॉक्टर हलधर इधर ही आ रहे हैं।''

मिस्टर हलधर पूरी पार्टी में गर्व महसूस कर रहे थे और घूम–घूमकर सभी का स्वागत कर रहे थे।

''कुछ लीजिए। अरे वेटर, इधर ड्रिंक्स लेकर आना। मैडमजी किसके साथ लीजिएगा, सोडा या पेप्सी के साथ। शर्माजी आइये–आइये। बस आप

ही का इंतजार था। अरे शर्माजी को वोदका सर्व करो। खास करके आपके लिए बाहर से मँगाई है। इण्डियन तो आप पीते नहीं।''

तभी डॉक्टर साहब का मोबाइल बज उठता है। क्लिनिक से फोन है।

''डॉक्टर साहब एक मरीज बहुत ही सीरियस अवस्था में भरती हुआ है, ट्रक से टक्कर हुई है। नहीं–नहीं हैड इंजरी नहीं दोनों टाँगें बुरी तरह से जख्मी हो गयी हैं। ऑपरेशन कर रॉड डालनी पड़ेगी।''

''अरे विनोद, अभी मैं कैसे आ सकता हूँ। मरीज गरीब है या अमीर?''

''सर गरीब है। साथ में माँ और बीवी है।''

''अरे सँभाल लो विनोद। अभी पार्टी शुरू हुई है। देखो मैं दवा समझा देता हूँ। तुम उसको बोलो सुबह तक इंतजार कर ले। मेरी फीस भी बता देना, अभी भर्ती किये लेते हैं, ऑपरेशन पैसे मिलने के बाद शुरू करेंगे। नर्सिंग होम का किराया भी बता देना।'' और मोबाइल ऑफ हो गया।

डॉक्टर साहब फिर से सबको खिलाने–पिलाने में मशगूल हो गये। पी के चढाने के बाद तो उनको होश ही नहीं रहता था। म्यूजिक चलने के बाद तो वह किस भाभीजी के साथ डांस कर रहे थे और कैसे कर रहे थे उन्हें तो इसका ध्यान भी नहीं होता था।

पार्टी खत्म होते–होते फिर विनोद का फोन आ गया।

''सर उसको इंजेक्शन तो दे दिया है पर उसकी पत्नी आपसे मिलना चाहती है। कह रही थी कि डॉ. साहब का काफी नाम सुना है। वह मुझ दुखियारी की मदद करेंगे।''

डॉ. साहब के मुँह से एक भद्दी–सी गाली निकली–''क्या मैंने पूरे इलाके के गरीबों का ठेका ले रखा है। सुबह देखेंगे। अभी छोड़ो ये सब। मूड मत खराब करो। जाने कहाँ–कहाँ से भिखमंगे चले आते हैं। औकात भी नहीं देखते। मेरा कोई खैराती अस्पताल है या फिर मैं कोई सरकारी डॉक्टर हूँ। जिसको देखो खैरात माँगने चले आते हैं और हाँ रात में फोन करके परेशान मत करना। सोने दो। मैं काफी थक गया हूँ।''

सचमुच वह पलंग पर ऐसे लुढ़के कि उनको होश नहीं रहा।

सुबह–सुबह विनोद ने ही फोन से उठाया, ''साहब मरीज थोड़ा सीरियस है। बुढ़िया बोल रही है शाम तक पैसे का इंतजाम हो जायेगा। शायद गाँव वाले चंदा करके दस हजार तक इक्ट्ठा कर देंगे। बाकी पैसा भी वह एक–दो दिन में इकट्ठा कर दे, देगी।''

''ठीक है तुम ऑपरेशन की तैयारी करो मैं बस पहुँचने वाला हूँ।''

पत्नी की भी नींद तब तक खुल चुकी थी। ''कहाँ जा रहे हो?''

''कुछ नहीं एक इमरजेंसी है।''

''ओफ .... सिर्फ काम और काम, और इसके अलावा भी कुछ आपको नजर आता है! आज बच्चों को पिक्चर लेकर जाना था।'' मिसेज हलधर थोड़ा रूष्ट होकर बोलीं।

''अच्छा बाबा ले चलेंगे जरा नर्सिंग होम होकर आते हैं। कुछ पैसा होगा तभी न खर्च कर पायेंगे।'' डॉक्टर साहब तैयार हुए और सीधे क्लिनिक चले गये।

शराब का सुरूर अभी भी उन पर था। अतः ऑपरेशन करते हुए हाथ काँप रहे थे। ऐसे भी मरीज कोई मुख्य व्यक्ति तो था नहीं कि डॉक्टर साहब ऑपरेशन थोड़ा सीरियस होकर करते। जैसे–तैसे ऑपरेशन करके बाहर आये।

''देख लेना शाम तक पैसे जमा हो जायें नहीं तो अपने नर्सिंग होम में हम रख नहीं पायेंगे। यह बात साफ–साफ बोल देना। वर्ना होश आते ही उठाकर फेंक देना।''

डॉक्टर साहब और मरीजों को देखने में व्यस्त हो गये। इसी बीच मंत्रीजी का फोन आया। उनकी पत्नी को पेट में दर्द था। दो–तीन डॉक्टर पहुँच चुके थे। इनको भी तलब किया गया था। चलते–चलते विनोद को बोले कि और मरीजों को बैठाकर रखो, मैं मंत्रीजी के यहाँ से होकर आता हूँ।

शाम होते–होते उस मरीज की बूढ़ी माँ कुछेक पैसे का इंतजाम कर लायी थी। विनोद को देकर बोली कि बहुत जल्दी ही वह सारे पैसों का इंतजाम कर देगी। गरीबी में शायद एक विवशता होती है।

धीरे–धीरे मरीज को होश आ गया। उसकी दोनों टाँगों में रॉड डालनी पड़ी थी। अभी उसकी हालत पूरी तरह से सुधरी नहीं थी। रह–रहकर बेहोश हो जाता था।

''डॉक्टर साहब उस मरीज का क्या करें?'' तीसरे दिन भी जब उसको होश नहीं आया तो चिंतित स्वर में विनोद बोला।

''अरे करना क्या है। दो–एक दिन और रख लो। फिर भी ठीक नहीं होता तो बाहर निकाल देना। ऐसे भी कौन–सा अपना कुछ लगता है, पैसा

भी पूरा जमा नहीं कर पा रहा है। कहाँ तक ढोते रहेंगे।'' दूसरे दिन मरीज को उठाकर बरामदे में डाल दिया गया। उसके जख्म पर मक्खी भिनभिना रही थीं। मरीज तो बरामदे में पड़ा कराह रहा था। उसका साढ़े तीन साल का पुत्र रह–रहकर बेचैन हो उठता था।

''माँ, घर चलो माँ। भूख लगी है।'' उसकी बेबस बीवी बच्चे को बहलाने के लिए उसका मुँह अपने आँचल में लगा देती और बच्चा थोड़े से दूध की अनुभूति से चुप हो जाता। इतने दिन से उसने भी ठीक से नहीं खाया था तो पूरा दूध उसको भी नहीं उतर रहा था।

इस समय प्रश्न भूख का नहीं था, प्रश्न जिन्दगी का था, पति की जान बचाने का था। पति की स्थिति देख–देखकर उसका कलेजा मुँह को आता था। होश में आने पर भी गफलत की स्थिति में रहते थे। शाम को जब डॉक्टर साहब पहुँचे तो उनका पैर पकड़ वह बिलख पड़ी।

''डॉक्टर साहब मेरे सुहाग को बचा लो, यही एकमात्र सहारा हैं। घर में खेती–बारी भी नहीं है जो उससे गुजर–बसर हो। हम पर दया करो।''

शायद रोने का भी उनके ऊपर कोई असर नहीं पड़ा।

''विनोद मरीज को क्या हुआ है?''

''डॉक्टर साहब शायद दाहिने पैर की रॉड में पस आ गया है। जहर शरीर में फैल रहा है। दवा लिखकर दिया था पर यह उसका इंतजाम नहीं कर पाये।''

''उपाय?''

''कुछ नहीं, अगर उसको ज्यादा दिन रखेंगे और कहीं मर गया तो उल्टे लेने के देने पड़ जायेंगे।''

''ठीक है शाम को डिस्चार्ज स्लिप बना दो। जो भी दे डॉट–डपटकर रख लो और मुसीबत से छुट्टी करो। ये हुआ कैसे?''

''डॉक्टर साहब रॉड में या तो जंग थी या फिर सिलाई ठीक से नहीं लगी है। जो भी है अगर ये हमारे यहाँ मर गया तो हमारे नर्सिंग होम की बदनामी होगी। आठ–दस हजार जैसे–तैसे करके दे देगी। बाकी अपनी बला से।'' विनोद के दार्शनिक स्वर से डॉक्टर साहब का हौसला बढ़ा।

''सही बात है। अगर मरीज मर भी गया तो बुढ़िया की इतनी औकात भी नहीं कि दस लोग इकट्ठा कर पाये तो फिर हमें डरने की क्या जरूरत है।''

शाम तक उस रोते–गाते मरते हुए मरीज की माँ से जितना भी बन पड़ा ले लिया और उसको उठाकर बाहर फेंक दिया।

मरीज की हालत रात बीतते–बीतते सीरियस हो गई थी। भोर होते होते वह इस दुनिया से चल बसा।

उधर शाम को डॉक्टर साहब बाहर लॉन में बैठकर चाय पी रहे थे। उनके एक–दो डॉक्टर मित्र भी चाय में उनका साथ देने के लिए आ गये थे।

''आजकल क्या चल रहा है अशोक?'' अशोक शहर के नामी–गिरामी बच्चों के डॉक्टर थे। ''अरे चलना क्या है अभी–अभी तो लौटकर आया हूँ इंगलैंड से। नियोनिटल सर्जरी की काफ्रेंस थी। जगह–जगह से डॉक्टर आये हुए थे। मैश्यूस्ट से भी डॉक्टर जोन्स थे। काफी कुछ सीखने का मौका मिला। और तुम्हारा डॉ. चावला।''

''सब मजे में।'' और डॉक्टर अशोक हँस दिया। ''दावत–वावत कब दे रहे हो।''

डॉ. चावला खिसियाकर बोले–''भाई बात तो एक ही है।''

''हाँ.....हाँ..... तुम तो कहोगे।''

तभी डॉ. हलधर के मोबाइल पर घण्टी बज पड़ती है। डॉ. साहब उठकर लॉन के एक कोने में आ गये जिससे ठीक से बात सुनी जा सके। ''अच्छा कब हुआ? ठीक है उनको बोलो.... चिंता नहीं करें। हाँ–हाँ हम सब पहुँच रहे हैं। सभी यहीं हैं। अरे कैसी बात करते हो। मुसीबत में ही इन्सान न एक–दूसरे के काम आता है।'' और उन्होंने स्विच बन्द कर दिया।

स्वर में चिन्ता थी, ''डॉ. बत्रा का अपहरण हो गया है।''

''कैसे?'' सभी के स्वर में चिन्ता थी।

''पता नहीं। आजकल का वक्त भी तो कितना खराब आ गया है। कानून व्यवस्था तो पूरी तरह चरमरा गई है। कब क्या हो जाये पता नहीं।''

''तुम सही कहते हो। इतना टैक्स भी दो फिर भी हम लोग सुरक्षित नहीं है।''

''हाँ तुम ठीक कहते हो। आज समाज के मूल्यों में इतना ह्रास हो गया है कि अब लोग डॉक्टरों को भी नहीं छोड़ते। अरे एक पहले का समय था। डॉक्टरों को लोग भगवान मानते थे। अब देखो! यह दिन भी देखना पड़ेगा ऐसा कभी सोचा भी न था।''

''अरे, अभी सोचने का वक्त नहीं है। एक्शन का है। अगर अभी हम चुप बैठ गये तो हमारी आवाज दब जायेगी।'' डॉ. हलधर थोड़ा उग्र स्वर में बोले, ''हम धरना करेंगे, प्रदर्शन करेंगे, प्रशासन के खिलाफ नारेबाजी करेंगे।'' उनके अन्दर का नेता और समाजसेवी जाग उठा था। ''अगर तब भी कुछ नहीं हुआ तो हड़ताल।''

वैसे भी अब डॉक्टर भगवान न रह गया था, बल्कि किसी मिल के मालिक जैसी उसकी स्थिति थी जो हड़ताल की नौबत बीच–बीच में आ जाती थी।

सारे डॉक्टर एकजुट होकर डॉक्टर बत्रा के घर की तरफ चल दिये। सबमें आक्रोश भरा हुआ था।

डॉ. अशोक तो इंगलैंड वापस जाने की बात भी कर रहे थे।

''यहाँ से तो अच्छा बाहर है। लोग आपके काम की कद्र तो करते हैं। वहाँ पर डॉ. बत्रा जैसे डॉक्टर को सम्मानित किया जाता है, न कि उनका अपहरण होता और न फिरौती में रुपये माँगे जाते।

मिसेज बत्रा हॉल में बेहाल पड़ी हुई थी। ज्यादातर डॉक्टर्स की पत्नियाँ इकट्ठी हो गई थीं। सब उन्हें संभालने में लगी हुई थीं।

बत्रा साहब के ड्राइंगरूम में कल के जुलूस की तैयारी के विषय में वार्तालाप चल रहा था। पुलिस कप्तान को फोन करके उसकी सूचना दे दी गई थी। वह भी एड़ी–चोटी का जोर लगाये हुए थे। डॉ. बत्रा उनके अच्छे मित्र भी थे। बीच में वक्त निकालकर वह मिसेज बत्रा को सान्त्वना दे गये थे।

''धीरज रखिए हम सब कुछ न कुछ हल निकालेंगे। मुजरिम बच के जाने नहीं पायेगा।''

मिसजे बत्रा को कहाँ धीरज आ रहा था। उसका सुहाग इस समय मुसीबत में था, वह कहाँ अपने मन को समझा पा रही थी। सुबह से उसने खाना–पीना बन्द किया हुआ था। रह–रहकर बेहोश हो जाती थी।

डॉक्टर बत्रा का दूसरे दिन भी कोई सुराग न मिला। अब तो पानी सर के ऊपर से निकल रहा था। शहर के नामीगिरामी डॉ. बत्रा दो दिनों से लापता थे और कुछ भी पता नहीं चल पा रहा था कि वह कहाँ गये। अच्छे–खासे अपने क्लिनिक से लौट रहे थे कि दो रिवाल्वरधारी नौजवानों

ने जबरन उनको उठा लिया। गाड़ी में ही बैठाकर ले गये। अभी तक फिरौती की भी माँग नहीं हुई थी। मिसेज बत्रा के घर से डॉक्टरों का बड़ा–सा जुलूस निकला। जिन्दाबाद–मुर्दाबाद के नारे लगाते हुए सभी जुलूस के रूप में निकल रहे थे। सबके चेहरे पर क्षोभ और चिन्ता स्पष्ट थी। आगे–आगे पत्रकार और टीवी के आदमी चल रहे थे और पीछे–पीछे पुलिस की गाड़ियाँ।

आखिर पूरे जुलूस को पुलिस के संरक्षण की जरूरत थी। जुलूस कमिश्नर कार्यालय के समीप पहुँच रहा था। वहाँ उनको ज्ञापन देना था। रास्ते में डॉ. हलधर की क्लिनिक पड़ती थी। जैसे ही जुलूस वहाँ पहुँच कि ठेलागाड़ी पर उस मरीज की लाश लेकर उसका परिवार जा रहा था। दो दिन पुरानी लाश महकने लगी थी। ठेलागाड़ी वाला मददगार इन्सान निकला और उसने मुफ्त में उसकी लाश को उठा, श्मशान पहुँचाने का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया। रोती–बिलखती बीवी, कलपती माँ और दुधमुँहा बच्चा लाश का साथ दे रहे थे। ठेलागाड़ी वाले ने जुलूस देखकर रास्ता बदल लिया। खामख्वाह जुलूस जनाजे को रोक लेगा। वैसे भी लाश से गंध आ रही थी। इंसान भी इस कदर सड़ी–गली लाश में तब्दील हो जाता है कि उससे सड़ाँध आने लगती है। शायद उस जुलूस में जिसका डॉ. हलधर नेतृत्व कर रहे थे एक सड़ाँध ही आ रही थी। समाज शायद कब का सड़ चुका था।

■

तीज

वह शायद यह कहानी बचपन में सुनकर बड़ी हुई थी। शादी के पहले माँ और दादी यह कहानी एक–दूसरे को कहतीं और वह घुटने के बल गुटुर–गुटुर बैठकर कहानी सुना करती। शिव–पार्वती बनते और गणेशजी के साथ उनकी पूजा होती। उसकी माँ उस घर की इकलौती बहू थी और वह इकलौती पोती। उससे छोटा एक भाई था। अतः वह भी काफी लाड़–प्यार से पली–बढ़ी थी। उसकी दादी सुहागिन गई। जरूर इस व्रत का प्रताप होगा। अन्त समय में उनको बिछिया, चूड़ी पहनाकर और बाबा ने माँग में सिंदूर भरकर लालिमा से विदा किया था। सब कितना रश्क कर रहे थे अम्मा के भाग्य से। उनके अर्थी के ऊपर से पैसे न्योछावर कर सबको बाँटे गये थे प्रसाद स्वरूप।

पंडितजी शिव–पार्वती की स्थापना कर उनका महिमामंडन कर रहे थे। और जो स्त्री ऐसा नहीं करती वह सात जन्मों तक वैधव्य का भोग करती है। उनके जितने पुत्र होते हैं सब के सब अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। और पंडितजी आगे कहे जा रहे थे और उसका दिमाग घूमने लगा और वह गिरकर बेहोश हो गयी।

उसकी दादी की तीन ननद थीं। सबसे बड़ी ननद के पति का देहावसान तभी हो गया था जब उनकी एकमात्र पुत्री ग्यारह साल की थी। बहुत पुरानी बात है। वह तो किस्से–कहानियों की तरह से दादी के मुँह से उनके विषय में सुनती थी। दादी का नाम शान्ति था और नन्द का श्यामला। श्यामला की बेटी थी कमला। अब जैसा कि पहले जमाने में होता आया था एक विधवा उसकी छोटी–सी पुत्री को कौन ससुराल वाले रखने की जहमत करते। करते भी क्यों जब उनका बेटा ही न रहा तो बहू और पोती से क्या वास्ता। लिहाजा साजो–सामान सहित बहू मायके भेज दी गई। आज से पचास साल पहले विधवाओं की जिन्दगी काफी कष्टदायक थी। हम दोनों भाई–बहन छुपकर देखते कि हर महीने नाई आता और

उनके बाल उतारकर चला जाता। पहले–पहल तो गौरवपूर्ण मुखमंडल का केशविहीन होना दहला देता पर शायद वह पतिव्रता साध्वी की तरह से इस नियम का अनवरत पालन करती रहीं। किसी में भी न यह पूछने का साहस हुआ न इस दिशा में उनको रोकने का। एक बार उसने डरते–डरते पूछा भी था तो दादी अपने पोपले मुँह से बोलीं, 'बेटा जब कमला के बापू नहीं रहे तो फिर यह केश रहे न रहे.....मेरी तो जिन्दगी ही उसके साथ खत्म हो गयी।" और वह काँप गयी थी। अपने बालों पर हाथ फेरते हुए भाग खड़ी हुई। काफी दिनों तक रात में उसे जलती हुई चिता दिखलायी देती। वह घबड़ाकर आँख बन्द कर लेती और दादी से कस के चिपक जाती। मृत्यु का भय और उससे भी सर्वोपरि अपनों को खोने का भय उसको हिला देता।

गुड्डे–गुड़ियों का खेल खेलकर ओर स्कर्ट, फ्रॉक पहनने की उम्र पार कर अब वह बड़ी हो गयी थी। रूप और सौन्दर्य ने उसके मुख को पूरा निखार दिया था। एक पार्टी में देख उसको ससुराल वालों ने पसन्द कर लिया। लड़का पुलिस में अच्छे औहदे पर था। लिहाजा आपत्ति का कोई सवाल न था, पर आपत्ति आकर टिक गयी जन्मपत्री पर। दोनों के मात्र साढ़े तेरह गुण मिले थे।

अरे ये सब बेकार के वह्म हैं। जिनकी नहीं मिलती या जो प्रेम विवाह कर लेते हैं, क्या वह खुश नहीं रहते हैं या सब के सब मर जाते हैं उसका विवाह शान्तनु से हो गया।

अब कल तीज है। छोटी देवरानी की पहली तीज है। शादी के दस दिन बाद ही पड़ रही है। पूरे घर में खुशी है, पर सिर्फ वह उदास है। उदास माँ भी है–शांतनु की माँ, उसकी माँ। कभी –कभी अपने दिल के अन्दर दुखों को काफी गहरे कहीं दफन कर लेना पड़ता हैं, दूसरों के लिए मुस्कुराना पड़ता है, उनकी खुशी में न चाहते हुए भी शरीक होना पड़ता है। अभी घर पूरा शादी के माहौल में रँगा था। काफी रिश्तेदार जा चुके थे और थोड़े–बहुत आत्मीय या नजदीकी कहना ज्यादा उचित होगा, रह गये थे। देवर विदेश में नौकरी करता था। यहाँ से इंजीनियरिंग करके अमेरिका में नौकरी कर रहा था। उसके जाने के बाद इतने बड़े कोठीनुमा घर में फिर सन्नाटा पसर जायेगा। मौत का सन्नाटा जिसको अभी इस शादी के बाहरी आडम्बर ने बखूबी छिपा लिया था। जिन्दगी भी कितना मसखरापन करती है, मौत के खेल में गम को भी अपने अन्दर समेट लेती है। मौत वह एक

खूबसूरत औरत है जो दूर तक दौड़ के मनुष्य को मरुस्थल में ले जाती है, और वहाँ अपनी कुरूपता का अहसास कराकर पटक देती है। मूर्ख मनुष्य पर अट्टहास करती है–धत् मूर्ख.....तू यह भी न कभी समझ पाया कि मेरी खूबसूरती छलावा थी। और वह उसे निगल जाने के लिए विद्रुपता अपना लेती है और यह मनुष्य उसमें समा जाता है। एक अदृश्य खेल और उससे भी अधिक अनोखी लीला में विलीन हो जाता है।

देवरानी कल पहली बार सुहाग का व्रत रखेगी। उसकी तैयारी जोर–शोर से आज से ही हो रही थी। बड़े घर की बहू थी कि कोई छोटी–मोटी बात। उसके माता–पिता भी सासाराम से आ गये थे। बेटी के लिए नई साड़ी–कपड़े एवं ढेरों सामान था। माँ ने भी उसको नया जोड़ा बक्से में से निकालकर दिया था। उसके ससुर सेठ हीरादास बक्सर के कांग्रेसी कार्यकर्ता थे। कुछ साल पहले तक सक्रिय राजनीति में उनकी भागीदारी थी। दो बार विधानसभा की कुर्सी तक जा चुके थे। लिहाजा इलाके में काफी दबदबा था। शाम को पुरानी नाऊन आकर आलता–महावर लगा गई थी।

"मम्मी पैरों को लाल रँगने वाली बाई आई है। सबके पैर रँगे जा रहे हैं। चलो न यहाँ क्यों बैठी हो।' शुभांगी की बेटी ने पूछा।

एकदम से उसका दुख परम क्रोध में बदल गया। बेटी को उसने तड़ाक से एक थप्पड़ मारा और चीखी....."जाओ जाकर तुम भी पैर रंगवाओ ....घर में सब के सब मस्ती कर रहे हैं। किसी को मेरी परवाह नहीं है। जब उनमें से किसी का कुछ जायेगा तब पता चलेगा कि खोना किसको कहते हैं।" जोर से उठाकर पास में रखा पाउडर का डिब्बा ड्रेसिंग टेबल के शीशे पर मारा। वह टूटकर चकनाचूर हो गया। बिलकुल उसकी अपनी जिन्दगी की तरह शीशा चूर–चूर होकर बिखर गया था।

बेटी अप्रत्याशित रूप से घटित इस घटना को अपलक देखती रही थी। अपनी माँ का यह रूप उसके लिए बिलकुल नया था।

इसके बाद माँ बदहवास उसके पापा का नाम लेकर रोने लगी।

"शान्तनु.....शान्तनु....."

उनकी चीख सुन नीचे से सब लोग भागकर ऊपर आ गये। माँ ने नयी बहू और देवर को नीचे भेज दिया।

हाँ, वह तो मनहूस है, उसके सामने पड़ने से तो उनकी जिन्दगी कहीं, उसकी जैसी न हो जाय। मन में छुपे यह शब्द कब वाणी से बाहर आ गये इसका उसको पता नहीं चला।

"जाओ, तुम सब जाओ। मुझ मनहूस बदनसीब को अकेला छोड़ दो।" वह पागलों की तरह व्यवहार करने लगी। उसको खुद नहीं समझ आ रहा था कि वह क्यों ऐसी हो गयी है। सामने खड़ी सामिया का चेहरा देख–देखकर वह अपने ऊपर नियंत्रण रखना चाह रही थी पर ऐसा हो नहीं पा रहा था। थोड़ी देर माँ उसको सँभालती रही पर वह असंतुलित रही। होश तब आया जब डॉक्टर ने उसको सुई लगाई। थोड़ी देर बीतते–बीतते शान्त हो गई। बाहर से तो वह शान्त हो गई थी पर अन्दर दुख का सागर हिचकोले ले रहा था। रात भर दोनों बेटियों को चिपकाकर सिसक–सिसककर रोती रही।

उसने व्रत में क्या त्रुटि की थी जो उसका शान्तनु उसको छोड़कर चला गया।

शान्तनु और वह जिन्दगी में काफी खुश थे। अच्छी पोस्ट, अच्छा परिवार और किसी को जिन्दगी में क्या चाहिए होता है? शान्तनु उसको चाहता भी बहुत था। एक तरह से कहा जाय उसके रूप–सौन्दर्य पर जैसे फिदा था। जाने किसकी नजर उसकी प्यारी–सी गृहस्थी को लग गयी। शान्तनु की पोस्टिंग गया जिले में हुई। गया का कोंच उग्रवाद प्रभावित था। शान्तनु की कार्यप्रणाली से सब ही संतुष्ट थे। कर्त्तव्यनिष्ठ, चुस्त–दुरूस्त पुलिस अधिकारी। होली के एक दिन पहले खबर आयी कि कोंच गाँवों में कुछ आपसी तनाव व्याप्त हो गया है। उसके काफी रोकने के बाद भी वह यह कहकर निकल गया कि 'बस मैं यूँ गया और यूँ आया।' उसका मन अनहोनी की आशंका में धड़क उठा था। वह गया तो यूँ ही था, पर वैसे आ न सका। उग्रवादियों द्वारा बिछायी हुई बारूदी सुरंग पर उसकी गाड़ी के जाते ही गाड़ी के साथ–साथ शान्तनु के भी चीथड़े–चीथड़े उड़ गये। वह विश्वास ही न कर पायी। फिर बेहोश होने के पहले सिर्फ इतना कह पायी कि "तुम सब गलत सोच रहे हो। यह शान्तनु हो ही नहीं सकते। वह तो जीवित हैं। वह बोलकर गये थे कि अभी आ रहे हैं....वह आ ही रहे होंगे।"

काफी दिन तक वह गेट पर खड़े होकर उनके आने का इंतजार करती रही थी पर वह नहीं आये।

शुभांगी के बचपन में उसकी दादी शान्ति की ननद, श्यामला का जीवन मायके में गुजर रहा था। शुभांगी की बेटी का विवाह भी बाप–भाई ने ही किया था। अच्छे में तो ससुराल वाले काम भी आ जाते हैं। हाडे–हटके मायके वाले ही निपटाते हैं। फिर जिस औरत का पति ही न रहा हो उसका ससुराल में कोई स्थान ही नहीं। श्यामला की मायके में भी कोई मजे से नहीं गुजर रही थी। शान्ति से अक्सर कलह हो जाती थी। वह वैधव्य जीवन ऊपर से कुछ नहीं तो दिन भर या तो वह बड़बड़ाती रहती नही ंतो हर काम में मीनमेख निकालती रहती। ऐसे भी सुबह चार बजे उठकर मंदिर में खिट–पिट चलती रहती। कभी अगर शुभांगी की नींद खुल जाती तो देखती वह अपने लड्डू गोपाल से बातें कर रहीं हैं। कमरे में आवाज सुनकर अभी भी श्यामला को डर लगता पर जीवन में कोई सहारा तो इंसान खोजता है। जीवन जीने के लिए कोई न कोई अवलंब चाहिए, उन्होंने शायद ईश्वर में खोज लिया था।

इस जिन्दगी में उनकी खोज परिवार में बराबर चलती थी। परिवार में जिस किसी के यहाँ बच्चा होता तो गद्दी–पोथड़ा, पोंछने–धोने के लिए उनको बुला लिया जाता। अब शुभांगी की बुआ के तीनों बेटों को उन्हीं ने पाल–पोसकर बड़ा किया। कहीं भी बीमारी हो तो श्यामली दादी की तलब होती। वह डेढ़ हड्डी की काया–थोड़ा–सा सामान अटैची में डाल भेज दी जाती जहाँ भी उनकी जरूरत होती। उन्होंने कभी प्रतिकार न किया। शायद करती भी किससे। निरर्थक जीवन को छोटा ही सही पर शायद अर्थ देने की कोशिश करती थीं। उनके ससुराल में भी जब सास बीमार पड़ी तो देवर लेने के लिए आ जाता।

"भाभी, चलो माँ ने बुलाया है.....बीमार है। आखिरी वक्त में आपका सान्निध्य चाहती है।" साथ क्यों चाहती थीं यह वह अच्छे से जानती थी। एक अर्थपूर्ण निगाह अपने भाई पर डाली। वह कुछ न बोला। वैसे भी ससुराल के बीच में बोलकर वह वहाँ बुरा नहीं बनना चाहता था या फिर कुछ दिन के लिए अपनी जिम्मेदारी के बोझ से निवृत होना चाहता हो। जो भी हो श्यामली सास की सेवा में लग गयीं। सुबह–शाम रामायण बाँचकर सुनाती थीं और दिन भर गौमूत्र साफ करती थीं। सास थी मरते–मरते ढेरों आशीष दे गई।

"बेटा जो कष्ट हमने ढाये वह तो तेरी किस्मत का दोष था। क्या हम या तुम ऐसा चाहते थे। जैसी उसकी इच्छा। जब वही तुमसे रुष्ट रहा तो हरि इच्छा। तूने, बड़ी सेवा की है। जा तुझे अगले जन्म में खूब सुख मिले।"

श्यामली उनके देहान्त पर खूब फूट–फूटकर रोई थीं। ससुराल से जो एक नाता था, आज उसकी एक डोर भी टूट गयी। फिर देवरों और जेठों से भरे घर में उसने दुबारा कदम न रखा।

बेटी कमला के घर भी काफी कम जाती थीं, वही अक्सर आ जाती। बेटी के घर पर खाना वह वर्जित मानती थीं। नाती होने के बाद भी संस्कारों ने बाँध दिया था।

शांति के बेटे की जब शादी हुई तो उन्होंने अपने जेवर तुड़वाकर उसकी बहू के लिए बनवाया था।

"बहू.....रानी बहू ने तुम्हें जो लम्बा वाला हार पहनाया है वह मेरे सोने का बना है। तुम किसी से कहना नहीं पर यह मेरी तुमको भेंट है।" उनके स्वर में गहन पीड़ा थी। वह अपनी ही चीज को शौक से किसी को दे भी न पायी थीं। सारे अरमान उनके अन्दर दब गये थे।

श्यामला दादी बूढ़ी हो चलीं थी। एक दिन बस वह खाट पर से उठी ही थीं कि जोर से चिल्लाकर बैठ गई।

काफी देर तक जब वह खाट पर से नहीं उठीं तब लोगों का ध्यान उधर गया। कूल्हे की हड्डी का फ्रैक्चर था। उनकी बेटी आकर उनको ले गयी थीं। इसी बीमारी में उनका अन्त भी आ गया। क्रिया–कर्म के समय नाती साफ़ मुकर गया। तब श्यामली के भाई ने ही आगे आकर उनका क्रिया–कर्म किया।

"माँ, नहीं थी बड़ी बहन थी। क्या हुआ अगर मैं उनका बेटा नहीं हुआ पर वह थीं तो माँ जब पूरी जिन्दगी सेवा की तो अन्त समय में क्या पीछे हटना।" और उन्होंने बेसहारा–सी श्यामली दादी की जिन्दगी को किनारे लगा दिया। उनका जेवर भी बाँधकर बेटी को दे दिया। वक्त बीतता गया।

इधर शान्तनु के मरने पर शुभांगी के माता–पिता आये थे। एक कोने में दुख और अपमान को पीते हुए बैठे थे। बेटी का चेहरा देख–देखकर कलेजा जी को आ रहा था। छोटी–छोटी बेटियों को देख दिल दहल जाता।

"अरे पूरी जिन्दगी पड़ी है कैसे होगा। कम से कम अपनी जिम्मेदारियाँ तो पूरी कर जाते।"

"ईश्वर कैसे इतना अन्यायी हो सकता है। कम से कम छोटे बच्चों का तो ख्याल करता।"

मिथ्या वचन, कोरी संवेदनाएँ। शुभांगी को रह–रहकर ख्याल आता, वह कैसे बच्चे पालेगी। इनका भविष्य बिलकुल अनिश्चित–सा हो गया था।

शान्तनु की मृत्यु के बाद शुभांगी की माँ उसको कुछ दिनों के लिए मायके ले गई थी। सबका थोड़ा मन बदल जायेगा और इन सबसे ध्यान हट जायेगा पर शुभांगी रह न पायी। रह–रहकर अपना घर याद आता था। वहाँ से जुड़ी हर चीज में उसको शान्तनु का स्पर्श लगता था। यादें थीं और उन यादों में स्पन्दन था, जीवन था।

शान्तनु उसका कितना ख्याल रखता था। जब भी घर में रहता तो हँसता रहता। हमेशा साथ खाता। उसकी आँखों का इशारा ही खाने की मेज पर बुलाने के लिए काफी था। उसकी पूरी आलमारी ही शान्तनु के पसंदीदा कपड़ों से भरी थी। उसकी जिन्दगी की धुरी था शान्तनु। वह उसको ही खा गई।

बीच–बीच में उसकी माँ ने यदा–कदा शादी की बात चलाई भी पर शुभांगी के ससुर ने साफ शब्दों में कह दिया–

"समधनजी.....हमारे घर में ऐसा कोई रीति–रिवाज नहीं है। अगर उसने अपना पति खोया है तो हमने भी अपना बेटा खोया है। रात–रात भर जागकर में भी उसकी याद में तड़पता हूँ। मैं बाप–दादाओं की कमायी हुई इज्जत यूँ ही नहीं गँवा दूँगा। दुबारा ऐसा सोचिएगा भी नहीं.....।'

वह भी शादी करके शान्तनु की स्मृतियों के साथ तेरहवीं के बाद छलावा नहीं करना चाहती थी। जाते–जाते माँ एक काली बिन्दी लगा गई। "बेटा मेरे सामने तुम्हारा माथा खाली रहे और माँग सूनी यह मैं देख नहीं सकती।" वक्त था कि ध्रुव गति से बीतता गया। कालान्तर में शुभांगी के देवर का भी विवाह हो गया।

आज तीज थी। सब महिलायें उत्साह से व्रत की तैयारी कर रही थीं। अखबार में धू–धू कर कुछ जल रहा था। सारे अखबार रूपकँवर के सती होने की घटना से भरे थे। पति की चिता पर एक और सती। शुभांगी सिर्फ चिता की जलती हुई लपटों को देख रही थी। रूपकँवर के चर्चे सबकी

जुबान पर थे। हों भी क्यों न, एक और महिला मार डाली गयी। अच्छा है जिन्दगी भर घुट–घुटकर मरने से तो एक बार मर जाना बेहतर है। शुभांगी उठी.....शीशे के सामने जाकर खड़ी हो गयी। रूपकँवर का सुहागिनों वाला चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम गया। वह भी तो तिल–तिल कर मर ही रही है। एक निगाह उसने ऊपर से नीचे तक अपने ऊपर डाली। सफेद लिबास और उसे भी स्याह सफेद बेरौनक चेहरा। जोर से हँसना भी उसके लिए गुनाह था। वह मनहूस थी। उसका यही चेहरा सुबह देखना अपशगुनी था। उसके अन्दर भी कुछ जलने लगा, अपने प्रति उपजी घृणा जलने लगी। वह कायर थी.....बेहद कायर। अपने बच्चों के कारण वह मर भी नहीं सकती थी। नहीं, अब वह मरेगी नहीं, जियेगी। शान्तनु की यादों के सहारे जियेगी। शान्तनु भी यही चाहता है। उसने अपनी आलमारी खोली। पिछले साल तीज पर शान्तनु ने हल्के गुलाबी रंग की साड़ी दी थी। उसको पहनकर और हल्का मेकअप करके वह फिर से शीशे के सामने आकर खड़ी हो गयी। नीचे से उसकी दोनों बेटियाँ दौड़ती हुई आ गई।

"माँ.....कहाँ हो माँ..... ।"

उनकी माँ बाँहें फैलाये नवजीवन का स्वागत करने के लिए तैयार खड़ी थी। दोनों उस बाँहों के संसार में आकर दुबक गयीं।

शुभांगी की आँखों में आँसू थे पर पीछे शान्तनु खड़ा मुस्कुरा रहा था। अब उसकी आत्मा शान्ति से रह सकेगी। उसने आकर हौले से शुभांगी के कंधों को सहलाया। अब शुभांगी को कोई तीज करने की आवश्यकता नहीं थी। न रात भर रतजगा करके अजगरी योनि से बचने का कोई स्वाँग रचना पड़ेगा। उसका शान्तनु तो उसके पास था। एक नया संसार स्वागत में पलकें बिछाये खड़ा था।

"तो चलें।" शान्तनु बोला। और उसने मौन स्वीकृति दे दी। यादें भी जिन्दगी का अवलम्ब बन जाती है!

■

मोल

एक कोने में बैठकर सब्जी काटते हुए वह बेदम प्रतीत हो रही थी। बूढ़ी की खाँसी बढ़ती जा रही थी। बाबूजी चारपाई पर बैठकर अखबार पढ़ रहे थे। अम्मा कोई ऐसी बूढ़ी नहीं थी कोई खास उम्र हो गई हो। यही कोई चौंसठ–पैंसठ साल की रहीं होगी। घर की गृहस्थी ढ़ोते–ढ़ोते जीवन के अनुभव मानो शरीर के हर अंग पर स्पष्ट प्रतीत होने लगे थे। बाल पक गये थे। शक्ल पर झुरियाँ दूर से प्रतीत होती थीं। दुबला–पतला, छरहरा बदन, उस पर एक अपाहिज टाँग।

बाबूजी को रियाटर हुए सात–आठ या उससे भी अधिक कोई दस एक साल हो गये थें उसके बाद कहीं काम–धाम ढूँढा नहीं और मजे से घर में बैठकर रिटायर्ड जिन्दगी बिता रहे थे। ऐसे भी वह जीवन–भर घर की जिम्मेदारियों से फारिग रहे। एक कुशल बीवी के चलते कभी उस ओर झाँकने का मौका नहीं मिला। सरकारी नौकरी होने के कारण आदत भी आरामतलबी की पड़ गयी थी।

कभी उनका कोई काम वक्त पर पूरा नहीं होता था तो अब्वल आसमान जरूर सिर पर उठा लेते थे। अम्मा को निजी और सार्वजनिक जीवन में अनेकानेक बार वह अपमानित कर चुके थे। अम्मा पर तो मानो कभी उनके इस व्यवहार से जूँ भी न रेंगती थी। शायद बाबूजी को झेलते–झेलते आदत–सी हो गयी थी।

उनकी दो बेटियाँ थीं, जो ब्याह दी गई थीं। बेटा मैट्रिक पास कर आई.ए. में आया था। बेटा अविनाश ट्यूशन कर जैसे ही लौटा तो माँ की खाँसी उसने देखी न गई। अम्मा को खाँसी क्या आती थी, मानों बस अब प्राण ही निकलने को होने थे।

"चलो माँ तुमको डॉक्टर को दिखा लाऊँ।" स्वर में उसके थोड़ा तल्खी थी। वह बाबू जी को सुनाकर थोड़ा सहानुभूति भी लेना चाहता था।

अखबार पढ़कर बाबूजी अब आँगन में तेज कदमों से टहल रहे थे।

"कहाँ जाने की बात हो रही है?"

"बाबूजी, माँ की खाँसी पिछले दो महीने से बराबर बनी हुई है। दवा–दारू भी नहीं कर रही है।"

बाबूजी थोड़ा रोष में बोले, "दवा–दारू से किसने रोका हुआ है। अपना ध्यान खुद ही नहीं रखती। सुबह उठकर जब देखो तब ठंडे पानी से सर धोकर नहा लेती है। यह भी कोई उम्र है, इस तरह की ठिठोली की। शरीर का ख्याल रखे। नहीं, दुनिया को तो यह दिखाने में आनन्द आता है कि कैसे पति से शादी हो गई है जो ठीक से इलाज भी नहीं करवाता, देखभाल तो दूर है। क्या मैं जानता नहीं हूँ, यह चाल, उसकी पिछले तीस बरस से झेलता आ रहा हूँ।"

अम्मा की आँखों से आँसू छलक आये।

अविनाश बोला, "अब आप तो अच्छा–खासा भाषण देने पर मानो तुल गये हैं।"

"अच्छा, अब बेटा इतना बड़ा हो गया है कि माँ के लिए बोलेगा। जो खुद ही नहीं बोला जाता, वह बेटे के मुँह से कहलवाती है।"

बाबूजी ने चाल तेज कर दी। अकेले पड़ गये थे। जवान–जहान होते बेटे से मुँह लगाना उचित नहीं था। थोड़ी देर व्यग्र रहे फिर वहीं से चिल्लाकर बोले, "ओ अविनाश की माँ चाय तो देना।"

अविनाश अपनी माँ के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर चिन्तित था।

"बाबू थोड़े पैसे दे दो।"

"पैसा! अरे पैसा कहीं पेड़ पर फलता है? रिटायरमेंट के बाद तो ऐसे ही आधा मिलता है। तुम माँ–बेटे जब देखो तब पैसे का ही रोना रोते रहते हो।"

अविनाश को भी गुस्सा आ गया, "अब बस भी कीजिए बाबूजी। मेरे पास कुछ बचत के पैसे हैं, उन्हीं से माँ को दिखा आता हूँ।"

"पैसा तो मैंने ही तुमको दिया है, वही न तुमने बचाकर रखा है। शेखी तो ऐसे बघार रहे हो मानो अपना कमाया हुआ धन हो।"

अविनाश कुछ न बोला। साइकिल बरामदे में लगाकर अन्दर चला गया।

अम्मा भी पूरे घटनाक्रम में चुप बैठ सब्जी काटती रही। बाबूजी शुरू से कंजूस और लापरवाह आदमी थे, पर रिटायरमेंट के बाद तो जैसे वह पूर्णतः ही उग्र हो गये थे, और बात–बात पर झुँझला जाना उनकी आदत में शुमार हो गया था।

अविनाश ने अम्मा से काफी मिन्नतें कीं कि चलकर दिखा लो, पर वह राजी नहीं हुई।

"कुछ नहीं हुआ है बेटा। बस थोड़ी–सी खाँसी ही तो है। फिर देख, दवा तो ले रही हूँ। कुछ दिनों में सब ठीक हो जायेगा। तू ऐसा कर यह वाली दवा लाकर दे दे। उससे आराम हो जाता है।"

बात आई–गई हो गयी। अम्मा की हालत में ज्यादा सुधार न हुआ। अब तो उनको बुखार भी रहने लगा था। पहले से काफी कमजोर भी हो गई थी। एक दिन सुबह अम्मा बिस्तर से नहीं उठी। वैसे तो भोर होते ही उनका काम–काज चालू हो जाता, मटके में पानी भरना, कपड़े धोना आदि पर आज सूरज पूर्णतः अपना साम्राज्य फैला चुका था और वह बेसुध पड़ी थी। बाबूजी को सुबह से ही चाय की तलब लगी हुई थी। आँगन में चहलकदमी कर रहे थे। चौके में कभी अम्मा ने जाने का सुअवसर न दिया था। उसमे ठहरे निरे अनाड़ी। मरता क्या न करता! बार–बार झाँक के देख जाते कि अम्मा उठी कि नहीं, फिर मन मारकर घूमने लगते।

"पता नहीं, आज क्या हो गया है तुम्हारी अम्मा को, अभी तक सोई पड़ी है। चल जरा चाय तो बना दे।"

"बाबूजी आप भी हद करते हैं। अम्मा ऐसे ही नहीं न आराम फरमा रही है। जरूर तबियत बिगड़ गयी होगी।" अविनाश भागते हुए अन्दर आया।

अम्मा के सर पर हाथ रखा तो बहुत तेज बुखार था। खाँसी पहले की तरह यथावत थी। बाबूजी से पैसे के लिए कहना व्यर्थ था। उसने अपनी दराज खोली और पैसे निकाल कर आनन–फानन में पड़ोस के डॉक्टर को ले आया।

डॉक्टर ने हर प्रकार से मुआइना किया और एक कागज पर कुछ लिखकर अविनाश को पकड़ा दिया।

"पहले यह सब टेस्ट करवा लीजिए, तब कुछ कहा जा सकता है।"

एक्सरे और खून की जाँच तो बगल के सरकारी अस्पताल में करवा लाना था। उनका नतीजा आने के बाद बाकी परीक्षण करवाना था। इस

बीच बगल वाली शीला मौसी ने घर को सँभाल लिया था। बीच–बीच में आकर माँ की भी सेवा–पानी कर जाती थी। शीला मौसी और अम्मा आगे–पीछे ब्याहकर इस मुहल्ले में आयी थीं। अम्मा के स्वभाव के कारण दोनों में घनिष्ठता काफी बढ़ गयी थी। जब शीला मौसी विधवा हुई थी, तो अम्मा ने उनको सँभाला था। आज उसी का ऋण वह अदा कर रही थी।

रिपोर्टस लेकर शाम को डॉक्टर के पास गया। देखकर डॉक्टर थोड़ी देर सकते में आ गये फिर अविनाश का चेहरा पढ़ने की कोशिश करने लगे। थोड़ी देर बाद संयत स्वर में उन्होंने कहना शुरू किया–

"बेटा जो सोचा था उससे भी भयंकर अंजाम सामने आया है। मैंने तो बहुत सोचा तो भी टी.बी. के आगे की कल्पना न कर पाया। पर एक्सरे तो ....." वह ठिठक गये। अविनाश के चेहरे पर से उन्होंने आँखें हटा लीं। सर झुकाकर बोले, "आखिरी अवस्था में...." और कमरे के गमगीन माहौल के साथ वह भी मौन साध गये।

अविनाश के ऊपर तो जैसे वज्रपात हुआ। कभी दूर–दूर तक भी उसने इस बात की कल्पना नहीं की थी कि उसकी माँ हर पल जिन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ रही है।

सकते की स्थिति से उबरने के बाद वह धीरे से पूछ पाया, ''कोई उम्मीद?''

''बस ईश्वर ही कुछ कर सकता है। नहीं तो एक महीना से अधिक का वक्त नहीं है उनके पास।''

अविनाश भारी मन से डॉक्टर के कक्ष से निकला। जी कैसा–कैसा हो गया था।

घर पहुँचा तो बाबूजी का अपना ही राग चल रहा था। माँ अपनी चारपाई पर पड़ी कुछ बुदबुदा रही थी। कमरे में जाकर माँ का हाथ पकड़कर बैठ गया। शायद बहुत कस के पकड़ा कि माँ छुड़ा नहीं पाये। माँ मे भी उसके स्पर्श से स्पन्दन हुआ।

''बेटा तू आ गया। जा, जाकर खाना खा ले। पिताजी कब से तेरे लिए परेशान घूम रहे हैं, भूखे भी हैं। अब मैंने ही न उनकी आदत बिगाड़ दी है। बच्चे–सा व्यवहार करते हैं।''

''भूख तो उन्हें बर्दाश्त नहीं। मौसी खाना पकाकर रख गयी है।....'' माँ बोले जा रही थी और वह सुने जा रहा था। आज वह माँ से ढेरों बातें कर लेना चाहता था, पता नहीं कल क्या लेकर आये।

थोड़ी देर में जब संयत हुआ तो उठकर बाबूजी के कमरे में गया।

''कहाँ था अब तक?'' कड़ककर पूछा, ''बोलो कहाँ था?''

''डॉक्टर के पास '', बड़ी मुश्किल से स्वर निकला।

''क्या बोला डॉक्टर?''

अविनाश बाबूजी की शक्ल देखने लगा। फिर बिना कुछ भूमिका बाँधे बोला, ''फेफड़े का कैंसर।'' और सर झुका लिया जैसे उससे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो।

बाबूजी शायद समझे नहीं या समझकर अनजान बने रहे, ''फेफड़े का कैंसर!'' फिर शायद अपने ही स्वर से उनकी तन्द्रा टूटी और शब्दों की गम्भीरता का ज्ञान हुआ।

''इलाज....?'' टूटे हुए स्वर में पूछा।

''कुछ नहीं आखिरी वक्त है। सिर्फ दुआ ही काम करेगी।''

शायद बीमारी की भयावहता बाबूजी के मन–स्थल में धीरे–धीरे प्रवेश कर रही थी। भारी मन से वह भी चहलकदमी करने लगे। उठकर अम्मा को छूने का साहस नहीं हो रहा था। पास ही की कुर्सी पर पूरी रात बैठे रहे।

उस दिन परिवार में किसी ने भी खाना नहीं खाया।

सुबह जब अविनाश की आँख खुली तो अम्मा सो रही थी पर बाबूजी का कहीं अता–पता नहीं था।

उठने पर माँ ने भी सबसे पहले बाबूजी के विषय में पूछा।

''बस माँ आते ही होंगे, पास ही में गये हैं.....'' अविनाश झूठ बोल गया।

अम्मा कुछ न बोली।

बाबूजी कपड़े की दुकान के बाहर बैठे हुए थे। सुबह से ही दुकान खुलने का इंतजार कर रहे थे। कल शाम से उनके अन्दर एक शून्यता ने प्रवेश कर लिया था। उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। अम्मा के साथ बिताये हुए क्षण उन्हें रह–रहकर कचोट रहे थे। वह अम्मा को कभी भी पूरा वक्त नहीं दे पाये इसकी उनको आत्मग्लानि हो रही थी।

काफी समय से अम्मा को एक साड़ी खरीदने का मन था। सुन्दर–सी भारी साड़ी। सूती धोती के सिवा वह उसको कुछ भी खरीद न पाये थे और अम्मा ने इसके आगे कभी कोई फरमाइश भी नहीं की थी। एक संतोषी सुघड़ गृहिणी की तरह वह घर के कार्यों में खुश रहती थी, पर इधर उसने पहली बार मुँह खोला था वह भी कीमती साड़ी के लिए और उन्होंने उसे झिड़क दिया था।

''अपनी औकात देखकर पैर पसारना चाहिए।'' अब जब अम्मा हमेशा के लिए चुप हो जाय, इससे पहले वह लाल चुनरी के गोटे वाली साड़ी उनको पहनाना चाहते थे। पहनाकर उसको खुश देखना चाहते थे।

जैसे ही दुकान खुली, वह साड़ी खरीदकर तेज कदमों से घर की ओर लपके। अम्माँ की जाती हुई हर साँस के साथ कदम तेज करते गये। साड़ी को काफी कस कर पकड़े हुए थे कि कहीं छूट न जाय। आज उन्हें अनुभव हुआ कि जिन्दगी के आगे बाकी सब बेमोल है। सिर्फ जीवन ही बहुमूल्य है। उधर शायद अम्मा भी आखिरी बार खाँसी थी।

■

प्रतिशोध

फिल्मों में ऐसा होता आया है, पर कभी–कभार ऐसा अपने आसपास भी घटित होता है। पास ही के सुदूर गाँव में कुछ ऐसा ही घटित हो गया, जिसकी कल्पना भी रोमांचित कर देती है। नाटकों के पात्र अचानक जीवंत हो उठते हैं और ऐसा दृश्य उत्पन्न कर देते हैं कि असंभव भी संभव हो जाता है। इन घटनाओं को हम कितनी भी अनदेखी कर लें पर हम महसूस कर लेते हैं कि जीवन ही नाट्य रूपांतर होकर वास्तविकता का मुखौटा चढ़ा लेता है और कहीं किसी कोने में छुपा हुआ हमारा मजाक उड़ा रहा होता है और हम उससे अनजान हर क्षण दूर–कहीं दूर जीवन से भाग रहे होते हैं। हमारा सम्पूर्ण जीवन ही भागने की एक लंबी कड़ी है, क्योंकि कहीं न कहीं भयाक्रान्त हम उसको जी पाने का दुस्साहस नहीं कर पाते हैं।

जीवन अनमोल है पर भावनाओं के आवेश में हम सदैव उसकी गुणवत्ता और महत्व से अनभिज्ञ रहते हैं।

शायद कथानक हमें भारी पड़ रहा है और भाषण सुनते–सुनते हम आजिज हो गये हैं, भाषण को हम बन्द फाइल में लपेटकर अलमारी में डाल देते हैं या फिर एक कान से सुन दूसरे कान से निकाल देते हैं।

ज्यादा बोर न करते हुए तथ्यों पर आ जाएँ क्योंकि शायद कहानी पढ़कर आप इसे नाटक से अधिक कुछ भी न समझेंगे और शायद अनायास मुँह से निकल जाए कि ऐसा भी कहीं होता है ! पर अभी भी यहाँ–वहाँ अक्सर ऐसा ही होता है।

पटना के बहुत ही समीप भोजपुर नाम के जिला में एक गाँव है, अभी भी वहाँ सामंती प्रवृत्ति बीच–बीच में उफान मार देती है। डोला प्रथा गाँवों में अपना अस्तित्व पूर्णरूपेण जमाए हुए है और बीच–बीच में वीभत्स रूप में अपना तांडव दिखा देती है। ऐसा ही कुछ यहाँ हुआ और कहानी बन गयी।

गाँव क्या था खंड–खंड में बँटा, इंसान को ही बाँट दो और समाज तैयार। कहीं रंग का मुद्दा उठा दे, कहीं जाति, कहीं संस्कार तो कहीं

देश का। इंसान का बँटना मजबूरी है। धर्म के ठेकेदारों ने तो पहले ही अपना प्रभुत्व जमा रखा है, बाकी रही–सही कसर अमीरी और गरीबी की महीन रेखा ने खींच रखी है। उससे भी काम न चला तो औरत को पुरुष से अलग कर दिया ओर ठठाकर जिंदगी हँस दी। इंसान एक–दूसरे के खून का प्यासा हो गया कि इंसानियत ही खो गयी और हैवानियत की चादर ओढ़कर वह गर्वित हो समाज में शान से घूमने लगा।

सदियों से ऐसा ही होता आया है, और अफसोस ऐसा ही होता रहेगा क्योंकि इंसान अपने बनाए हुए मूल्यों से स्वयं हारता है और वक्त एक चुनौती बन जवाब माँगता है।

कितना कुछ घटित हो जाता है और एक कहानी बन जाती है। ऐसा ही यहाँ भी हुआ और पूरा जीवनवृत्त एक नाटक में तब्दील हो गया।

बहू को विदा करने की तैयारी जोरों पर थी। रात की पूजा पूरी हो गयी थी। बारात विदा होने का समय होता जा रहा था। बारात क्या थी कुछ एक बड़े–बूढ़ों का जमघट था। कोई भी औरत उनके साथ ही न थी। गाँव की बारातों में ऐसा ही होता है। कुछ एक लोग ट्रैक्टर में बैठकर शादी में आ गये थे। उसी में बहू विदा होनी थी। हरदयाल की पत्नी बन रूपा नया रूप पा गयी हो पर माँ–बाप से बिछुड़ने का गम भी कुछ कम तीखा न था। सखी–सहेलियाँ सब हमेशा के लिए बिछुड़ जायेंगी। उसका तो रो–रोकर बुरा हाल था। वधू पक्ष में सब गमगीन थे। उदासी का माहौल पसरा पड़ा था। वधू पक्ष विदाई को 'थोड़ी देर और' कर के टाले जा रहा था पर बाराती हड़बड़ी में थे।

"अरे भाई थोड़ा जल्दी करो। नहीं तो गाँव पहुँचते–पहुँचते रात हो जायेगी। रास्ता भी ठीक नहीं है।" और थोड़ा बेचैन होकर सब बाहर घूम रहे थे। पिछली बार राधेश्याम की बारात का दृश्य अभी तक सबकी आँखों के सामने कल की घटना बन घूम रहा था। एक अजीब–सी सिहरन सबके शरीर में फैलती जा रही थी।

उचित मुहूर्त देखकर बारात निकली। रो–रोकर रूपा का हाल बेहाल था। पर जैसे–जैसे डोली उसके घर से दूर जाती जा रही थी वैसे–वैसे दुख रोमांच में तब्दील हो रहा था। गाँव की सीमा पार करते–करते सबका चित्त थोड़ा हल्का हुआ। एक तो इतने मर्दों के बीच में उसका यात्रा करना, उसे थोड़ा अजीब महसूस हो रहा था, पति भी तो उसके लिए अनजान ही

था। उसकी सूरत उसने विवाह मंडप में पहली बार देखी थी। और उसका आकर्षक चितवन उसके मन को मोह गया था। ऊबड़–खाबड़ रास्तों को पार करते हुए ट्रैक्टर राफ्ता–राफ्ता चला जा रहा था। बड़े–बूढ़ों को बहू लाने से अधिक, गाँव सकुशल पहुँचने की दुश्चिन्ता मन में सता रही थी।। घर पहुँचने के पहले रास्ते में ऊँची जाति वालों का टोला पड़ता था। सेठ की हवेली के सामने से बारात को होकर गुजरना था। गाँव में किसी को भी कानों–कान इस विवाह की ख़बर नहीं थी। हरदयाल शहर में नौकरी करता था। यही बात सब तरफ फैलायी गई थी। गाँव आया था तो पिता ने शादी की बात कर दी। आनन–फानन में विवाह हो गया। अब बहू के दुरागमन का भी वक्त आ गया था।

जैसे–जैसे गाँव नजदीक आ रहा था सबके होंठ सिल गये थे। कोई किसी से कुछ भी न बोल रहा था। आँखों ही आँखों में सारी बातें मानो हो जा रही थीं पर होनी को कौन टाल सकता है, वही हुआ जिसका अंदेशा सबको था। सेठ के घर के समीप दो मुस्टंडों ने गाड़ी को रोक लिया। हाथों में बड़े–बड़े लट्ठ थे। कमर में चाकू घुसा हुआ था। देखते ही देखते इस तरफ से भी लट्ठ निकल आये। दोनों पार्टी भिड़ गयीं। बारात में एक–दो घायल हुए। बाराती सिर पर पाँव रखकर भाग गये। हरदयाल भी भाग पाने में सफल हो गया। बहू की डोली को उठाकर सेठ की कोठी के अन्दर प्रवेश करा दिया गया। रूपा ने पहला कदम बड़ी हवेली में रखा।

बहुत पहले की बात है जब हरदयाल छोरा हुआ करता था। कोई दस–बार साल का रहा होगा। पिता के साथ दिन भर खेतों में काम करता था। रात को चैन की बंसी बजा चारपाई पर औंधे पड़ जाता था। अच्छी नींद आती थी। दुनिया की चिन्ता न थी। आज के भरोसे सब चल रहा था, कल का ठिकाना न था पर जिंदगी इज्जत से बीत रही थी। एक दिन ऐसे ही खेत में काम कर रहा था कि सेठ के आदमी आ सामने खड़े हो गये।

"तुम्हारा बापू कहाँ है?"

हरदयाल ने एक निगाह उसके ऊपर डाली। फिर अपने काम में व्यस्त हो गया। जूतों की खड़खड़ उसके ज्यादा पास आकर रुक गयी। लाठी की एक मार उसके कंधों पर पड़ी और वह पीछे की तरफ झुक गया।

"शायद जोश ज्यादा आ गया है या हिम्मत ज्यादा बढ़ गयी है जो ऐसे तेवर दिखा रहे हो। कहाँ है तुम्हारा बाप। बताते हो कि जान से जाओगे।"

हरदयाल की आँखों में खून उतर आया। मन किया कि सीधा उठे और उसकी जान ले ले। पर अपनी औकात देख चुप रहा। वह दोनों लठबाज डरा–धमकाकर लौट पड़े। एकबारगी वह उठा और उनको मारने के लिए उनके पीछे फिर खड़ा रह गया। उसकी निम्न जाति उसके रास्ते की रुकावट बन गयी।

शाम को जब बापू से बात हुई तो सेठ के आदमियों की सारी बात उसने बताई। थोड़ा रोष भी जताया, "तुम क्यों उनसे मुँह लगाते हो। अपनी उम्र और औकात देखकर बात करो। नहीं तो तुम भी डूबोगे और मुझे भी डुबाओगे।" फिर चिन्ता की साँस खींचते हुए बोला, "क्यों आये थे?"

"स्पष्ट कारण तो नहीं बताया पर शायद कुछ जमीन के बकाये की बात कर रहे थे।" फिर बापू के घुटनों के बीच सर रखकर बोला, "बापू, ये बात क्या है। वह बार–बार क्यों आते हैं?"

हरदयाल के पिता कुछ देर चुप रहे फिर गहरी सोच के बाद बोले, "बेटा मेरी जमीन बंधक है। तुम्हारी दोनों बड़ी बहनों की शादी के वक्त जब पैसे की जरूरत पड़ी तो सेठजी से कुछ पैसा कर्ज के तौर पर लिया था, जो अब तक नहीं चुका पाया हूँ। इसीलिए यह खेत तब तक उनके पास हैं, जब तक हम कर्ज की रकम सूद सहित वापस नहीं कर देते हैं।" फिर दुखी होता हुआ बोला, "बेटा तब तक खेत के साथ हम सब बंधक हैं। हमारी साँसें भी सेठ की गुलाम हैं। वह जब चाहे बंद कर दे।"

हरदयाल के तन–बदन में जैसे आग लग गयी। "हमको जब ईश्वर ने स्वतंत्र बनाया है तो वह कौन होते हैं बंधक बनाने वाले। मैं उनको देख लूँगा।" बेटे के तेवर देखकर पिता थोड़ा सहम गये। सदियों से चली जा रही परंपरा को चुनौती देने की हिम्मत का अंजाम वह जानता था। दमन–निरंकुश हो जीने के लिए उसके बेटे को कौन छोड़ेगा। उनकी व्यवस्था ही टिकी थी प्रहार पर। शासक अगर गरम न हो तो उसकी बात कौन मानेगा। और उसका दिल दहल उठा। अपने बेटे का मुँह देख उसे अपने भाग्य पर रोना आ गया।

रात को अभी बाप बेटे भोजन करके आराम करने की तैयारी कर ही रहे थे कि दरवाजे पर ठक–ठक हुई।

"कोई है।" एक कड़कदार आवाज सुनाई दी। काँपते हुए बूढ़े ने दरवाजा खोला–"कौन?"

"पूछते हो कौन! सुबह खेत पर आकर बुला गये थे उसके बाद भी इतनी हिम्मत कि सेठजी के दर पर माथा टेकने नहीं आये।"

"बस आ रहा था हुजूर। बाहर चला गया था। अभी लौटा हूँ। बेटे ने आते ही बताया बस भोजन करके हुजूर आने ही वाला था। गलती हो गई साहब।" वह काँपने लगा। पिता को इस तरह कमजोर पड़ता देख हरदयाल का खून खौल उठा। उसके पिता को कोई कमजोर समझे, सताये उसकी इतनी हिम्मत–पिता की ताकत तो वह है। वह एक–एक का मुँह नोच लेगा। उसके अन्दर प्रतिशोध धधकने लगा। उसका मन किया कि वह आगे बढ़कर उनका मुँह नोच ले पर वह सिर्फ थूक निगलकर पिता के साथ हो लिया।

सेठजी बड़ी हवेली के दीवानखाने में बैठे मुजरा देख रहे थे। आम बात थी। पुरखों का रिवाज तोड़ पाने का उन्हे कोई विशेष शौक न था। बाप–बेटा दोनों उस अश्लील प्रदर्शन का अनायास हिस्सा बन बैठे थे। हरदयाल तो रह–रहकर घृणा से सेठ की ओर घूरता, फिर जमीन को ताकने लगता।

भौंडा प्रदर्शन पूरा हुआ। हरदयाल के पिता की पेशी सेठजी के सामने हुई। भगवान् स्वरूप सेठजी ऊँची जाति और खानदान के ऊँचे पाये पर बैठे ईश्वर सदृश ही प्रतीत होते थे। ईश्वर तो रहमदिल है पर सेठ.....तौबा।

"क्यों धनपत राय। कुछ ज्यादा ही गरमी चढ़ रही है।" बहुत ही नरम स्वर में पूछा गया प्रश्न भी मानो बकरी को हलाल करने के पहले की–सी स्थिति के समान था।

"नहीं सेठजी...। मैं यहाँ न था।" वह काँपने लगा।

"यहाँ नहीं थे तो कहाँ थे।" फिर वही मीठी आवाज। सेठजी धीरे–धीरे सोफे की मूठ को सहला रहे थे।

"जी...जी...। बेटी को ....बच्चा हुआ है, वहीं गया था।" उसका हलक सूखने लगा।

"बेटी का बच्चा!" आवाज में व्यंग्य था। उसको सुन उसके लगघे बगघे हँसने लगे। "और यहाँ जो हमारे खेतों में ढ़ेर काम पड़ा है उसको कौन करेगा तुम्हारा बाप।" और सेठजी को क्रोध आने लगा। "हिम्मत तुम लोगों की अब काफी बढ़ गयी है। अवज्ञा का अंजाम जानते हो।"

धनपत ने दौड़कर सेठजी के पैर पकड़ लिए। "क्षमा हुजूर क्षमा।"

सेठजी क्षमा–वमा के मिजाज में नहीं थे। "खोल दो धोती। गरम–गरम लोहे से दाग दो जाँघ।" और हरदयाल के देखते ही देखते उसके पिता की जाँघों को दागते देख उसका खून खौलने लगा। क्रोध में लोहे की छड़ हाथ में पकड़ सेठ के चेहरे से चिपका दिया। इससे पहले कि सेठ सँभल पाते वह भाग खड़ा हुआ। सेठ के आदमी भाग कर सेठ को सँभालने लगे। इस हड़बड़ में किसी का भी ध्यान हरदयाल पर न गया। वह बेतहाशा जंगल की तरफ भागा जा रहा था। मौत उसका पीछा कर रही थी ओर वह जिन्दगी की मोहलत चाह रहा था। हरदयाल का पिता बेहोश हो गया।

रात की तीव्रता थी जंगल में, गहनता बिल्कुल हरदयाल के जीवन की तरफ तीखी और तल्ख और अंधकार की तरह गहरी। उसे खुद होश न था कि वह किस दिशा में आगे चलता जा रहा है। जीवन कभी–कभी दिशाहीन हो जाता है। हवा के झोंके उसे जिधर मोड़ना चाहें मोड़ दें उसको तो आगे मौत दिख रही थी और पीछे भी। मौत से लड़ना और चुनौती देना ज्यादा महत्वपूर्ण होता है न कि उसके गले लगाकर वरण करना, क्योंकि मौत को हराकर जो जिन्दगी मिलती है उसमें तो पूरा जीवन का रहस्य छिपा रहता है। मौत तो पराजित होकर लजाती हैं, जीवन उससे कहीं ज्यादा कीमती है।

हरदयाल अदृश्य शेर और चीतों के बीच बढ़ता गया। जंगल में भी अब कहाँ शेर कहाँ चीते। मनुष्यों के बढ़ते कदम ने काफी प्राणियों को धरा की छाँव से विलोपित कर दिया है। हर तरफ ही मनुष्य। हरदयाल बेहोश होकर गिर पड़ा। वह कितनी देर बेसुध पड़ा रहा इसका उसको भी ज्ञात न था। जब होश आया तो कुछ युवकों को कानाफूसी करते हुए पाया।

जंगल गहरा था। सन्नाटा और अंधकार और भी गहरा। शेर और चीते से भरे जंगल में सिर्फ गीदड़ों की आवाज सुनाई पड़ रही थी। धीरे–धीरे मशालों का हुजूम और पास आ गया। हरदयाल को लगा कि अब गया कि तब। अंधकार इतना गहरा कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था और उसी में सिर्फ मशालों की रोशनी का प्रकाश चेहरे पर पड़ रहा था। युवक मजबूत कदकाठी के गठीले बदन के थे। उनका जत्था एक गाँव की तरफ आगे बढ़ रहा था।

"कौन है।" एक कड़कदार आवाज ने उसका स्वागत किया। आवाज में इतनी बेरूखी और तल्खी थी कि उसके पूरे शरीर में सिहरन दौड़ गयी।

हिम्मत करके बोल पाया–"जी हरदयाल।"

हरदयाल ने किसी तरह हिम्मत बटोरकर अपनी पूरी कहानी सुनाने में सक्षम हो गया।

उस नेता टाइप आदमी की आँखों में खून उतर आया। हरदयाल एक कदम पीछे हटकर आँख बंद करके मौत का इंतजार करने लगा। इसी क्रम में उसने ईश्वर का स्मरण भी करना शुरू कर दिया। जब काफी देर तक कुछ न हुआ तो उसने धीरे से आँख खोली, नेता का चेहरा डरावना प्रतीत हो रहा था। उसकी पकड़ अपने तमंचे पर कसी हुई थी। शायद अपनी भावनाओं को बटोरकर नियंत्रित करने का प्रयास कर रहा था।

एक भद्दी–सी गाली से उसने अपना भाषण शुरू किया–"क्या समझ रखा है इन ठेकेदारों ने। अब भी हम लोगों को इतना सता लेंगे.....साले कहीं के। ऐसी खबर लेंगे कि जीवन–पर्यन्त होश ठिकाने लगा रहेगा।" वह भद्दा क्रोधवश बोलता रहा। क्रोध में उसका शरीर काँप रहा था। हरदयाल भी डर के मारे काँपने लगा। किसी बड़ी अनहोनी की आशंका में उसका कलेजा मुँह को आ गया। हिम्मत बटोरकर पूछा–"क्या मैं घर जा सकता हूँ।"

बाद में हरदयाल को पता चला कि उस आदमी का नाम सम्पत था ने चीखते हुए कहा–

"घर.....! कायरों के घर। शोषितों के घर। गुलामों के घर। अरे ऐसे घर जाकर क्या करोगे? हिम्मत है तो आओ अपने बाप–दादाओं की यन्त्रणा का बदला लो। इज्जत की मौत गुलामी की जिन्दगी से लाख गुना बेहतर है। अरे, वहाँ रहकर जीवन–भर घास काटते रहोगे। हमारे साथ रहोगे तो संघर्ष कर अपने लिए एक नया जीवन बनाओगे। सोच लो फिर बोलो।"

हरदयाल जमीन की तरफ देखता रहा। रह–रहकर पिता का चेहरा, उनका अपमान, आक्रोश बन उसके अन्दर फूटने लगा। वह जोर से चीखा–"नहीं मेरे पिता का सर अब नहीं झुकेगा। मैं उनको अब अपमानित जीवन नहीं जीने दूँगा। मैं लडूँगा तब तक जब तक अपना हक नहीं पा लूँगा। बोलिए क्या काम करना होगा।"

सम्पत हँस पड़ा–"पता चल जायेगा।" और बहुत जल्दी ही उसको भी पता चल गया।

सामने लाशों का ढेर लगा हुआ था। बड़े थे, बूढ़े थे। एक आध बच्चे भी थे। सम्पत के लोगों ने पूरे गाँव के अन्दर प्रवेश किया था। एक वर्ण

विशेष, को मारकर चलता बना था। सोते हुए लोगों को सुलाने में ज्यादा वक्त नहीं लगा था। हरदयाल की समझ में नहीं आया कि जिन लोगों को मारा गया था उनकी गलती क्या थी। शायद किसी जाति का होना था, तो भी वह सब बेबस उसकी तरह ही गरीब थे। पर वह यह प्रश्न सम्पत से न पूछ पाया। कुसूरवार तो कोई और था, फिर सजा इन निरीह को क्यों? पर उसने सम्पत से इतना जरूर पूछा–

"बाबा मैं वापस जाना चाहता हूँ.....जाऊँ! इतना खून देखकर मन डर गया है।"

संपत बाबा उसको देखते रहे फिर पास बुलाकर बोले, "बेटा इतिहास गवाह है बड़े–बड़े युद्ध, बड़ी–बड़ी क्रांतियाँ बिना खून के क्या कभी पूरी हुई हैं। आज तुमने कत्ल किया है कल तो तुमको भी अपने खून का बलिदान करना पड़ सकता है। ये मत भूलो, तुम पूरी कौम की आजादी की लड़ाई लड़ रहे हो। तुम्हारी वीरता पर हम सबकी स्वतंत्रता टिकी है। कायरों की तरह से बात नहीं करो।" फिर थोड़ा सोचकर बोले, "तू तब भी जाना चाहे तो जा सकते हो पर मत भूलो तुम्हारा प्रतिशोध अभी पूरा नहीं हुआ है।"

हरदयाल के सामने उन औरतों का बिलखना घूम गया, जिन्होंने अपना पति खोया था। उन माताओं का रूदन जो अपने बेटे की अर्थी पर गश खा–खाकर गिरी जा रही थीं। उसकी अपनी माँ का चेहरा आँखों के सामने घूम गया। कितने प्यार से वह भोजन बना उसको खिलाती थी। बीमार पड़ने पर वह उसकी देखभाल करती थी। वह माँ को याद कर रोने लगा। उसके कदम अनायास ही माँ की तरफ बढ़ गये। वह इस संघर्ष को नहीं झेल पायेगा। उसके अन्तर्मन ने उसको धिक्कारा। किन भावनाओं में वह बह गया। भूल गया पिता का संघर्ष, कौम का संघर्ष, अपना संघर्ष। तू भगोड़ा कहलायेगा, भगोड़ा.....। और वह अन्दर से आती हुई आवाजों से भागने लगा। वह भाग रहा था अनजान राहों पर, पर वह भागते–भागते फिर सम्पत बाबा के चरणों में गिर पड़ा।

"बाबा मैं लडूँगा। आजादी की लड़ाई लडूँगा। इन्कलाब जिन्दाबाद। सेठ–साहूकार मुर्दाबाद।"

और सम्पत ने उसको गले से लगा लिया।

सम्पत बाबा बूढ़े हो चले थे और हरदयाल जवान। किसी भी क्रांति को नौजवानों के खून की आवश्यकता होती है। लिहाजन, हरदयाल बाबा की

जगह लेता गया। बाबा के साथ क्रांति भी बूढ़ी हो रही थी। वह पहले–सा जज्बा अब कहाँ था। धीरे–धीरे समूह में संगठन और धन दोनों ही आने लगे थे। धन उद्देश्य को कमजोर करता है और वही हुआ जो धन के आने से होता है। इस क्रांति के नेता अमीर हो गये और कार्यकर्त्ता फटी बनियान में मात्र सेवक। हरदयाल की जीवन शैली में भी काफी फर्क आने लगा था। गाँव में उसका दबदबा काफी बढ़ गया। कच्ची–मिट्टी का मकान पक्का हो गया। जीवन के स्तर में भी सुधार आ गया। कार्यकर्ताओं को जब भी फुर्सत मिलती उसके खेतों पर भी आकर काम कर लेते थे। अब तो खेत भी बंधक से छूट गये थे।

एक दिन हरदयाल गाँव में मोटरसाइकिल से जा रहा था। रास्ते में उसकी भेंट साहूकार की बेटी से हो गयी और हरदयाल उसके रूप–लावण्य पर मोहित हो गया। वापस जाकर अपने विश्वासी हीरा से बोल, "साली बहुत ही सुन्दर है। किसकी बेटी है।"

"साबजी साहूकार की।"

"जा उठा ला।"

"साबजी.....।" हीरा आगे कुछ कहना चाहता था पर.....।

और कार्यकर्ताओं में असंतोष बढ़ गया।

धन और प्रतिष्ठा अपने साथ दर्प लाती है और गुणों का ह्रास। धन के मद को पचा पाना कठिन हो जाता है। और वही हुआ। हरदयाल अपने मार्ग से भटक गया। वह जिन सेठों से उनके अवगुणों के कारण चुनौती के लिए खड़ा हुआ था उसी पाताल में स्वयं गिर गया और उसके खिलाफ असंतोष प्रबल हो गया। शीर्षस्थ के डर से कोई भी मुकाबला कर पाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा थां पर गुपचुप ढंग से उनके बीच ही एक नेता तैयार हो रहा था जो नेतृत्व की क्षमता रखता था। वह सही मौके की तलाश में था और आज मानो सही मौका आ ही गया। सेठ के साथ मिलकर उसने हरदयाल की पत्नी की डोली सेठ के यहाँ उतरवा ली। हरदयाल क्रोध और अपमान की ज्वाला में धधक उठा और दूसरे दिन सेठ के यहाँ अपने लाव–लश्कर के साथ धावा बोल दिया। काफी खून–खराब हुआ। चूँकि सेठ के आदमी इसके लिए तैयार थे अतः हार हरदयाल की हुई और वह मारा गया।

नेता जिसका नाम मंटू था मृतकों के सीने पर तांडव कर रहा था। यह उसकी जीत थी। अब वह जातिगत लड़ाई का शीर्षस्थ नेता था।

"हरदयाल की पत्नी का क्या करें?" सेठ ने पूछा।

"अरे कुड़ी है, वही करो जो कुड़ी के साथ करते हैं।" रूपा का रूप–सौन्दर्य छिन्न–भिन्न हो गया। वह स्त्रीत्व की लड़ाई हार गई।

वक्त यूँ ही चलता रहता है। संघर्ष होता रहता है। इंसान लड़ाई स्वयं से ही हारता है और बाजी वक्त ले जाता है। आज भी हम अपनी जाति का दंभ भर रहे है। सदियों की परंपरा यूँ नहीं टूटती।

■

प्रोफेशनल

इस देश की तबियत विचित्र है। यहाँ पुलिस का अर्थ भगवान् से लगाया जाता है, पुलिस कप्तान तो अपने–आप को विष्णु के अवतार से कम नहीं ही आँकते हैं। अब जैसे विष्णुजी चाहकर भी समस्त प्राणियों के कष्ट नहीं हर सकते तो उनके बनाये इंसानों की क्या मजाल जो वह समस्त लोगों की दुख–तकलीफ सुनकर उसका तुरन्त निदान दे दें! अरे भाई लोगों को समझना चाहिए कि भगवान् से ऊपर किसी की कल्पना करना भी कोरी मूर्खता है। राम–राम! कितना पाप लगेगा! हमारा देश ठहरा अत्यन्त धर्मपरायण देश, तभी तो इस देश में ईश्वर के नाम पर बड़े–बड़े कत्लेआम हो जाते हैं।

लेकिन पुलिस तो पुलिस है। सर्वोपरि, अविनाशी, अप्रतिम, महिमामंडित, आनन्ददाता, दुखहर्ता!! अरे–अरे, रहम करना, वह तो सर्वज्ञाता भी है। कहीं पर कुछ भी बुरा होने वाला हो इसकी खबर पुलिस को रहती है, जैसे ईश्वर को भी सारी घटनाओं की खबर रहती है, अब यदि ईश्वर कई बार कुछ नहीं कर पाता तो भला पुलिस कैसे कर पायेगी।

हाँ, पर हमारे देश की पुलिस को भूतकाल में किसने क्या किया और भविष्य में कौन क्या करेगा सबका इल्म रहता है।

भगवान्–पुलिस और उसके भक्त की एक कथा याद आ रही है। शायद कहीं सुनी थी।

राजेन्द्र नगर कॉलोनी में एक दादा है, नाम है मुख्तार सिंह। बड़ी–बड़ी मूँछें उससे भी बड़ी आँखें। चेहरे पर चेचक के दाग, ले–देकर छोटा–मोटा डरावना चेहरा। मूँछों को पिलाने और घना बनाने में काफी तेल चाहिए, इसके लिए पैसा तो चाहिए ही। दिन बीत जाता था कसरत करने में, अब बची रात। बिन पैसे जिन्दगी बेकार है, यह उसको पता था। समय कितना मूल्यवान है इसका उसको पूरा–पूरा ज्ञान था। इसी लिए दिन का सदुपयोग वह गाढ़ी कमाई उगाहने में करता था। जिन लोगों ने गाढ़ा कमा–कमाकर

रखा है और रात में निद्रा देवी की गोद में खर्राटा भरकर सोते हैं तो भला उस धन की सुरक्षा कौन कर पाएगा। दीवाली के दिन भी तो रात–भर पहरा देना होता है तब जाकर लक्ष्मी मैया की कृपा होती है। लक्ष्मीजी का तो वाहन भी उल्लू है ठेठ निशाचर, उसको तो रात में ही दिखता है। अगर लक्ष्मी को रात में सुरक्षा की जरूरत न पड़ती तो वह काहे ऐसा वाहन चुनतीं। वह ठहरी चंचला–एक जगह ज्यादा मन नहीं लगता है।

वह इन्सान जिसके यहाँ लक्ष्मी आ जाती है वह, यह भूल जाता है कि कितना योग्य वाहन लक्ष्मीजी को प्राप्त है। अगर मूड किया तो रात में भी चल दे सकता हैं।

मुख्तार सिंह रात में लक्ष्मीजी को ढूँढने में व्यतीत करता और दिन में वह कांटेक्ट बढ़ाता। वह बड़े–बड़े लोग से गप्पें लगाता और मित्रता बढ़ाता। कांटेक्ट का जमाना था, पता नहीं कब कौन काम आ जाय। इसीलिए मुख्तार सिंह बड़े–बड़े लोगों से संपर्क रखता था। उसी में से एक उस इलाके का दारोगा था। था तो अक्खड़ और मुँहफट, थोड़ा–थोड़ा सिरफिरा भी पर इन सबसे क्या फर्क पड़ता है, आदमी काफी काम का ही था। इधर मुख्तार सिंह का बिजनेस मंदा चल रहा था, आमदनी भी ठीक–ठाक नहीं थी। इलाके में सभी सतर्क हो गये थे, कुछ एक ने तो कुत्ते–बिल्ली पाल लिए।

इनमें कुत्ते तो काफी इफेक्टिव थे घर की पहरेदारी में, पर बिल्ली थोड़ा भारी थी। घर की रखवाली में जीरो, उलटे चोरी से दूध भी पी जाती थी। एक दिन दारोगा ने आकर पूछा, "क्या मुख्तार दिन भर पड़े–पड़े खाट तोड़ते रहोगे यार।"

"क्या करें साब! कुछ समझ में नहीं आ रहा। इधर तो हफ्ता से ही काम चलाना पड़ रहा है। कहीं चोरी करने का मौका ही नहीं हाथ आ रहा।"

"अरे हाउस नं. सात का चौकीदार कल ही तो आकर कह रहा था कि उसके साहब परसों शादी में गये थे, बहू का काफी सारा जेवर लॉकर से निकालकर ले गये थे अभी तक अन्दर नहीं रखा है। हाथ साफ कर दो, मोटा आदमी है। कुछ दिन ऐश से कट जायेंगे।"

मुख्तार सिंह को लगा कि दारोगा अच्छा दोस्त है। दोस्त हो तो ऐसा जो बुरे वक्त में काम आये, वर्ना बेकार।

"आज रात ही तैयारियाँ कर लेते हैं।"

"हाँ, मैंने चौकीदार से सब पता कर लिया है। सेठ दुकान से शाम को कोई आठ–नौ बजे आता है। घर में सिर्फ दो औरतें और एक छोटा बच्चा रहता है।"

"यह रहा घर का नक्शा।" दारोगा बोला।

"आप तो साब बड़े काम के हैं। मैं भी बाई और दूध वाले से बात कर लूँगा। आप निश्चिन्त रहें, सब हो जायेगा। इस काम में मेरा पन्द्रह साल का अनुभव है।"

दारोगा मूँछों पर ताव देता हुआ चला गया और मुख्तार सिंह काम में लग गया।

गीता का श्लोक है, 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' काम की तैयारी वह जी–तोड़ से कर रहा था। दिन–भर रिसर्च किया गया। मकान का अन्दर–बाहर से अध्ययन किया गया।

शाम होते–होते मुख्तार सिंह के दो–तीन परम मित्र भी इस काम के लिए तैयार हो गये। हर चीज, जैसे रस्सी, कट्टा, ओपनर सबकी तैयारी कर ली गयी। जैसी जरूरत पड़ी वही करने का निश्चय लिया गया। अगर एक–आध को हलाल भी करना पड़े तो कोई बड़ी बात नहीं। वैसे मुख्तार सिंह ने अभी तक कोई खून–खराबा नहीं किया था पर उसको करने में हिचकिचाहट नहीं थी। इतनी जनसंख्या में अगर उसके योगदान से दो–चार खल्लास भी हो जायें तो देश का भला ही होगा। जनसंख्या नियंत्रण में वह कुछ मदद कर पायेंगे।

अँधेरा घिरते–घिरते वे लोग गंतव्य पर पहुँचे। बाहर गाड़ी नहीं खड़ी थी और एक मोटा–सा ताला लटका हुआ था। उसको समझते देर नहीं लगी कि सब लोग कहीं बाहर गये हुए हैं। चलो, अच्छा हुआ काम आसान हो गया। वैसे मुख्तार का शरीर जरूर हाथी–सा था पर दिल चुहिया से ज्यादा बडा नहीं था। वह तो जीवित चुहिया से भी डरता था। किसी तरीके से ऊपर से कूद–फाँदकर घर के अन्दर पहुँच गया। इस पहुँचने के क्रम में एक दरवाजा भी शहीद हो गया, ज्यादा मजबूत नहीं था, शायद मकान मालिक अदूरदर्शी थे और किसी भी इस तरीके के हादसे के लिए समुचित मोर्चाबंदी नहीं कर पाये थे।

जो कमरा बहू का था उसके ताले को कट्टे से तोड़ा गया। अन्दर पहुँचने पर नजारा काफी उत्साहवर्धक था, शायद हनुमानजी की मनौती

काम कर रही थी। उसने हनुमानजी को भी सवा किलो लड्डू खिलाने का वायदा किया था। हनुमानजी का परम भक्त था वह, तो ऐसा वक्त में संकटमोचन की कृपा होना अनिवार्य था।

अलमारी खुली हुई थी। कपड़े अस्त–व्यस्त पलंग पर पड़े हुए थे। उसे सास पर बहुत गुस्सा आया कि बहू को जरा भी नहीं डाँटती है, कुछ भी सऊर नहीं सिखाया है, ऐसी फूहड़ बहू का क्या काम?

एकाएक उसकी बुद्धि जागी। वह यहाँ शिक्षा या प्रवचन देने नहीं आया है। वह तो धर्म के कार्य से आया है, जो काला धन सेठ ने तिजोरी के अन्दर भरा है उसको कुछ हल्का करने। आखिकरार टैक्स देने के कानून को तो इनको पालन करना था। टैक्स नहीं दिया, अब पछताएँ।

यही सब सोचते–सोचते वह तिजोरी के पास पहुँच गया। तिजोरी की चाबी पास की खूँटी पर लटकी हुई थी। तिजोरी खोली, सामने का नजारा देखकर तो उसकी हृदय गति रुकते–रुकते बची, वैसे रुक भी जाती तो कोई बड़ी बात नहीं थी। इतना जेवरात देखकर तो बड़े–बड़े बेहोश हो जाते। अब दो–चार महीने उसको काम करने की जरूरत नहीं पड़ेगी, लम्बा हाथ साफ किया था।

सब–कुछ आसानी से बटोरकर वह बाहर आया। इसी बीच उसके कान में मेन गेट खुलने की आवाज आयी, लगता है मकान मालिक आ गया। वह छत से दूसरे घर में कूद गया।

बहू ने घर के अन्दर कदम रखा तो अपने घर का हाल देख चिल्लाई, 'माँ मेरे कमरे की लाईट जल रही है।" उसका दिल अब कुछ धक्–धक् करने लगा। वह भाग के अपने कमरे में गयी और तिजोरी का नजारा देख गश खाकर गिर गयी।

उसके मुँह से बस इतनी–सी चीख निकली 'माँ' और आवाज गले में अटक गयी।

सास दौड़ी–दौड़ी आयी। बहू का जेवर चला गया यह सोचकर पहले–पहल तो थोड़ी स्त्री–जन्य प्रसन्नता हुई।

चलो अच्छा हुआ–सब बहू का था। बड़ा घमण्ड था न उन जेवरों पर, चोर ले गये। कितना समझाया कि दिखावेबाजी कम कर, पर माने तब न!

फिर अफसोस हो आया। आखिर है तो मेरी ही बहू। उसका नुकसान मेरा भी तो नुकसान है।

हिम्मत करके पुलिस को फोन लगाया। उधर पुलिस का फोन टनटनाया। कड़कती आवाज आयी, "कौन, यह पुलिस स्टेशन हैं खामख्वाह लोग परेशान कर देते हैं।"

दारोगा फोन रखने ही वाला था कि आवाज आयी, "सर, मेरे घर में चोरी हो गयी है।"

"तो?"

"रपट लिखवानी थी।"

"पहले नहीं लिखवा सकती थीं। अब जब चोरी हो गयी तो हमारा वक्त बरबाद कर रही हो। चोर है कि भाग गया?"

"अगर चोर होता सर तो आपको फोन ही क्यों करते? काफी जेवर लेकर भाग गया है।"

"ओ अच्छा, पता।"

पता सुनते ही दरोगा की बाँछें खिल उठीं। मन ही मन सोचा, चलो काम ठीक से हो गया। मुख्तार सिंह भी भाग गया।"

"हम अभी पहुँचते हैं।"

इस बीच में बहू को भी होश आ गया। वह बाहर दौड़ी हुई गई और 'चोर–चोर' चिल्लाने लगी।

उसकी आवाज सुनकर पूरा मुहल्ला इकट्ठा हो गया। मदद के लिए तो कोई आगे नहीं आया, पर अब सबके सब मजा ले रहे थे। इतनी मसालेदार घटना हो गयी थी कि उन्हें महीनों तक बात करने का शीर्षक मिल गया।

इसी बीच कोई आधा घण्टा विलंब से पुलिस आ गई, साथ में दो बड़े–बड़े कुत्ते थे। आते ही दारोगाजी के कड़े निर्देश शुरू हो गये–किसी चीज को हाथ नहीं लगाना। सब बाहर खड़े हो जायें। इसी बीच उसकी पारखी निगाह हर उस चीज पर जा रही थी कि कहीं मुख्तार सिंह कोई सुराग तो नहीं छोड़ गया है। जब वह सब तरफ से निश्चिन्त हो गया तो आराम से उसने कार्रवाई शुरू कर दी। एक–एक चीज को डण्डा चलाकर ठोंका। वह तो गनीमत थी कि डण्डा धीरे से चला नहीं तो इतने भारी नुकसान के बाद दो–चार चींजे और टूटतीं। बहू की सास अपने को दिलासा दे रही थी कि शुक्र है जो गया सो गया, अब उसके आगे कुछ न टूटे।

अनुसंधान कार्य तेजी से चल रहा था! खोजी कुत्ते अन्दर घूम–घूमकर चीजें सूँघ रहे थे। अब पता नहीं, वह खाने को सूँघकर भौंक रहे थे या फिर उनको सोफे के नीचे कोई चूहा नजर आ गया था जिसको पकड़ने की फिराक में थे। ये अच्छे–खासे तन्दुरूस्त कुत्ते थे, माशा अल्लाह, क्या कदकाठी से ईश्वर ने उनको नवाजा था। दो–चार आदमियों का तो खाना वह इकट्ठे ही खा जाते थे। उनको देखकर अच्छे–अच्छे आदमी की सिट्टी–पिट्टी गुम हो जाती थी, पर चोरों को कोई फर्क नहीं पड़ता था। पड़े भी कैसे, कुत्ते तो अच्छे–खासे कद्रदान प्राणी हैं, जिसका खाते हैं उसी का बजाते हैं। अब चोरों की कमाई खायेंगे तो प्यार से तो उनके लिए दुम हिलायेंगे ही!

जब दारोगाजी काफी घूम–फिर लिए, हर चीज को टटोल लिया और उन्हें यकीन हो गया कि लोगों को अच्छे तरीके से बेवकूफ बना लिया है तथा अब तक मुख्तार सिंह इलाके से भाग गया होगा तो बोले–

"चोर कोई बड़ा शातिर आदमी था। रपट लिखवा दीजिए, पर चिन्ता मत कीजिए, बचके कहाँ जायेगा, साला पकड़ा जायेगा, जेल में चक्की पीसेगा तब अक्ल आयेगी, साले चोरी करते हैं।"

खानापूर्ति करके दारोगाजी बाहर निकले साथ में दोनों बुलडॉग भी थे। दारोगाजी गाड़ी में बैठे, सबने उनको घेर लिया। दारोगाजी को लगा कि इतनी भीड़ तो नेताजी के आगे–पीछे रहती है। उनको अपना कद थोड़ा और ऊँचा लगा। सबको समझा–बुझाकर गाड़ी में बैठ गये।

मालकिन से बोले "आप निश्चित रहें। चोर बच के जाने नहीं पायेगा। अपने आपको ज्यादा स्मार्ट समझता है। बीच–बीच में मिलते रहियेगा और अगर आपको किसी पर शक जा रहा हो तो जरूर बताइएगा। हमें खोजबीन में मदद मिलेगी।"

दुआ–सलाम करके गाड़ी आगे बढ़ गयी।

थाने में गाड़ी पहुँची तो सारे सिपाही को उतार दिया दारोगाजी ने, "जरा मैं रात में गश्ती कर लूँ। शायद कुछ सुराग लगे। यह केस स्टेशन–डायरी में लिख दो, मैं आकर देख लूँगा।"

"जी सर।"

दारोगाजी ने गाड़ी गली के कोने की तरफ मोड़ दी। भगवान चल पड़े भक्त के द्वार। मुख्तार सिंह के अड्डे पर सन्नाटा था। दारोगा का दिल धड़का।

मन में ख्याल आया कि कहीं इतना बड़ा हाथ मारकर नीयत तो नहीं खराब हो गई। नहीं, ऐसा नहीं होगा। आदमी तो ईमानदार है। चोरी करता है तो क्या, पर ईमान का ठीक है। निगाह में गैरत है। फिर भाग के जायेगा कहाँ। आगे भी तो जरूरत पड़ेगी। पास पहुँचकर मुख्तार सिंह को देखकर उनकी साँस में साँस आयी। वह खटिया पर बेसुध पड़ा था। लगता है ज्यादा चढ़ा ली थी। वैसे भी धन और मदिरा का नशा होता ही ऐसा है जो इन्सान की सुध–बुध खत्म करके अपने ही आगोश में ले लेता है और इंसान बाहरी दुनिया से कट जाता है, रह जाती है सिर्फ पिपासा–धन और सिर्फ धन की। दरोगा जी भी टेबल पर पड़ी हुई बची कुची गट्क गये। लंबा हाथ मारा था। रात तो अभी बाकी थी।

■

सफर

स्टेशन पर आकर गाड़ी रुकी। सब तरफ अफरा–तफरी–सी मच गयी। कुछ लोग गाड़ी में चढ़ रहे हैं, कुछ उतर रहे हैं। किसी को अपने रिश्तेदारों से मिलने की खुशी तो किसी को बिछुड़ने का गम। अनजान चेहरे, अनजान राहें, पर उनको बाँधती थी एक डोर, यह ट्रेन। शायद कुछ–कुछ हमारी जिन्दगी–सी, जिसमें अनजान लोग किस तरह इस सफर में साथ हो लेते हैं और किस तरह बिछुड़ जाते हैं, कभी न मिलने के लिए।

एक वृद्ध सज्जन, अब वृद्ध भी क्या कहेंगे, पर अधेड़ तो जरूर प्रतीत होता था, बदन से तो उम्र ज्यादा महसूस नहीं हो रही थी, पर चेहरा जरूर उम्रदराज था। गरीबी का सबसे दुखद पहलू है कि वह भूख को उम्र, शरीर और चेहरे पर ले आती है।

उसकी आँखों में एक सूनापन आकर ठहर गया था। अब उसकी आँखें किसी को ढूँढ नहीं रही थीं, न ही कोई उसको ढूँढ रहा था। पर इस शहर से वह अपरिचित न था।

ट्रेन से उतरकर वह एक खंभे से सटकर बैठ गया। अपने बगल में उसने एक मैला–कुचैला–सा बैग रख दिया। कहीं जाने की उसको हड़बड़ी नहीं थी। पर वह इस शहर में कुछ सोच के आया था। किसी से मिलने आया था।

हाँ यह शहर तो उसका अपना था। उसके अपने यहाँ रहते थे। उसके बेहद अपने, उसके बीवी और बच्चे और वह भी तो उन्हीं से मिलने आया था। क्या वह उनसे मिल पाएगा? वह थक गया था, जिन्दगी की आपाधापी से टूट गया था। एक हताश इन्सान क्या किसी का पिता या पति हो सकता है! इस सोच में एक अकेलापन था, एक ठहराव था और उससे भी अधिक एक निस्तब्धता, एक शून्यता। वह सबसे मिलके चला जाएगा।

बचपन उसका कितना अच्छा था। कष्ट थे, आर्थिक तंगी थी पर सपने थे। उन सपनों को पूरा करने की ललक थी। एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार

में उसका जन्म हुआ था। वह पाँच भाई–बहनों में सबसे बड़ा था। उसके पीछे चार बहनें थी। पिता एक मामूली–सी प्राइवेट फर्म में क्लर्क थे।

स्वप्न रहित एक सीधी–सपाट जिन्दगी जिसमें खुशियाँ कभी–कभी ही हौले–हौले दस्तक देती थीं पर दुख तो सहोदर की तरह हमेशा गले ही लगाए रहता था। बड़ा होने के नाते उसने अक्सर इस दर्द को बड़ी शिद्दत से महसूस किया था।

उसकी माँ अक्सर बीमार रहती थीं। दमा था, क्योंकि जब कभी वह बेदम होतीं तो कई दिनों तक बिस्तर पकड़ लेतीं। उसके पिता ज्यादातर ऑफिस में ही व्यस्त रहते थे। प्राइवेट फर्म में जितना पैसा न था, उससे अधिक काम था। वे बेचारे सीधे–सादे आदमी। कोई भी यार–दोस्त अपना काम उनके ऊपर डालकर ऐश करता था।

उसने घर का सारा काम बड़े अच्छे से सँभाल लिया था। सँभाल क्या लिया था सँभालना पड़ गया था क्योंकि जब जिन्दगी में मजबूरी सिर पर आती है तो अपने को हालात के अनुरूप ढालना पड़ता है, हालात हमारे अनुरूप नहीं ढलते। कुछ बखूबी सँभाल लेते हैं और कुछ उनसे लड़ते ही रह जाते हैं। खैर उसने उफ् तक न की।

स्कूल और घर के बीच में पिसते हुए उसने एक सपना देखा था और वह था फोटोग्राफर बनने का। उसके घर के पास ही फोटोग्राफर रहते थे और उसके पिता के हमउम्र थे पर जब से उसने उनके पास जाना शुरू किया था तब से उन दोनों में अच्छी घनिष्ठता हो गयी थी। वह खाली वक्त में उनके लैब में भाग जाता और उनसे फोटोग्राफी के गुण सीखता। शायद उन रंगीन फोटोग्राफ के माध्यम से वह दूसरों की रंगीन जिंदगी को जी लेना चाहता था। वह कैमरे में बंद कर लेना चाहता था जो भी हो उसने वीराने में एक सपना पाल लिया था।

धीरे–धीरे उम्र भी बीतती गयी और जिम्मेदारियाँ भी बढ़ती गयीं। जिम्मेदारियों के कारण उसने शौक को ताक पर रखकर नौकरी की तलाश शुरू की । अब मनचाही जगह पर नौकरी तो मिलती नहीं, तो उसका एक परिचित उसको उड़ीसा ले गया। वहाँ एक सीमेन्ट फैक्ट्री में मजदूर की नौकरी मिल गयी। अपने मित्र की चॉल में ही वह रहने लगा। क्योंकि इससे ज्यादा जगह का इंतजाम वह अपने लिए जिन्दगी में कभी कर भी नहीं पाया। जो पैसे होते थे उनको वह पूरा–का–पूरा घर भेज देता था। और

अपने खाने–खर्चे के लिए वह शाम को एक होटल में वेटर का काम करता था। कुछ पैसे भी हो जाते थे और कम–से–कम एक टाइम भरपेट भोजन। पूरे दिन की फाकामस्ती वह शाम को भूल जाता था। रात ढ़लते–ढ़लते वह सब–कुछ भूल निद्रा के आगोश में डूब जाता था। सारे सपने उस नींद के साथ ही स्याह रंग अख्तियार कर लेते थे।

कब उसकी शादी हुई और कब बच्चे ये सोचने की फुर्सत भी उसको न मिली। बीवी को कहाँ उड़ीसा ले जाकर रखता। वहाँ तो उसके अपने लिए जगह नहीं थी। यहाँ कम–से–कम माँ के पास सिर छुपाने के लिए छोटा ही सही पर इज्जतदार आशियाँ तो था। बीच–बीच में छुट्टी मिलने पर वह घर आ जाता था, अपनों के बीच।

वक्त तो एक रफ्तार से भागता चला जाता है। रुकता नहीं। रुकती तो हमारी जिन्दगी है। वह थम जाती है, वक्त आगे बढ़ जाता है। कुछ ऐसा ही उसके साथ हुआ। कब बचपन बीता होश ही न रहा। कब जवानी के दिन बीतने लगे पता न चला। पता तो तब चला जब बेटा थोड़ा बड़ा हो गया। इस बार वह काफी खुश घर पहुँचा था। दिवाली पर बोनस मिला था। पहली बार उसने अपने परिवार के लिए कपड़े लिए थे। बहनों की जिम्मेदारियों से भी वह इसी साल फारिग हुआ था।

जब वह घर पहुँचा तो बेटा घर पर न था। बीवी को तेज बुखार था। उसकी दवा लाने गया था। छोटी बेटी जो कि करीब दस साल की थी, खाना पका रही थी। अम्मा दूसरे पाटे पर बैठकर सब्जी काट रही थीं।

''क्या हुआ सावित्री।'' अपनी पत्नी को उस हालत में देखकर अन्दर का सारा प्यार उमड़ आया।

''क्या बताये, पिछले तीन दिनों से काफी तेज बुखार है। उतरने का नाम ही नहीं ले रहा है। बिट्टू सामने वाले डॉक्टर से पूछकर दवा लाने गया है।'' अम्मा ने कहा।

वह अपनी बीवी के बगल में बैठकर उसका हाथ पकड़ सहलाने लगा। शायद सारा प्यार ही वह उड़ेल देना चाहता था। वह उसको कैसे बता पाता कि इतना दूर रहकर वह कैसे अपने परिवार को याद करता है। शायद अपनी घुटन वह अपने शब्दों में कभी व्यक्त ही नहीं कर सकता। उसको अपने नसीब के ऊपर कोफ्त हुई। कितना मजबूर है वह। चाहकर भी वह साथ में आकर नहीं रह सकता। पति के प्यार भरे एहसास से उसकी पत्नी

ने धीरे से आँखें बन्द कर लीं। पति के आँखों से दो बड़े–बड़े आँसू पत्नी के माथे पर गिरे। उसने जल्दी से घबराहट में उनको पोंछ दिया।

तभी उसका बेटा दवा लेकर आ गया।

''आ गए बेटा..... लाओ मैं दवा पिला दूँ।'' पर बेटा तो जैसे बाप को देखकर भड़क ही उठा।

''खबरदार, जो मेरी माँ को हाथ लगाया।'' एकदम से उसके हाथ वापस हट गए। बिट्टू दौड़ कर अपनी माँ के पास गया।

''माँ ...माँ आँखें खोलो, माँ। मैं दवा ले आया हूँ, माँ...।''

धीरे से अपनी माँ को उठाकर उसने दवा पिला दी, और उसके सिरहाने बैठ गया। उसकी पूरी कोशिश थी कि वह पिता को माँ के करीब भी न आने दे।

वह धीरे से उठकर कपड़े बदलने चला गया। जब कपड़े बदलकर आया उसकी अम्मा ने उसके आगे चाय और नाश्ता रख दिया। बिट्टू का व्यवहार उसको अन्दर तक आहत कर गया। वह सब–कुछ तो इनके लिए ही कर रहा था। उससे बेहतर होता है जब अपने दूर रहते हैं, तो उनसे मिलने की ख्वाहिश में ही दिन कट जाते थे–एक उम्मीद रहती थी... पर यहाँ तो अपनों में ही वह अकेला था। लोग उसको बेगाना समझने लगे थे।

अम्मा ने ही बात उठायी, ''पिछले तीन दिन से बिट्टू अपनी माँ के पास ही बैठा है। स्कूल भी नहीं गया। माँ को भी काम पर जाने नहीं दिया। माँ का हाथ पकड़कर बार–बार यही कहता रहा– माँ तुम दुखी मत हो। मै हूँ न। इधर सावित्री तुमको काफी याद भी कर रही थी। अब तुम आ गए हो तो वह जल्दी ही ठीक हो जाएगी।''

उसको बेहद आत्मग्लानि का बोध हुआ। शायद चोर को भी इतना गहरा बोध नहीं होता होगा जितना कि उसको हुआ। हाँ, वह अपराधी है। अपने परिवार का अपराधी है। उनकी तकलीफों का वह अपराधी है। खाना छोड़ कर वह बीच में ही उठ गया और कमरे से बाहर आ गया।

उसकी माँ पीछे से उसको आवाज देती रहीं–''बेटा खाना तो खा ले, इतनी दूर से आया है। भूखा मत जा। गुस्सा मत हो।''

नहीं, वह गुस्सा नहीं था। वह अकेला था। बेहद अकेला। वह इन गलियों में कहीं खो जाना चाहता था। वह अपने परिवार की ठीक से

देखभाल नहीं कर पा रहा था। वह गुनहगार था। उसकी आत्मा पर मानों मनों टन पत्थर पड़ गया था। वह घर से दूर जाकर उसको फेंक आना चाहता था। उसको भय था उस पत्थर को परिवार के लोग देख न लें। वह दिनभर ऐसे ही घूमता रहा। कभी–कभी अपने ऊपर क्रोध आ जाता तो सड़क पर पड़े हुए किसी निरीह पत्थर को कस कर लात मार देता था और उल्टे खुद ही चोट खा जाता।

अँधेरा होने पर उसे घर जाने का होश आया। शायद अन्धकार गुनाहों को काफी हद तक हल्का कर देता है। रात की कालिमा सब–कुछ अपने अन्दर समेट लेती है।

घर पहुँचा तो हाय–तौबा मची हुई थी। सब उसको लेकर चिन्तित हो रहे थे। माँ तो बाहर दहलीज पर ही खड़ी बेटे की लम्बी उम्र की दुआएँ पढ़ रही थीं।

''कहाँ चला गया था, रे! तुम्हें हमारा भी ख्याल नहीं आया।''

वह कहना चाहता था कि खयाल ही तो आया था माँ जो शायद कहीं नहीं गया। इतनों को बेसहारा छोड़कर वह कहाँ जा सकता था। सब उसकी जिम्मेदारी जो हैं। वह कहीं दूर बहुत दूर चले जाना चाहता था पर हिम्मत नहीं कर पाया। शायद प्राणान्त कर पाने की भी शक्ति उसमें न थी।

बीवी की तबीयत में काफी सुधार हुआ था। उसको देखते ही उसकी आँखों में चमक आ गयी। यही चमक तो उसको अपने परिवार के पास खींच लाती थी।

वह एक हफ्ता रहा पर उसका बेटा उसके पास एक मिनट के लिए भी नहीं आया। एक दिन वह अपने परिवार को लेकर मेला चला गया पर बेटा पढ़ाई का बहाना करके घर में ही रह गया। मेले में वह अपनी पत्नी को सब–कुछ दिला देना चाहता था। बेटे के लिए भी उसने एक बाँसुरी खरीदी और एक माउथ ऑर्गन।

जब उसकी बीवी सुबह काम पर चली जाती थी और बेटा स्कूल, तो वह सामने फोटोग्राफर की दुकान पर जाकर बैठ जाता था।

''तुम अब वापस क्यों नहीं आ जाते।'' एक दिन उसके फोटोग्राफर मित्र ने पूछा।

''कैसे आऊँ! फिर वहाँ नौकरी है। अब तो मैं परमानेन्ट भी हो गया हूँ।

यहाँ आकर नये सिरे से अपने को स्थापित कर पाना शायद अब संभव नहीं है। फिर तुम ही बताओ इस उम्र में मैं आकर करूँगा ही क्या?''

''हाँ ये तो है। अब तुम्हारा बेटा तुम्हारी कमी को काफी महसूस करता है।''

''जानता हूँ'' वह उदास हो गया।

फोटोग्राफर मित्र उसका मूड भाँप गया। बात पलटता हुआ बोला, '' बहुत ही मेधावी है। पढ़ने की तो उत्कृष्ट लालसा है। जब बिजली नहीं होती है तो पास के लैम्पपोस्ट के नीचे पढ़ता है। पढ़ाई में भी अव्वल आता है। अभी परसों ही तो पैसे माँगने आया था तो कह रहा था चाचा देखना मैं बड़े होकर अपनी माँ को यूँ सबके यहाँ काम पर नहीं जाने दूँगा। कभी–कभी तो माँ पिताजी को याद कर घण्टों रोती है। तुम सबको बहुत याद करता है। बहुत नेक लड़का है।''

वह सिर्फ हूँ–हाँ ही करता रहा। क्या वह चाहता था कि उसकी पत्नी काम करे? क्या वह परिवार के साथ नहीं रहना चाहता था ? वह किससे कहे।

चलने वाले दिन बहुत सुबह ही उसकी गाड़ी थी। बेटा अभी सो ही रहा था। वह धीरे से उसके पास गया। काफी देर प्यार से उसका हाथ पकड़े खड़ा रहा। फिर हौले से उसको सहलाकार उसके पास बाँसुरी और माउथ ऑर्गन रख दिया। वह इतने हौले से जाना चाहता था कि बेटे की नींद न खुले पर शायद वह जगा हुआ था।

उसने धीरे से आँख खोलकर पिता को जाते हुए देखा। वह भागकर उनसे लिपट जाना चाहता था। कहना चाहता था कि पिताजी हम लोगों को अकेला छोड़ कर मत जाओ, जिन्दगी से डर लगता है। नहीं, वह कमजोर नहीं पड़ेगा। वह अब बड़ा हो गया है। और अब बहादुर भी। वह उनको नहीं रोकेगा। जाना है तो जायें। जब उन्हे हमारी परवाह नहीं तो हम क्यूँ करें।

पिताजी के जाने के बाद उसने बाँसुरी और माउथ ऑर्गन बैग में रख लिया। वह अपने स्कूल में बच्चों को दिखाएगा कि उसके पिताजी उसको दिलाकर गये हैं। स्कूल में बच्चे अक्सर चिढ़ाते थे। वह उनके जैसा अच्छा पेन्सिल बॉक्स या टिफिन लेकर नहीं आ पाता था। वह हमेशा अपमानित महसूस करता था। दो–चार बार तो प्रिंसिपल ने बुलाकर उसका नाम काटने की धमकी भी दी क्योंकि फीस वक्त पर जमा नहीं हो पाती थी।

तब उसे कितनी घृणा होती, उस पिता से जो इन सबसे लापरवाह अपनी जिन्दगी में खोए हैं। तब माँ से ही पैसा लेकर फीस चुकानी पड़ती थी। अक्सर माँ को कहा भी कि वह किसी दूसरे स्कूल में पढ़ लेगा पर माँ कभी मानने के लिए तैयार न हुई।

''बेटा मेरा एक ही सपना है कि तू बहुत बड़ा आदमी बने। तेरी ऊचाईयाँ मेरी अपनी जिन्दगी के नीचेपन को ढक देंगी। मैं उनको पाकर अपना समस्त दुख–दर्द भूल जाऊँगी।''

और वह दोस्तों के सारे अपमान भूल, मेहनत करने में लग जाता। एक दिन वह माँ को वह स्थान देगा जहाँ लोग उसकी माँ की तरफ सम्मान से देखें।

वक्त बीतने पर एक दिन अचानक माँ दर्द से तड़पती रही। माँ का कष्ट देखकर उसको अपने पिता के ऊपर बेहद क्रोध आ रहा था। माँ को क्या कष्ट है यह उसकी दादी उसको बता भी नहीं रही थी। माँ काम पर भी नहीं गयी थी। न माँ चिन्तित दिख रही थी और न ही उसकी दादी। वह बार–बार बोला कि मैं डॉक्टर को ले आता हूँ। पर उसकी दादी ने डाँटकर भगा दिया। वह फोटोग्राफर चाचा के यहाँ गया। वही जानते होंगे कि माँ को क्या हुआ। वह काफी देर उसको बहलाते रहे फिर बोले तुमको भाई आनेवाला है। तभी मुनिया ने आकर खबर दी।

''भइया दादी बुला रही हैं। बहन आयी है।'' उसने चाचा की तरफ देखा। चाचा कितना झूठ बोलते हैं। अभी तो बोल रहे थे कि भाई आने वाला है पर यहाँ तो बहन है। उसे अपनी बहन से नफरत हो गयी। उसकी तो सिर्फ एक ही बहन है मुनिया, बाकी कोई नहीं। वह मुनिया का हाथ पकड़कर माँ के पास भागा।

माँ आराम कर रही थी। अब उसको इतनी तकलीफ नहीं थी। उसकी बगल में एक छोटी–सी बच्ची लेटी हुई थी। दादी और माँ दोनों ही खुश नहीं थी।

दादी बोलीं, ''उसको फोन करवा दिया है। वह आकर भी क्या करेगा। कौन–सा बेटा जना है तूने जो वह भागा–भागा आये। अरे जब औलाद करनी ही थी तो जान के करती कि बेटा हो।''

माँ चुपचाप आँखें बंद किए सुने जा रही थी। आखिर उससे कोई भारी गलती तो हुई ही है। क्यों लेकर आयी वह एक और बहन को ? वह

उसको नहीं रखेगा। माँ ने उसे अपने पास सुलाया, ''देख बिट्टू गुड़िया, तुम्हारे और मुनिया के खेलने के लिए। इसको प्यार करेगा न ? ''और वह चाहकर भी कुछ न कर पाया। उसके पिता न आये, यह बात उसको बेहद अखरी। शायद अपने पिता की कमी के अहसास को वह कहीं गहरे तक और काफी शिद्दत से महसूस करता था। असमय ही वह बहुत बड़ा हो गया था। जिन्दगी बहुत तेज रफ्तार से भागती गई और जैसे–जैसे वह भाग रही थी दूरियाँ भी बढ़ती चली गयीं।

बिट्टू अब बड़ा हो गया था। मेहनती और मेधावी तो था ही किस्मत ने भी साथ दिया।

''माँ देखो मुझे कलकत्ता में नौकरी मिल गई है।''

''बहुत अच्छा बेटा!'' वह माँ के चेहरे पर असीम खुशी देखना चाहता था।

''माँ मुझे दिवाली से पहले वहाँ ज्वाइन करना है। कम्पनी की तरफ से फ्लैट मिलेगा। अब तुम्हें काम करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम मेरे साथ चलकर रहोगी।''

जो शब्द सावित्री अपने पति के मुँह से सुनना चाहती थी आज उसका बेटा कह रहा था। बेटे के घर में जाकर रहने का सपना शायद सावित्री ने कभी देखा ही नहीं था। वह तो हमेशा से यही चाहती थी कि उसका पति एक बार ही सही उसे, उसके अपने घर में ले जाये। उन की गृहस्थी हो। वह अपने विचारों को बुनती जा रही थी और बिट्टू बोले जा रहा था।

''माँ तैयारी कर लो हमें जल्दी ही चलना होगा। ''

''पर बेटा मेरा काम...।'' वह बहुत कुछ बेटे को बोलना चाहती थी। आज उसके लिए सबसे खुशी का दिन था। उसका एकलौता बेटा जिन्दगी में एक मुकाम पर पहुँच गया था। एक मुकाम जिसके लिए उसने और बेटे ने जीतोड़ मेहनत की थी। शायद उस मुकाम पर पहुँचकर भी वह अकेली थी। उसका साथ देने वाला साथी बेखबर दूर उनके लिए सिर्फ पैसे मात्र भेज रहा था। वह भी पूरे घर की जरूरत को पूरा नहीं कर पाते थे। उसे घर से बाहर जाकर दूसरों के घरों का चौका–बरतन करके घर को चलाना पड़ता था।

एक बेटी की शादी उसने अपने बलबूते पर की। नहीं, सहसा उसे अहसास हुआ कि वास्तव में वह थक गयी थी। वह अब और नहीं सह

सकती। अब और मेहनत नहीं कर सकती। शरीर के साथ–साथ उसका मन भी टूट गया था। वह जायेगी, बिट्टू के साथ जायेगी और जिन्दगी का नया सपना बुनेगी। वह अपनी जिन्दगी से ऊब गयी थी। शायद वह था तो उसका पति पर क्या...नहीं...हाँ... उसको उससे कोई प्यार नहीं था। पर नफरत भी नहीं थी। ''बिट्टू पिता को खबर कर देना हम जा रहे हैं।''

बिट्टू ने सुनकर भी अनसुनी कर दी। नयी जिन्दगी की शुरुआत में उनकी क्या जरूरत थी।

उसको स्टेशन पर पहुँचाने वाली ट्रेन अब रफ्तार पकड़ स्टेशन को छोड़ रही थी। ट्रेन के रूकते ही जो कोलाहल था अब धीरे–धीरे थम रहा था। सभी यात्री अपने गंतव्य के लिए बढ़ चले थे। वही शायद अकेला रह गया था।

उसको एक आदमी ने हिलाया। ''लो बाबा खाना खा लो।''

वह वाकई भूखा था। आँखों से जिन्दगी की चमक जाती रही थी। बढ़ी हुई दाढ़ी, मैले–कुचैले कपड़े। खाना लेकर वह धीरे–धीरे खाने लगा। भूख की क्षुधा को वह धीरे–धीरे शान्त करना चाहता था।

कोई अमीर, भिखमंगों को खाना बाँटकर पुण्य कमा लेना चाहता था।

पेट की आग शान्त कर वह उठा। उसकी ट्रेन जा चुकी थी। निगाहों से ओझल हो गयी थी। उसी पटरी पर दूसरी ट्रेन आने वाली थी। उससे फिर कुछ अनजान चेहरे उतरेंगे, अनजान चढ़ेंगे। यह सिलसिला तो चलता ही रहेगा, अनवरत।

घर पहुँचा तो बड़ा–सा ताला लटका हुआ था।

वह भागा–भागा फोटोग्राफर दोस्त के पास पहुँचा। शायद इतनी तेजी से वह पिछले कई दिनों में नहीं भागा था।

''कहाँ गये सब ?''

''अरे तुम्हें नहीं पता ? सब तो कलकत्ता चले गये।''

''चले गये....।''

''मुझे छोड़कर.....क्यों ?''

और वह चेहरे को ढाँपकर सिसकियाँ ले रोने लगा।

''अच्छा उठो! रो नहीं... मुझे बिट्टू पता देकर गया है। मैं ढूँढता हूँ।''

वह सिर पकड़े बैठा रहा और रोता रहा। फोटोग्राफर दोस्त ने अलमारी से पुराना एलबम निकाला। ''यह देखो तुम्हारे परिवार का फोटो।''

वह उसको लेकर घूर–घूरकर देखता रहा। हाँ उसका पूरा परिवार फ्रेम के अन्दर कैद था। वह फिर सिसक पड़ा।

बड़ी मुश्किल से बिट्टू का पता मिला। एक दराज में मुड़ा–तुड़ा पड़ा हुआ था।

''लो तुम्हारे बेटे का पता मिल गया।''

उसने ऐसे झपट के पकड़ा जैसे कोई खजाना मिल गया था।

''दोस्त एक मदद और कर दो।''

''बोलो!''

''यह मेरे ऊपर तुम्हारा उपकार रहेगा।'' बुझी हुई आवाज में बोला। आवाज भी एक गहरे कुएँ से आती प्रतीत हो रही थी।

''उपकार, अरे दोस्त बोलते हो और उपकार की बात करते हो। बोलो मैं तुम्हारे किस काम आ सकूँ।''

''बस कलकत्ता का टिकट कटा दो और दो–तीन सौ रुपये दे दो। पचास–सौ रुपए मेरी जेब में हैं। मैं अपने बेटा और बीबी को ढूँढने जाऊँगा। बेटे को समझाऊँगा कि उड़ीसा में मैं खुश नहीं था। मैं भी अकेला था। इन्हीं लोगों के लिए मेहनत कर रहा था। यहाँ तो पूरा परिवार साथ था दुख–दर्द बाँटने के लिए, वहाँ तो मैं बिल्कुल अकेला था।'' उसकी आँखे शून्य में कुछ खोजने लगीं। आवाज भर्रा गयी। अकेलेपन की त्रासदी और अपनों से बिछुड़ने का गम उसकी आवाज में स्पष्ट आ गया।

''और अगर वे न मिले तो...।'' दोस्त नहीं चाहते हुए भी पूछ बैठा।

वह काफी देर तक फोटो को देखता रहा फिर बोला, ''मैं वापस उड़ीसा चला जाऊँगा। मेरी नौकरी है।–एक छोटी–सी चाल है। रामू मेरा पुराना साथी जिसके साथ मैं शुरू से रहता हूँ। उसी के पास चला जाऊँगा। और कौन है मेरा।'' और बात करते–करते वह खो गया।

स्टेशन पर काफी भीड़ थी। अनजान चेहरे अनजान जिन्दगियाँ, अनजान मुलाकातें। इन सबके बीच वह दुबककर बैठ गया। ऐसे भी उसको अपने आप पर और अपने कपड़ों पर शर्म आ रही थी। टिकट को उसने कसके पकड़ा हुआ था। एक उड़ती–उड़ती निगाह उसने शहर की तरफ

डाली। उचाट–सी निगाह में खामोशी और उदासी थी। अचानक आँसू ढलके मानो उसके अन्तर्मन के दुख को बहा ले जाना चाहते थे, पर अन्दर की पीड़ा को उसने बड़े हुनर से सहेजकर समेट लिया।

वह यह शहर हमेशा के लिए छोड़कर जा रहा था। यहाँ का घर अब उसके पीछे छूट गया था। शहर से क्या मोह जब कोई अपना वहाँ न हो। वह जरूर अपनी बीवी को खोजेगा। उसको समझाएगा। अपने साथ लेकर आयेगा।

ट्रेन ने सीटी दी। उसका अतीत पीछे छूटता जा रहा था। ट्रेन धीरे–धीरे आगे बढ़ती जा रही थी। कल फिर यहाँ से यही ट्रेन गुजरेगी पर वह न होगा।

ट्रेन मजार के सामने से गुजरी। फकीर बैठा गा रहा था–

''तमाम उम्र ही बीती खाक छानने में, दुख तो तब हुआ जब खाक भी न मिली।''

उसकी आँखों से बड़े–बड़े आँसू ढुलक आए। वह उस जज्बात को न थाम पाया। लोग पीछे छूटते गये। शहर पीछे छूटता गया। जिन्दगी ही थी जो अपनी रफ्तार से आगे बढ़ती गयी। वक्त बीतता गया और थके–हारे इंसान की तरह वह हताश उसे अपने हाथ से फिसलते हुए महसूस करता गया। मानो कहीं चुपके से उसका हाथ खाली हो रहा था और एक मुट्ठी रेत उसमें से सरककर कहीं दूर, बहुत दूर गिरकर अनन्त में विलीन हो गयी थी।

■

हँसी

सुबह–सुबह विद्यालय में विद्यार्थी असेंबली में हिस्सा ले रहे थे। नये जमाने के बच्चे थे, नये जमाने की तहजीब सीखते–सीखते वह एक नये रंग में रँग गये थे। पूरी की पूरी सभा में किस्म–किस्म के बच्चे और सामने स्टेज पर एक अजीबोगरीब शारीरिक प्रशिक्षक जो बच्चों को हँसने का प्रशिक्षण दे रहे थे।

''और जोर से मुँह खोलो, मुँह को गोल–गोल करो, अब होंठ को पूरा कान तक खींचने का अभ्यास करो और पिक, अब हँसी निकली की तब...''

सारे बच्चे सुबह–सुबह योगाभ्यास में हँसने का प्रयास कर रहे थे। हँसी को उनकी जिन्दगी का एक अहम् हिस्सा बनाने का प्रयास किया जा रहा था।

तभी पीछे से एक शिक्षक ने आकर एक बच्चे को धौल जमायी, ''क्या तुम हँसना भी भूल गये हो ? या तुम्हें हँसना आता ही नहीं है। अरे, कुछ हँसी की घटना याद करके हँसने की कोशिश करो। तुम सब भी कितना बुड़बक हो कि हँसना तक नहीं जानता। अरे चलना सीख लिया, बोलना सीख लिया, और तो और झूठ बोलना सीख लिया, पर हँसना, क्या अब हँसना भी सिखाना पड़ेगा।'' जोर का एक धौल पीठ पर जमाकर वह शिक्षक आगे बढ़ गया। उस अबोध बालक ने अपने दिमाग पर जोर डालना शुरू किया। हाँ वह हँसता था और मुस्कराता भी तो था पर.... कैसे और कब... यह उसको ठीक–ठीक याद नहीं आ रहा। शायद जब तक माँ का आँचल उसके सिर पर था, तब तक अपना खिलखिलाना उसको याद है। पर माँ के जाने के बाद एकाध बार सूनी आँखों से उसने पिता का मन टटोलने की कोशिश की थी पर पिता की कठोर आँखें उसका उत्साह शून्य कर गई। अब एक नया मंथन उस बालक के मन को मथने लगा। हँसने के नाम पर उसकी आँखें डबडबा गई। नीर से भरा हुआ मेघ सहज फटने के लिए तैयार हो गया। उस नीर से भरे काले बादल को फटने के लिए किसी

प्रलोभन या मनोयोग की जरूरत नहीं होती। वह तो बस अनायास उस बालक के नयनों से बरस पड़ता है।

माँ, नानी के यहाँ गई है। इतना उसको पता था। स्कूल में एकाध बार माँ ने फोन करने की कोशिश की थी। इन्चार्ज मेम ने उसको अपने चेम्बर में बुलाकर माँ से बात भी करायी थी।

''बेटा, तुम्हारी माँ का फोन है। बात कर लो।'' और आँखों के कोरों से गिरते हुए पानी को हाथ से पोंछकर उसने फोन का चोंगा अपने हाथ में पकड़ लिया।

''माँ, तुम कब आओगी। तुम्हारी बहुत याद आ रही है।''

उधर से कुछ वार्तालाप हुआ और सन्नी ने कस के फोन के तार को हिलाया।

''नहीं माँ, दीदी चाची के पास है। हाँ, पापा दीदी को वहीं छोड़ आये थे।'' फिर उधर से कुछ संवाद हुआ।

''माँ, पापा मुझे बहुत डाँटते हैं। आज तो टिफिन भी नहीं दिया। और बोर्डिंग में भेजने की बात कर रहे हैं। तुम कब आओगी ? माँ कब आओगी, जल्दी आ जाओ।'' माँ से जल्दी आने का आश्वासन पाकर उसने फोन रख दिया। फोन के कटने के साथ ही वह समझ गया कि वह आवाज जो उसकी माँ की थी और काले बदनुमा फोन के चोंगे से आ रही थी, शायद अब हमेशा के लिए खामोश हो गयी है। उसने पापा को दादी से कहते सुना था कि 'इस औरत को जो गलती से उसकी पत्नी है, को तो मैं सबक सिखाकर ही रहूँगा। बहुत बनती है। औरतों को ऐसा रूप मन को नहीं भाता। बहुत गरूर है उसको अपने रूप पर। धूल न चटा दी तो देखना, जाये अपने मायके और रहे।' और दादी को उसने जोर से ठठाकर हँसते देखा था। वही विद्रूप हँसी। 'नहीं वह ऐसे नहीं हँस सकता' उसकी माँ उससे दूर हो गयी थी और दादी हैं कि हँस रही हैं। 'क्या लोगों को इन्हीं बातों पर हँसी आती है।' अब उसकी पौटी कौन धुलायेगा, उसे गर्म–गर्म खाना कौन खिलायेगा ? दादी से एक बार पौटी धुलाने के लिए कहा था तो उन्होंने कैसे झिड़क दिया था, फिर दीदी को मदद करनी पड़ी थी। अब तो दीदी को भी पापा ने चाची के यहाँ भेज दिया है। अब क्या होगा! ये सोचकर उसको रूलाई आने लगी थी। दादी उसका रोना देखकर भी हँसती हैं।

उसने छुप–छुपकर दादी को तैयार होते देखा है। इस उम्र में बाल सबके सब सफेद हो गये हैं पर देखो कैसे मेंहदी लगाकर घूमती हैं। सबके बीच में ऐसे बैठती हैं और जरा भी शर्म नहीं आती क्या ? माँ का तो हाथों में मेंहदी लगाना भी उन्हें पसंद नहीं था। वह कैसे माँ को डाँटती–फटकारती रहती थीं। गर्म–गर्म चिमटा से उसने दादी को माँ की पीठ जलाते हुए देखा था।

''अरे कलमुँही, हाथों में मेंहदी लगाने का ऐसा ही शौक था तो अपने साथ एक दाई लेती आती। खुद महारानी–सी बनी बैठी रहती हो और मैं क्या तुम्हारी नौकरानी हूँ जो दिनभर काम करती रहूँ। तुम्हारा तो दिनभर श्रृंगार–पिटार में वक्त बीतता है, काम कौन करेगा, तुम्हारा बाप।'' और उसकी दादी ने कस के माँ की पीठ पर जलता चिमटा दाग दिया। उस दिन माँ खूब रोई थी और दादी खूब हँसी थीं। माँ के आँसू पोंछता हुआ वह भी उसके पहलू में बैठ खूब रोया था।

''हाँ उसको दादी की हँसी अभी तक याद है। उसमें खुब खनखनाहट थी और वह खनखनाहट उसके मन के अन्दर, कहीं बहुत अन्दर बस गयी थी और इसी खनखनाहट में उसकी स्वयं की हँसी कहीं गहरे तक दफन हो गयी थी। माँ एक दिन उसको और सबको छोड़कर नाना के यहाँ भाग गई थी। अब तो उसको होमवर्क कराने वाला भी कोई नहीं था। माँ के जाने के काफी दिनों तक तो उसके पापा ने उसको स्कूल नहीं भेजा था।

फिर जब स्कूल से शिकायत गई तो पापा ने किसी तरह भेजना शुरू किया और अभी स्कूल गये हुए मात्र दो दिन भी नहीं बीते थे कि दूसरे दिन ही कक्षा में टीचर ने उसको अपने पास बुलाया। ''सन्नी!''

''जी मैडम!''

और मैडम ने कापी उठाकर पूरी कक्षा को दिखाते हुए कहा, ''क्यों सन्नी ये क्या है ?''

और कापी में बना फोटो देखकर पूरी कक्षा में एक सम्मिलित हँसी का स्वर गूँजा। टीचर ने लाल घेरे से उसकी माँ की ड्राइंग को घेरा हुआ था।

''क्यों सन्नी ये तुम्हें क्या होता जा रहा है! तुम कितने बढ़िया बच्चे हुआ करते थे। आजकल तुम्हारा दिमाग कहाँ रहता है ? ड्राइंग में? चित्र बना–बनाकर, क्या पिकासो बनना है ?''

उसकी शर्ट के टूटे बटन में अपना पेन घुसाते हुए बोलीं, ''तुम्हारी माँ क्या तुम्हारा ध्यान नहीं रखतीं। अरे इस फटीचर हालत में स्कूल आने से तो

स्कूल न आना अच्छा है। कल अपनी माँ को बोलना कि आकर मिलेंगी।'' और टीचर के इस वक्तव्य के बाद वह पूरी कक्षा की हँसी का पात्र हो गया। सबकी हँसी उसके कान में काफी देर तक गूँजती रही। और वह अपमानित–सा एक कोने में मुँह लटकाये बैठा रहा।

हाँ, वह महसूस कर रहा था सबकी निगाहों को और सबकी हँसी को। सब खिलखिलाकर हँस रहे थे पर उसकी हँसी गायब थी। उल्टे उसको रोना आ रहा था और साथ में माँ की याद भी। वह मन–ही–मन बुदबुदाया, ''माँ तुम कहाँ हो ? आओगी नहीं क्या ?'' और हँसी के बीच उसकी गर्दन शर्म से झुक गई। कक्षा में मानो सहसा वह उपेक्षित और अकेला पड़ गया था। सिर झुकाये हुए भी उसको महसूस हो रहा था कि सबकी आँखें उसके ऊपर ही टिकी हैं। सबकी हँसी का एक सम्मिलित स्वर उसके कानों में खिलखिलाहट बन गूँज रहा था। सब हँस रहे थे और वह सुबक रहा था।

तभी एक चपरासी ने आकर कक्षा में टीचर को उसके नाम की पर्ची पकड़ायी।

''सन्नी!''

'' जी मैडम!'' आँसुओं को अंदर रोकते हुए सन्नी बोला।

''तुम्हे प्रिंसिपल मैडम बुला रही हैं।''

आँखों के ही माध्यम से उसने मौन प्रश्न पूछा 'क्यों' पर टीचर को निरूत्तर पा हतोत्साहित हो गया।

''अरे, इतने महीने से फीस नहीं जमा होगी तो क्या तुम्हारा स्कूल आना उचित है।''

सभी बच्चों की आँखो में उपहास का भाव झलक उठा। वह बिना पीछे मुड़े चपरासी का पीछा करते हुए प्रिंसिपल के कमरे की तरफ बढ़ गया। शुक्र है कि आँखें पीछे नहीं देख सकतीं क्योंकि वह हँसते और मुस्कराते हुए चेहरों से हर पल अपने को बचाना चाहता था। पर मुए ये कान हैं कि सब–कुछ सुन लेते हैं। और बच्चों का मखौल उससे छुपा न था। फीस के लिए उसको दो–तीन बार पहले भी टोका जा चुका था पर आज नौबत नाम काटने तक आ गई थी। और उससे चिढ़ने वाले बच्चों की तो बात बन आई थी।

ऑफिस में प्रिंसिपल की कुर्सी के पास पहुँचकर उसकी निगाहें नीची हो गई। वह प्रिंसिपल को मन–ही–मन चाहता था। उसको मैडम का उठना,

बैठना, तैयार होना बहुत ही भाता था और उनकी मुस्कराहट में उसको अपनी माँ नजर आती थी। माँ जैसी हँसी, माँ की तरह खिलखिलाहट।

जब से माँ उसको छोड़कर गई है तब से उसकी हँसी पूरी की पूरी गायब हो गई है।

प्रिंसिपल के चेम्बर में उसके पिता भी मौजूद थे। एक भारी–भरकम शख्सियत, एक कठोर व्यक्तित्व। उसको वहाँ से भागने का मन कर रहा था। पिता की नजदीकी एक भय पैदा कर रही थी। उनकी समीपता से तो कक्षा के बच्चों की हँसी झेलना ज्यादा आसान था। वहाँ कम–से–कम अपनत्व तो था। पिता को तो उसने प्रिंसिपल को कहते सुना, ''बस कुछ ही दिन के अन्दर मैं इसको बोर्डिंग में भेजने वाला हूँ। सोचिए ऐसी पत्नी से पाला पड़ा जो इतने छोटे बच्चों को छोड़कर बार–बार भाग जाती है।''

मैडम की आँखों में एक उत्सुकता कौंधी और फिर दब गयी। ऐसे भी दूसरों का झगड़ा हमेशा कौतूहल का विषय रहता है। फिर उसकी माँ तो स्कूल आकर खूब तमाशा कर चुकी थी। हर एक शख्स से पिता की शिकायत करते हुए उसने माँ को खुद सुना था।

एक बार तो पापा ने रात में माँ को खूब मारा था और दूसरे दिन माँ रोती–पीटती हुई उसके स्कूल चली आयी थी। और सबको अपने तन पर लगी हुई चोट पीठ और जाँघ पर से साड़ी उघाड़–उघाड़कर दिखा रही थी।

उसके जाने के बाद स्कूल का सभी स्टाफ खूब कस–कस के उसका और उसकी माँ का नाम ले–लेकर हँस रहा था। कोई नहीं जानता कि रात में उसने माँ को पिटते देखा था और रातभर वह माँ से चिपककर उसके आँसू पोंछता रहा था। नहीं, वह अब नहीं रोयेगा। उसको तो माँ का सहारा बनना था। और सिसकी उसके हलक में ही अटक गई। बीच रात में एक बार जोर से माँ को दर्द हुआ, उसकी कराह निकली थी पर उसने माँ को अपने में भींच लिया था। हौले–हौले वह माँ के दर्द को महसूस कर रहा था और हर अहसास के साथ उसकी अपनी खुशी और हँसी का दायरा सिमटता जा रहा था और अगले सुबह तक तो उसकी हँसी पूर्णतः समाप्त हो चुकी थी। उसके बाद वह हँसना भूल सा गया था। कुछ ही दिन बाद माँ घर छोड नानी के यहाँ चली गयी थी, ... और सन्नी को दीदी के पास

अकेला छोड़कर गई थी। जाते–जाते बस एक ही वाक्य बोल गई थी। ''सन्नी का ध्यान रखना।

एक ही रात में सन्नी मानो जवान हो गया था। उसने हठ करना छोड़ दिया। अपने हाथ से खाना खाने लगा था, और तो और अब तो पौटी भी स्वयं ही धोता था।

कुछ ही दिन के बाद पापा ने दीदी को भी चाची के पास भेज दिया था। और अब तो वह सिमटकर झाग वाले पानी का बुलबुला हो गया था, उसका दर्द कभी भी फट सकता है। विडंबना ऐसी, कि हर क्षण उस बुलबुले की परिधि बढ़ती ही जा रही थी, पर दर्द था कि फटने का नाम ही नहीं ले रहा था।

''हाँ बताइये ना, आप भी तो औरत हैं, क्या कोई भी औरत अपने रोते–बिलखते बच्चों को ऐसे ही छोड़कर चली जाती है! अरे बड़ी ही बदचलन आवारा औरत है। पता नहीं किस घड़ी में ईश्वर ने उसका–हमारा साथ किया।'' और इस वाक्य पर तो सन्नी की निगाह शर्म से झुक गई। वह बदचलन आवारा शब्दों को नहीं पहचानता था पर पापा, माँ को भद्दी गालियाँ दे रहे हैं इसका उसको अच्छे से अहसास हो रहा था।

''अब आप ही बतलाइये कि इन बच्चों की परवरिश तो मेरा ही सिरदर्द है न। अब जैसे भी पालें पर पालना तो है ही।'' सन्नी को ऐसा लगा मानो, टनों पत्थर उसके कंधे पर किसी ने लाद दिया है। एक बार उसका मन किया कि प्रतिकार करे पर हिम्मत न हुई। अभी वह असमंजस की स्थिति से उबरने का प्रयास कर ही रहा था कि उसे नीचे कुछ गीला–गीला सा महसूस हुआ। अरे, ये क्या उसने तो पैंट ही गीली कर दी थी। शर्म के मारे वह और भी धरती में गड़–सा गया। वह आँखें झुकाये खड़ा ही रहा और उसकी तन्द्रा तब भंग हुई जब प्रिंसिपल मैडम बाहर से आया को बुलाने के लिए घन्टी पर घन्टी बजा रही थी।

''कितना असंस्कारी लड़का है। इतना बड़ा हो गया पर अभी तक बाथरूम मैनर्स न आया।'' फिर आया को उसे बाहर ले जाने के लिए बोलकर मैडम सन्नी के पापा की तरफ मुखाबित हुई, ''सच में, मैं आपकी दिक्कत समझती हूँ। बोर्डिंग छोड़ और कोई उपाय नहीं है।''

और उसके कानों में आया की हँसी पड़ी, ''क्या सन्नी, बाथरूम आये तो कम–से–कम बताया तो करो !'' उसकी आवाज गा–गाकर इन शब्दों

को चबा–चबाकर ऐसे बोल रही थी कि परिहास का अहसास उसको अच्छे से हो रहा था। आया का उसके हाथ पर इतना जोर था कि उसे एकबारगी लगा कि हाथ टूट जायेगा। वह भी कितना बुद्धू है कि उसने पैन्ट में ही पेशाब कर दी पर उसे पता क्यूँ नहीं चला ? शायद वह प्रिंसिपल मेम को देख घबरा गया था। या फिर अपने पिता के क्रोध का उसको स्मरण आ गया, माँ की तो वह खूब पिटाई करते थे। अब घर जाकर वह भी अच्छे से पिटेगा। पैंट की बेल्ट खोलकर पापा अच्छे से उसको मारेंगे।

उसको मैडम ने उस दिन पापा के साथ ही घर भेज दिया! रास्ते–भर पापा की वह झिड़की सुनते गया था।

और दूसरे दिन से प्रातः विद्यालय में हँसी सिखाने का अभ्यास हो रहा था। सभी खिलखिलाकर हँस रहे थे। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो सब उसको ही देखकर हँसना सीख रहे हों। वह वहीं पर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसको पता ही न चला कि कब हँसी का दौर खत्म हुआ और कब राष्ट्रगान की समाप्ति पर पूरा स्कूल हरकत में आ गया।

अभी वह मनहूस शक्ल बनाता हुआ बैग उठा ही रहा था कि पीछे से बच्चों का एक रेला आगे बढ़ा और उसके ऊपर दबाव पड़ा। इससे पहले कि वह सँभल पाता, वह लड़खड़ाया और गिर पड़ा। अभी तक जिस हँसी को लाने के लिए पूरे स्कूल में अभ्यास कराया जा रहा था वही हँसी का समवेत स्वर गूँजा और वह हताश–सा जमीन पर गिरा पड़ा रहा।

अभी तक जो टीचर उसे हँसने के लिए प्रेरित कर रही थी वही अब उसके ऊपर हँस रही थी। वह काफी देर तक तो झेंपता रहा और उठने में भी उसे दिक्कत हुई। काफी बच्चे उससे आगे निकल गये।

वह धूल–धूसरित जमीन पर पड़ा रहा और पता नहीं अचानक उसमें कहाँ से शक्ति आ गई या फिर माँ का अदृश्य रूप उसकी आँखों में कौंधा और वह धूल को शरीर से झाड़ता हुआ खड़ा हो गया। गिरी हुई कापियाँ उसने बैग के अन्दर डालीं और बिजली की फुर्ती से उठकर खड़ा हो गया। आँखों में उठते हुए नीर को हाथ से पोंछा और पता नहीं किस प्रेरणावश वह जोर से अट्टाहास करने लगा। उसकी हँसी स्वर्ण–रश्मि बन चारों तरफ छितरा गई। उसकी जोरदार हँसी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि कौंधती हुई हँसी चारों तरफ छा गई। वह हँसे जा रहा था और पूरे मैदान के बच्चे शान्त खड़े

उसे सुन रहे थे। प्रशिक्षक जो अभी तक सबको हँसने की प्रेरणा दे रहे थे उसकी हँसी सुन स्वयं विस्मित थे।

सही भी है, शायद सन्नी इतनी छोटी उम्र में भी सीख गया था कि जब तक मनुष्य समाज पर हँसना नहीं सीखता तब तक समाज उसकी हँसी उड़ाता है।

उसकी अन्तरात्मा उसे प्रेरित कर रही थी कि हँसो–हँसो, और हँसो और उसकी हँसी का दौर थम ही नहीं रहा था।

पर प्रशिक्षक विस्मित था, कहीं कोई बच्चा ऐसी हँसी भी हँसता है। जरूर पागल हो गया है।

पागलपन दुख की ही पराकाष्ठा है।

■

संघर्ष

मैं क्या लिख रही हूँ और क्यों, शायद इसका मुझको ज्ञान नहीं है। कभी–कभी वक्त ऐसा आता है कि इंसान हतप्रभ रह जाता है। नाटक का पट्टाक्षेप इतना जल्दी होता है इसका अनुभव कभी इतनी अचानक ओर अकिंचित होता कि समस्त चक्षु सिर्फ हृदय पर केन्द्रित हो सोच को विराम दे थर्राने लगते हैं। फिर यह घटना थी भी ऐसी। नरेन मामा ने खुदखुशी कर ली थी। उस दिन शाम से ही कुत्तों के रोने का समवेत् स्वर सुनाई पड़ रहा था। शायद जानवरों की मौन संवेदनाएँ इंसानों की तकलीफ बहुत पहले ही समझ लेती हैं। एक अच्छा–भला इंसान भला क्यों अपनी इहलीला समाप्त कर लेगा, इसका अनुभव भी कर पाना असहनीय है। जब हम सुख से अपने घरों में बैठे होते हैं तो किसी की घुटन को महसूस कर पाना असंभव ही है। जीवन की भेंट को इतनी आसानी से खत्म कर देना एक असाधारण कदम है।

कोई क्यों कर लेता है ऐसा?

मौत शाश्वत् है और एक हकीकत।

पंखे से लाश लटकी हुई थी। गला एक तरफ लुढ़क गया था। पैर जमीन से थोड़ा ऊपर हवा में झूल रहे थे। पास ही मेज पर पन्ने फड़फड़ा रहे थे। दस पन्ने। और पूरी जिन्दगी की कहानी, उससे जुड़ी अपेक्षाएँ, आकांक्षाएँ, संघर्ष, असफलताओं की एक छोटी दास्तान। तमाम जिन्दगी जैसे कुछ पन्नों और थोड़े से शब्दों में सिमटकर रह गयी थी। जिन्दगी का अस्तित्व कागज के पन्नों में फड़फड़ा रहा था। शायद वह भी जिन्दगी की तरह हवा में उड़ जाना चाहता हैं अब कुछ शेष रहा नहीं। शेष रह गयीं वह कुछ जिन्दगियाँ जो उनसे जुड़ी थीं। शेष रह गये उनके संघर्ष। शेष रह गयी तमाम यादें।

उम्र कोई ज्यादा नहीं रही होगी। यही कोई चालीस–पैंतालीस साल। दुबला–पतला जीर्णकाय शरीर जो कभी हट्टा–कट्टा रहा होगा। उड़े–उड़े बाल पर चेहरे पर अपूर्व शान्ति। वही शान्ति जिसकी तलाश में

पूरी उम्र गुजर गयी। तमाम उम्र गुजार दी पर मिली न खुशी। अब जब मिली तो उम्र से वास्ता ही न रहा।

आज से करीब पन्द्रह–सोलह साल पहले उनकी शादी संगीता नाम की लड़की से हुई थी। लड़की थी बेहद सुन्दर। छोटी उम्र, सुन्दर रूप–रंग और अच्छे पैसे वाले घर में शादी ने उसके दिमाग को उछाल दिया। सास की इकलौती बहू होने के कारण सास ने धरती पर उसके मानो पैर ही पड़ने नहीं दिए। मायके में संगीता के कुछ खास न था अतः यहाँ का पैसा उसको लुभाता । उसके पिता को पैरालिसिस था अतः उन्होंने पूरी जिन्दगी ही खाट पर काट दी। कभी भी पैसा असीम नहीं हुआ। जब आकांक्षाएँ असीमित होने लगती हैं तो धन की अपनी सीमाएँ बँध जाती हैं और फिर उसका क्षय होने लगता है। धन सिर्फ दान या भोग के लिए ही निमित्त है। अगर उसका संचय होता तो वह नष्ट होने लगता हैं इसलिए धन का सदुपयोग होना चाहिए। पर नरेन मामा के पिता ने अति की कंजूसी की, अपने नाते–रिश्तेदारों को काटकर पैसा एकत्रित किया कि वह उसके एकमात्र पुत्र के लिए पर्याप्त होगा। वह उसके लिए इतना छोड़ जाना चाहते थे कि सात पुश्तें उसका उपभोग कर सकें। पर लक्ष्मी तो ठहरी चंचला, कब किसी के पास स्थिर हुई है। बड़े–बड़े राजघराने चौपट हो गये और महल–असबाब आज या तो धूल चाट रहे है या फिर भूतहा बंगला बने उनमें चमगादड़ लोट रहे हैं। राजे–महाराजे तो मिट गये फिर छोटे–मोटे आदमी की क्या बिसात।

भीड़ बढ़ती जा रही थी। जो सुनता एक बार तो हतप्रभ हो जाता। इतनी बड़ी घटना, खानदान में कभी भी हुई थी। फिर सबकी आँखों के सामने उनका चेहरा और बिताये हुए क्षण घूम जाते। कोई न कोई याद मीठी या खट्टी जेहन में जुड़ जाती और मन को कचोटती।

सुबह करीब बारह बजे वह घर से निकले थे। बोल के निकले कि मैं इनकम टैक्स ऑफिस जा रहा हूँ, देर हो जायेगी। परेशान न होना। रोजगारी आदमी को सेल्स टैक्स, इनकम टैक्स से तो बराबर सामना करना पड़ता ही है। घर में किसी को संदेह न हुआ। फिर जैसे कोई लंबी यात्रा के पहले की तैयारी से निकलते हैं वैसे ही वह भी बकायदा जूते मोजे पहनकर बढ़िया शर्ट–पैंट चढ़ाकर अपनी लंबी यात्रा की तैयारी के लिए निकले। यात्रा लंबी थी उस लिहाजन तैयारी काफी न थी पर उस यात्रा का अन्त

निश्चित था। न कोई पड़ाव न कोई ऊबड़–खाबड़ रास्ते, न प्राकृतिक दृश्य, न बच्चों का खेलना–खिलखिलाना, युवतियों का इठलाना–मचलना, सिर्फ एक मंजिल एक सीधा–सरल मार्ग, एक अपूर्व शान्ति।

उनका नाम नरेन था। अपने माँ–बाप की इकलौती संतान। बचपन से लाड़–दुलार से पले–बढ़े थे। पिता के पास पैसे की कमी न थी। संयुक्त परिवार था अतः पूरा दिन ऊधम, धमाचौकड़ी में निकल जाता था। माँ चूँकि रईस परिवार से आई थी, अतः काम में उनका अधिक मन लगता न था। वैसे भी संयुक्त परिवार में उसी बहू की इज्जत है जिसका मायका मजबूत है। अपने मायके के बल पर वह ससुराल में राज करती है। बड़े बाप की बेटी होने के कारण उनसे कोई ज्यादा काम–काज भी नहीं होता था। पुत्र की परवरिश भी जैसे उनके ऊपर बोझ थी। जब उम्र अच्छी शिक्षा देने की थी तो माँ अपना वक्त त्रिया–चरित्र में बिताती थी। बेटा हाथ से निकलता गया। पढ़ने के वक्त वह मटरगश्ती करता था। बेटा इस तरीके से हाथों से निकलेगा यह बात जब माँ को नाकाफी लगी तो उसने शुरू किया उसका सबसे कम मिलना जुलना। घर वालों के खिलाफ भड़काना शुरू किया जिससे उसका बालमन ऊँचे उठने के बदले संकीर्णताओं और पारिवारिक कलह में लग गया। और नरेन वास्तव में एक अयोग्य नरेन होकर रह गया।

"अरे यह सब कैसा हुआ?"

"बात कब की है?"

बाहर परिचितों की भीड़ बढ़ गयी थी। सहूलियत से लाश को नीचे उतारा गया। उन्होंने अपने अच्छे कपड़े एक तरफ रख दिये थे, घड़ी और अँगूठी तो वह सहूलियत से घर पर ही रख आये थे। शायद अंदेशा था कि कहीं घर वालों से पहले किसी और की निगाह उन पर पड़ गयी तो वह ले सकता है। लोगों का क्या, अगर उनका बस चले तो वह मुर्दों को भी बेच खायें। दुकान में वह बारह सवा बारह बजे दिन में पहुँच गये थे। पर जान देने की उन्होंने ग्यारह बजे रात को ठानी क्योंकि जब लाश पुलिस को मिली तो वह 10–12 घण्टे पुरानी थी। पुलिस का क्या, उसके लिए तो बस एक ठूँठ का ढेर था पर घर वालों के लिए कोई अपना। बेहद करीबी, प्यारा और अजीज। बारह बजे दिन से वह अपनी दुकान में बैठे रहे और तब कहीं जाकर 11 बजे रात में आत्महत्या की है। मरता हुआ आदमी भी मौत से बचना चाहता है। फिर उस आदमी के अन्दर मौत को आत्मसात्

करने की इतनी व्यग्रता, इतना जुनून कि उसने बहुत ठहरकर उसको गले से लगाया। मौत से नरेन को कितना प्यार था, या फिर जिन्दगी से नफरत, उफ! आखिरी साँसे गिनता हुआ आदमी भी एक छोटी सी जिन्दगी की उम्मीद करता है। नरेन तो जीवन का मोह ही त्याग बैठा था और यहाँ बैठकर वह सिर्फ और सिर्फ मौत का इंतजार करता रहा और आखिर में नफरत ही सब रिश्तों, भावनाओं, संवेदनाओं के ऊपर भारी पड़ी। वह रात को फाँसी लगाकर झूल गया।

कितनी पीड़ा और जिन्दगी से घोर घृणा। उस घृणा ने मौत की फतह कर दी। मरने के पहले वह दस पन्नों की चिट्ठी लिख गये जिसको पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया। उन चिट्ठियों में जिन्दगी का दर्द और हताशा सिमटकर आ गयी थी।

"मैं खुदकुशी अपनी इच्छा से कर रहा हूँ। इसके लिए कोई भी जिम्मेदार नहीं है। मेरे परिवार को परेशान न किया जाये।"

एक चिट्ठी सास के नाम–

"मैं आपकी बेटी को सँभाल नहीं पाया।"

एक चिट्ठी कर्जदारों के नाम–

"जिस तरह से मेरी जिन्दगी बरबाद की है वैसे फिर कभी आइन्दा किसी की न करना।"

एक चिट्टी बच्चों के नाम–

"मैं हार गया। मैं तुम्हें सन्तुष्टि न दे पाया। तुम्हारे लिए इस जिन्दगी में कुछ नहीं कर पाया। मैं तुम्हारा दोषी हूँ। मुझे माफ करना।"

एक चिट्ठी पत्नी के नाम–

"आर्थिक तंगी से तंग आ, घरेलू कलह से परेशान हो मैं यह कदम उठा रहा हूँ। मैं आत्महत्या कर रहा हूँ। मैं तुम्हारी जिन्दगी से जा रहा हूँ। अब तुम आजाद हो हमेशा–हमेशा के लिए।"

(2)

दशहरा का दिन था। नरेन के लिए संगीता को घर वालों ने पसंद किया था। बेहद सुन्दर और स्मार्ट। पर एक तरह से बेमेल और इच्छाओं के अनुरूप नहीं ठीक विपरीत स्वभाव। जैसा कि पहले भी कथानक बोल चुका है, एक अपरिपक्व बुद्धि जिसको उछालना और बरगला लेना बेहद आसान

था। उसी दिन संयोग से उसका जन्मदिन पड़ता था। सास–ससुर ने काफी व्यापक पैमाने पर आयोजन किया था।

"अरे बहू का रूप तो देखो। नरेन के लिए ईद का चाँद ढूँढकर लायी है।"

"हाँ लड़की भी तो जेवरों से लदी राजरानी लग रही है जैसा रूप वैसा भाग्य है।"

"क्या किस्मत पाई है। लगता है ईश्वर ने सब–कुछ देकर संगीता को भेजा है।"

लोग घृणा मिश्रित ईर्ष्या से भाग्य और रूप का बखान करते गये वह हर बखान पर घमण्ड की एक–एक सीढ़ी चढ़ती गई। नरेन उसके समक्ष गौण हो गया और गौण हो गया उसका भाग्य। सास भी नाते–रिश्तेदारों को उलाहने दे रही थी–

"अरे सब लोग मेरी बहू का करो।"

जब भाग्य मुस्कुराता है तो हम यह भूल जाते हैं कि जिन्दगी का चक्र अनवरत चलता रहता है। सुख और दुख, खुशी और गम तो आते–जाते हैं। जैसे रात के बाद दिन और दिन के बाद रात होती हैं वैसे ही यह तुच्छ जीवन है। जो खेल खेलता है, वह तो ऊपर बैठा ईश्वर, सृष्टा और कर्त्ता बन एक जीवन का तमाशा देखता रहता है। कब कौन अभागा और कौन भाग्यशाली इसको समझना न केवल विचित्र है अपितु समय के गर्त में छुपा हुआ एक रहस्य भी है।

वह गर्वित नारी रूप और धन के अंधकार में राजरानी की पदंवी पर आसीन भूल गयी कि नीचे एक वास्तविकता की जमीन भी है जो कठोर है और जब इंसान हवा में उड़ता है तो हवा निकल जाने के बाद औंधे मुँह जमीन पर गिरता है। जब कठोर धरातल पर मनुष्य के कदम होते हैं तो अगर ठोकर भी लगती है तो वह सँभल जाता है और अगला कदम सोचकर उठाता है। गर्वित नारी कहीं भी पाताल की पहली सीढ़ी होती है। और जिस नारी को रूप का घमण्ड हो उसकी तो जिन्दगी में पुरुषों द्वारा भोग्या बनने में वक्त नहीं लगता। अपने मुँहबोले देवरों के मीठे संभाषणों ने उसके अन्दर उच्छृंखल नारीत्व का पोषण कर दिया। और इसी में उसके संपर्क में एक देवर आया नीरज। जे भाभी की चाटुकारिता में अपना वक्त व्यतीत करता था।

(3)

पुलिस आ गयी थी। लाश को नीचे उतारा जा रहा था। अभी तो पोस्टमार्टम होना चाहिए। वास्तव में हर जिन्दगी का एक पोस्टमार्टम होना चाहिए। क्यों किसी के साथ ऐसा घटित होता गया। क्योंकि जैसे रिपोर्ट हमें यह अवगत कराती है कि इस बेजान लाश के साथ क्या कुछ किया गया होगा वैसे ही हर लाश उस बीती हुई जिन्दगी के सही और गलत कार्यों और उनसे उपजे निर्णयों को भी बताती है। कभी–कभी जिन्दगी का कोई निर्णय हमें सफलता के कगार पर पहुँचा देता है और कोई असफलता की गहन और घोर निराशा के भँवर में, जिससे निकलने का कोई भी रास्ता नहीं सूझता। जिन्दगियों को क्षत–विक्षत करने से उससे उपजे अनुभव हमें ज्ञानी न सही पर सीख तो अवश्य दे सकते हैं और किसी दूसरे इंसान की जिन्दगी सँभल सकती है। जिन्दगी न्यूटन के सिद्धांत पर बीतती है कि हमारे हर कर्म का एक प्रतिफल होता है जो जिन्दगियों की धारा को बदल देता है।

शादी के साल के अन्दर संगीता को पुत्र हो गया और अब तो जैसे उसके भाग्य की खूबसूरती पर भी ठप्पा लग गया।

"अरे बहू ने आते ही आते पुत्र को जन्म दिया।"

"क्या कहा जाये कितनी भाग्यशाली बहू है।"

"इस बुढ़ापे में इंदिरा के तो भाग्य खुल गये।"

"अरे संगीता अब झटपट दूसरा भी कर लो।"

"नहीं मामीजी।" संगीता ने अहंकार–वश कहा–"दूसरा कम से कम लड़का तो नहीं चाहिए। दूसरी बेटी हो तो ठीक।" दो बेटे होंगे तो संपत्ति का बँटवारा हो जायेगा।"

"अब बच्चा तो ईश्वर की देन है देखो क्या लिखा है किस्मत में। जीवन और मरण तो ऊपर वाले के हाथ में है। पर मेरे लिहाज से दो हो जाते तो परिवार में रौनक लगती। फिर नरेन तो इकलौता है। दो होने से उसको व्यापार में दो मददगार हाथ मिल जायेंगे।"

होता वही है जो राम रचि राखा। उसने एक सुन्दर–सी बेटी को जन्म दिया। इस बीच में संगीता के श्वसुर का देहान्त हार्ट अटैक से हो गया था। अपनी बहू के चाल–चलन उनको पसन्द नहीं आते थे। पर बहू को इस हद तक बढ़ावा दे दिया था कि अब पीछे हटना भी ठीक नहीं था। बेटे का

भविष्य और बहू का व्यवहार उन्हें अन्दर ही अन्दर कचोट जाता था। यही गम उन्होंने दिल से लगा लिया और दिल का रोग उनके जीवन को लील गया। नरेन की माँ पति की मृत्यु के सदमे को बर्दाश्त न कर पायीं। वह बीमार रहने लगीं। उनका स्वास्थ्य भी गिरता चला गया।

"अरे कितनी देर लगेगी। रिपोर्ट मिल जाये तो क्रियाकर्म करें।"

"सही बात है। शायद मौत रात के करीब 11 बजे के आसपास हुई।"

"हाँ समझ में नहीं आता कि क्या से क्या हो गया। अरे 11 बजे तक मौत को गले लगा पाना कोई छोटी–मोटी बात नहीं है। कितनी यंत्रणा सही होगी। अपनों को हमेशा के लिए छोड़ने का मोहत्याग, जिन्दगी में उपजी गहन निराशा। अरे बड़ा जिगर वाला ही कर सकता था।"

"अरे कुछ नहीं तो कम से कम अपने बच्चों को ख्याल करना चाहिए था।"

"अरे कभी हमसे बैठकर अपनी समस्याएँ बतानी चाहिए थीं। कोई न कोई हल निकलता।"

"हाँ थोड़ा–बहुत सुगबुगाहट थी कि आर्थिक तंगी है पर इतनी विकट समस्या होगी यह नहीं सोचा था।"

"हाँ यार, इंसान क्या सोचता है कि क्या हो जाता है। देखो न, चाचाजी ने शायद कभी सोचा भी न होगा कि वारिस इतनी कम उम्र में मर जायेगा।"

"हाँ क्या उसने एक मिनट भी मरने के पहले किसी के विषय में नहीं सोचा।"

"शायद स्वार्थी था।"

जितने मुँह उतनी बातें। उसी समय पुलिस आकर उसकी चिट्ठियाँ माँगती है। उनमें से नीरज को लिखी हुई चिट्ठी नाते–रिश्तेदार हटा देते हैं कि नाहक उसको पुलिस परेशान करेगी।

शायद संगीता को पिछले एक साल से कुछ–कुछ आभास था कि नरेन ये कर लेगा। होता भी क्यों न! वह बार–बार आत्महत्या की धमकी देता था। सास को गुजरे भी एक अरसा हो गया। सर पर हाथ रखने वाला कोई न था। छोटी उम्र थी और पति से उसको कोई विशेष लगाव न था। वह समझती थी कि वह रूप के बल पर इस घर में आयी है नहीं तो नरेन की औकात ही क्या कि वह उस जैसी अप्सरा को पा पाता। इसी के कारण

वह नरेन की अवहेलना करती थी। नरेन भी अपनी पत्नी को बेहद चाहता था। लोग जब कहते कि देखो लंगूर को हूर। तो थोड़ी दुखी होने के साथ–साथ वह भाग्य पर इठलाता। पूरे खानदान में उसकी बीवी से ज्यादा सुन्दर कोई नहीं था। और वह उसको भाग्य मानता था। यही भाग्य उसका दुर्भाग्य बन गया।

अच्छे वक्त में ईश्वर इंसान को सब तरफ से देता है और इतना देता है कि वह समेटना चाहकर भी अपने अच्छे भाग्य को सहेज नहीं पाता। उसको यह अच्छा भाग्य अपने गुणों और पुण्य–प्रताप का नतीजा प्रतीत होता है। तब वह औरों के दुर्भाग्य की जम के व्याख्या करता है। उनकी मदद करने की अपेक्षा उनका मजाक उड़ता है। अगर वह अच्छे वक्त को ईश्वर की कृपा माने और दुःखी की सेवा करे तो जिन्दगी का संतुलन ज्यादा सही होगा। उसकी तकलीफ में भी कोई आकर मदद करेगा। क्योंकि गीता में कहा गया है कि ईश्वर ही स्वयं भोक्ता है और स्रष्टा है। और अपने हर पात्र की तकलीफ में शायद वह कहीं न कहीं दुःखी हो रहा होता है। ईश्वर की अनन्त कृपा होती है हम मूर्ख उसको अनुभव ही नहीं कर पाते और जो कुछ हमारे पास नहीं होता उसके लिए दुःखी होते हैं और उस सुख को भूल जाते हैं जो हमारे पास विद्यमान है।

संगीता के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा। गरीब परिवार से आकर वह यहाँ ऐश्वर्य को न भोग पायी। जो जिन्दगी उसको नहीं मिली थी उसकी तड़प उसे उस मार्ग की ओर प्रेरित कर ले गयी जहाँ वह रूप का सदुपयोग सही तरीके से न कर पायी।

उसको लगा कि जिन्दगी में उसके पास अथाह धन–सम्पत्ति है पर अथाह तो किसी के पास नहीं होता। आमदनी से अधिक जब खर्चे बढ़ जाते हैं तो मुश्किल होने लगती है। आदमी अपना संचित धन खाने लगता है। यही कुछ इस दंपति के साथ हुआ। जीवन शैली ऐसी अपना ली जिसको पूरा करने के लिए धन नाकाफी हो गया। इस कारण व्यापार में भी स्थिरता न आ पायी। जब एक बार पैर उखड़ने लगता है तो फिर उसको सँभाल पाना मुश्किल होता हैं, वही हुआ। रोजगार पर से ध्यान हटा तो वह मंदा चलने लगा। गलत वक्त में गलत लोगों का साथ मिल जाता है। नीरज संगीता के रूप–लावण्य से चिढ़ता था। उसको वह अपना नहीं बना पाया। लिहाजा उसको तबाह करने पर वह उतारू हो गया।

''नीरज के पिता का देहांत जब वह कक्षा दस में था तभी हो गया था। नीरज भी अपने पिता का इकलौता पुत्र था। उसकी तीन बहनें थीं। पिता अथाह सम्पत्ति छोड़ गये थे। अपने पिता की मौत से उस लड़के का जी काफी कड़ा हो गया। फैली हुई सम्पति को सँभालना और व्यापार आगे बढ़ाने का हुनर वह सीख गया। वैसे भी विकट परिस्थिति अल्पायु में पड़ती है तो इंसान को जिन्दगी जीने की कला सिखा देती है। यही कुछ इसके साथ हुआ। वह कुछ अनुभवी हो गया। अपनी बहनों का अच्छे घरों में विवाह कर और व्यापार को आगे बढ़ाकर एक कामयाब इंसान के रूप में परिवार में स्थापित हो गया। उसने जिन्दगी को गंभीरता से लिया, लिहाजन जिन्दगी ने उसको गंभीरता से लिया। नरेन सतही होकर रह गया। बचपन में माँ–बाप और जवानी में बीवी के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह गया। और इस कठपुतली की डोर संगीता के पास थी जो नीरज के प्रति हल्का–सा आसक्त थी क्योंकि वह प्रगतिशील युवक था। और उसकी प्रगति इनकी जिन्दगी में बाधक हो गयी। वह कर्जों में इनको डुबोता गया और इसका नफा नीरज को हुआ और नुकसान नरेन का। नरेन जिन्दगी का सौदा बुरी तरह हार गया। और इस संग्राम में पीठ दिखाकर भाग गया। नीरज और नरेन एक ही परिवार के दो चचेरे भाई थे।''

नरेन ने मरते हुए लिखा कि मेरी लाश न जलायी जाय। सीधे विद्युत शवगृह में अंतिम संस्कार किया जाये।

"अरे ऐसा कैसे हो सकता है। घर चलकर उसकी लाश को एक बार बीवी–बच्चों को दिखा देते हैं, उन्हें आत्मिक शान्ति मिलेगी।"

"सही बात है। अन्तिम वक्त में उन्हें एक दिलासा हो जायेगी।"

और नरेन की इच्छा का सम्मान न करते हुए लोग कुछ देर के लिए उसे घर ले आये।

संगीता तड़पकर रो रही थी। उसके हाथ से सब–कुछ निकल गया था। जिन्दगी में कुछ पाने की खुशी क्षणिक होती है पर जिन्दगी में जितना मिला है उसके खोने का दुख असीम। संन्यासी शायद इसलिए इतना बेफिक्र घूम लेता है क्योंकि उसके पास सांसारिक वस्तु ही क्या जिसको खोने का भय सतायेगा। वह तो परमानन्द की स्थिति में घूमता रहता है। गृहस्थ अपनों की मृत्यु उपरान्त जीवन का मोल समझ पाता है।

"अरे अगर इंसान सलामत रहता तो सौ नियामतें हैं। जब पाला–पोसा इंसान चला गया तो बचा ही क्या।"

आज संगीता समझ पायी कि जिन्दगी के समस्त रंग पति से हैं। पति का अर्थ जीवनसाथी है। चाहे जैसा भी था, था तो पति ही। आज उसकी अर्थी पर रोते हुए वह अपने बीते हुए वक्त की गलतियों का स्मरण कर रही थी। अगर वह जिन्दगी को लेकर इतनी हाय–तौबा न करती तो शायद इतना कुछ इतनी जल्दी न होता। उसकी आकांक्षाएँ असीमित थीं और जिन्दगी की परिधि सीमित। उसमें उनको पूरा कर पाना शायद असंभव ही था। शीशे के सामने रंगहीन श्वेत वस्त्रों में उसको अपने जीवन का सार समझ में आया। जीवन कितना बहुमूल्य और ख्वाहिशें कितनी गौण।

काश! उसने पति को समझने का प्रयत्न किया होता, बात–बेबात झगड़ा न किया होता तो उसकी जिन्दगी की दिशा ही कुछ और होती। दुख अभिव्यक्त करने आया समाज सबके सब जा चुके थे, कोरी संवेदनाएँ थीं जो बची रह गयी थीं उसके पास। लोग शायद सब–कुछ भूलकर फिर से जीवन में लग गये होंगे। कुछ दिन बीतते–बीतते लोग उसको भी पूरी तरह से भुला देंगे। दूसरे कमरे में बेटी पलंग पर बैठकर खाँस रही थी। उसको दमा हो गया था। माता–पिता की कलह से बच्चों के स्वास्थ्य को प्रभावित करना शुरू कर दिया था। बेटा शायद इस सदमे से उभरने का प्रयत्न कर रहा था।

नरेन इस दुनिया से जाने के बाद भी हताश था। कहते हैं कि मरने के समय आत्मा का ध्यान जिनमें अटका रहता है आत्मा मृत्युपरांत उन्हीं में भटकती रहती है। और उसकी आत्मा बच्चों की दुर्दशा पर कचोट रही थी।

(4)

उस पूरा दिन वह अपनी दुकान में बैठा विवेचना करता रहा। जिन्दगी और मौत के द्वन्द्व में झूलता रहा। कभी जिन्दगी के मूल्य मौत पर हावी हो जाते कभी मौत सारी समस्याओं का एकमात्र विकल्प के रूप में प्रस्तुत हो जाती। काल जैसे उसके सर पर ताण्डव कर रहा था। उसको जिन्दगी के समीप जाने नहीं दे रहा था। उसके माता–पिता दूसरी दुनिया में उसको बुला रहे थे। इस लोक में बच्चे पीछे रो–गा रहे थे।

अपने बच्चों का गुनहगार बना हुआ जिन्दगी से भाग रहा था। वह उनका सामना नहीं कर पा रहा था। एकबारगी उसको लगा कि उसका

परिवार उसको बचाने के लिए अवश्य आयेगा। वह उस कमरे में बैठ उनका इंतजार करता रहा। फिर निराशाओं का दौर शुरू हो गया। जिन्दगी और समस्त दुःख उसके सम्मुख एक चुनौती बनकर खड़े हो गये। अब वह अकेले इसका मुकाबला नहीं कर सकता। एक समझदार पत्नी शायद उसको सँभाल ले जाती। पर....नहीं, अब कुछ नहीं हो सकता था। सब–कुछ चला गया। एक तरफ पत्नी रूठी रहती थी तो दूसरी तरफ बच्चों की आँखों में सूनापन, पीड़ा छायी रहती थी। पत्नी का जब पहला जेवर उसने गिरवी रखा था तब उफ्! कितनी पीड़ा.....नहीं अब और नहीं.....वह हार गया है .....पूर्णता.....बस.....सामने मौत थी पर पीछे ....एक बेकार–सी लचर–पचर जिन्दगी जिसका वह सामना नहीं कर सकता। वह सोना चाहता है..... सामने उसकी माँ आ गयी। हाथ बढ़ाकर उसको बुला रही थी, "आ जा बेटा....मेरे पास आ.....मैं तेरा सहारा हूँ.....भूल जा सब–कुछ.....आ जा। तू कैसे बचपन में जब हार जाता था तो मेरी गोद में सर छुपाकर पनाह लेता था। अब तुझे क्या हुआ! काफी बड़ा हो गया है रे। आ मेरे बच्चे आ..... ।"

नरेन वहाँ देखता रहा। माँ की आँखों में वात्सल्य था। हाँ, माँ का सहारा ही तो वह खोज रहा था। पर एक क्षण को बीवी और बच्चों को चेहरा उसकी आँखों के सामने से घूम गया। बीवी तीन दिन से नाराज थी। उसने खाना नहीं बनाया था। बच्चे तो अगल–बगल खाकर निश्चिन्त हो गये थे पर वह.....उसको भूख कसकर लगने लगी.....जी घबराने लगा। अब तो भूखे रहने की आदत हो गयी थी। 'माँ, मैं आ रहा हूँ, मुझे हलवा पूरी बनाकर खिलाओगी ना।' और वह फाँसी पर लटक गया।

बाहर आकाश में लालिमा फैलने लगी थी। सूरज ने कब अपनी गति बदली है। सृष्टि तो चलती रहती है। चिड़ियाँ चीं.....चीं....कर उड़ रही थीं। सब लोग नरेन के कमरे में संगीता को घेर कर बैठे थे। नरेन को गये महीना हो गया था। नाते–रिश्तेदार संगीता और बच्चों के भविष्य की चिन्ता कर रहे थे। कैसे उनकी गुजर–बसर होगी, इस पर सब विचार कर रहे थे।

"जाने वाला तो चला गया।"

"हाँ, जो होना था सो हो गया।"

"जैसी ईश्वर की इच्छा।"

वक्त थमता नहीं है। जिन्दगी रुकती नहीं है। जो चला गया वह कल बन गया। जो जीवित है वर्तमान में सब उसी की चिन्ता करते हैं। जो मर गया वह तर गया।

संगीता अपने बच्चों के साथ दुकान के बाहर खड़ी थी। नरेन की मौत के बाद आज पहला दिन था जब वह अपनी दुकान आयी है। शायद नयी शुरुआत। जीवन शायद कभी रुका नहीं है। यही सृष्टि का नियम है और दुकान के शटर खुल गये। संगीता ने अपने बच्चों के साथ उसमें अपनी जगह बना ली। कल जहाँ जनाजा था आज एक नवीन शुरूआत थी।

■

दिसंबर का महीना

वह दिसंबर का ही महीना था। जब इस गाँव में थेवलबिगहा कांड हुआ था। रक्तरंजित प्रहार, दिल दहला देनेवाला तांडव। रात में गाँव में सोते हुए युवकों और बूढ़े को एक खंभे से बाँध दिया गया और जो गोलियों से भूना गया कि रात की कालिमा भी रक्तिम लालिमा से ओत–प्रोत हो गई। बच्चों को भी नहीं बख्शा। अजीब वहशीपन सवार था उन खूनी दरिंदों को। सोते से उठने वाले युवक हमेशा के लिए सो गये। शंकर यादव ने प्रतिकार करना चाहा तो उसे संग टाँगकर ले गए और विश्वंभर साहू की खूबसूरत लड़की भी सामने पड़ी तो साथ में ही बाँध ली गई।

''सरदार, हमारा उसूल युवतियों के साथ छेड़छाड़ करना नहीं है। मत भटको, विद्रोह हो जाएगा।''

पर सरदार पर तो खूबसूरती का जुनून सवार था। थका मन और बोझिल कदम उसकी खूबसूरती देखकर आसक्त हो गए थे। नई स्फूर्ति सी जान में आ गई थी।

''जो होगा, देखा जाएगा। चलो।''

रोते–बिलखते परिजनों को छोड़, वे लोग जिस रास्ते आए थे, उसी रास्ते रात में विलीन हो गए थे।

रह गया था एक खूनी मौन, जो रह–रहकर सिसकती चीखों में तब्दील हो जाता था।

(2)

जातीय संघर्ष इस प्रांत की मजबूरी है। मजबूरी कहना इस खूनी संघर्ष का मखौल मात्र प्रतीत होगा, क्योंकि गुटीय समीकरण सदियों से यहाँ की वास्तविकता बन हकीकत में परिवर्तित हो चुका है। सवर्ण बनाम पिछड़ा की लड़ाई तो संग्राम का एक हिस्सा बन गई है। प्रतिशोध की ज्वाला दोनों तरफ ही ज्वलंत रहती है। जब, जिसको मौका मिला, एक नरसंहार कर देना और पीछे रह जाता खून से लथ–पथ लाशें और

टूटते–बिखरते परिवार। बेबस विधवाएँ, सूनी कोख और ढेर सारी कोरी राजकीय घोषणाएँ। नरसंहार के बाद काफिलों का गाँवों में आना और राजनीति की सेज पर रोटियाँ सेंकना सब यथावत् क्रम सा बन गया था, पर कहीं कोई बदलाव नहीं, कोई सकारात्मक सोच नहीं, कोई सरकारी पहल नहीं। खूनी संग्राम और उसके बाद मौन विराम।

इससे पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था कि संग्राम में किसी अबला को कोई दल उठा ले गया हो।

(3)

छिः–छिः! इसकी सुगबुगाहट दबे स्वर में पूरे गाँव में थी।

''अरे, ऐसा इतिहास में पहली बार हुआ है। जरूर विश्वंभर साहू की लड़की...। और पूरे गाँव में एक अनकही चुप्पी।

संघर्ष सिर्फ पुरुष–प्रधान था। औरतों को भी मार डाला जाता था, पर कभी किसी औरत की इज्जत पर हाथ नहीं डाला गया था। पूरा गाँव दुःखी था, पर इस नई पहल पर स्तब्ध भी। नया प्रचलन और पूरा गाँव–फॉरवर्ड या बैकवर्ड, इससे भयाक्रांत था। अभी तक तो सिर्फ जान ही जाती थी, अब बहू–बेटियों की आबरू को भी संकट उत्पन्न हो गया था।

(4)

सुबह की लालिमा इस क्षितिज में अपना प्रकाश फैलाने लगी थी। पूरा गिरोह काम को अंजाम देकर काफी खुश प्रतीत हो रहा। जीप को अपने गाँव से थोड़ा दूर रोककर सभी खाकीधारी उतरे और गाँव के बाहर जो झोपड़ी थी, उसमें से अपनी–अपनी लुंगी–बनियान बदलकर आ गए। खाकी वरदी उसी में डाल दी गई। वैसे भी खाकी वरदी की आड़ में गुनाह मामूली बात थी। पर थे ये उग्रवादी लोग। सदियों के दमन की पीड़ा को मन में सँजोकर रखे हुए थे। किसी–किसी दिन उस पीड़ा को आक्रोशरूपी ज्वाला मिल जाती और अंजाम का रूप ले लेता नरसंहार। उनका मुखिया था–भीष्म साहनी। एक खूँखार दरिंदा, जिसका मन औरत के चीत्कार और बच्चे के रूदन से भी पसीजता न था। नाटा कद और काला रंग उसके मानवीय चेहरे को और विद्रूप बना देता था और उसमें दो लाल आग्नेय एक अजीब–सा घर्षण पैदा करते, जिससे सब दहल जाते। और वह आंतकवादियों का निर्विरोध नेता था। उसको चुनौती देनेवाला इस इलाके में कोई न था।

भीष्म साहनी बचपन से ही सवर्णों के प्रति घृणा पालकर बड़ा हुआ था। उसकी माँ विश्वंभर साहू के यहाँ काम करती थी और पिता खेत में। माँ उसको अपने साथ काम पर ले जाती थी और दालान में लिटा देती थी।

विश्वंभर साहू उस इलाके के जमींदार थे, जो लोगों की जमीन दबाकर मालदार हुए थे। इलाके में उनका दबदबा था और कोई भी उनकी खिलाफत करने की सोच भी नहीं सकता था।

उस समय भीष्म कोई दस–बारह साल का रहा होगा और अपनी बकरियाँ चराते हुए उसकी एक बकरी भटककर साहू के खेतों में चली गई। संयोग या दुर्योग से साहू उस समय अपने आदमियों के साथ खेत पर निकले थे। पता नहीं उस हृष्ट–पुष्ट बकरी पर उनका मन आ गया या उस दिन उनका मिजाज ठीक न था, वह अपने आदमियों से बोले, ''दामोदर, इस बकरी को देख रहे हो?''

''जी।''

''उसने हमारे खेतों में आने की जुर्रत की।''

''जी साहब।''

उसी समय भीष्म ने दौड़कर अपनी बकरी को अपने से चिपका लिया।

''साहब, गलती हो गई। अब दुबारा ये इस तरफ झाँकेगी भी नहीं। माफ कर दीजिए।''

इतनी देर में आस–पड़ोस के खेतों में काम करनेवाले मजदूर इस घटना को देखने के लिए एकत्रित हो गए।

''दामोदर, इतने मजदूर गवाह हैं कि इस बकरी ने न सिर्फ अपनी सीमाओं को लाँघा है, वरन् मेरी तरफ देखकर मुँह भी चिढ़ाया है। क्यों जी, तुम सबने देखा कि नहीं?''

समस्त मजदूरों ने अपने–अपने सिर झुका लिये।

सड़ाक एक हंटर भीष्म की जाँघ पर पड़ा।

और कड़कती हुई आवाज में आदेश आया, ''ऐसी बकरी रखते ही क्यों हो, जो गलती करने की जुर्रत करती है? दामोदर जाओ, इस बकरी को ले जाओ और हलाल कर दो। यही इसकी सजा है। न रहेगी बकरी, न किसी को चिढ़ाएगी मुँह।''

भीष्म जितनी दूर तक अपनी बकरी को बचाने के लिए जा सकता था, गया। उसकी चीख और रोना निरर्थक साबित हुआ और अंत में एक पत्थर पर उसका पैर पड़ा, वह अचेत हो गया। कितनी देर वह वहाँ पड़ा रहा, इसका उसको भान नहीं। और भान तो अब आया, जब विश्वंभर की बेटी को देख, उसकी हंटर की मार ताजा हो गई।

आज समाने निरीह–सी विश्वंभर की बेटी उसकी ओर याचक निगाह से देख रही थी। उस बेटी, जिसका नाम हेमा था, ने उसकी ओर देखा था, मुँह चिढ़ाया था। और सड़ाक, सड़ाक, सड़ाक! वह थकान के बावजूद पागल हो गया। आज वह इसको हलाल करेगा।

हेमा की चीखें उस झोपड़े से छन–छनकर पूरे इलाके में फैल गईं। आज भीष्म के ऊपर मौत का तांडव सवार था। आज वह कर्त्ता की स्थिति में था और विश्वंभर साहू भर्त्ता की। आज पासा पलट गया था। और वह हाड़–मांस की हेमा, वह जो न पहले ही जी रही थी, न अब। बकरी की तरह मिमियाने के अलावा उसके पास और कोई विकल्प न था और वह निरीह जान चीख रही थी। पुराने सारे जख्म ताजा होकर उसकी आत्मा में टीस उत्पन्न कर रहे थे और वह उन यादों से मुक्त होना चाहता था। आज वह भीष्म साहनी उग्रवादी न होकर भीष्म साहनी हेडमास्टर था।

उसका सपना शिक्षक बनने का था और वह शिक्षक से आज भक्षक बना तो इसी विश्वंभर साहू के कारण। और आज जैसे उसका प्रतिशोध पूरा हुआ।

उस संगठन के और युवा पुलिस से बचने के लिए बारूदी सुरंग बिछा रहे थे। शंकर यादव एक तरफ बँधा हुआ था।

''कौन जात हो?''

शंकर घिघियाकर बोला।

''यादव।''

एक समवेत हँसी का स्वर उठा।

''समझो, बच गए।''

(5)

उधर गाँव में लाशों का ढ़ेर बिछा था। एक रात में चौदह लोग काल के मुँह में समा गए थे। पुलिस की तफ्तीश जारी थी। जैसा कि अमूनन

इस तरह के हालातों में होता है, कोई आगे की कार्रवाई नहीं हो पाती। सिर्फ खाना और मुआवजा तक देकर सरकार अपने दायित्व से इतिश्री कर लेती है।

मृतकों की सूची बन रही थी। पीछे से किसी ने शंकर यादव और हेमा साहू का भी नाम उसमें डाल दिया।

पुलिस के जाते ही चीखों और चीत्कारों से पूरा गाँव हाहाकार कर उठा।

उधर जमींदार के दालान में भी सन्नाटा था। आज कोई बैठकी नहीं हुई थी। यह वहीं दालान था, जहाँ पुरखों के जमाने से शाम होते ही रौनक हो जाती थी। हर तबके के लोगों का आना, शराब और शबाब का जमावड़ा बरसों तक चलता रहा था। ना वह राजे–महराजे रहे, न ही जमींदार। पर तब जमींदार की हवेली की शामों का जवाब नहीं।

शाम को घर की औरतें दहलीज पर भी नहीं आ सकती थीं। परदा था, और उस घर में आज इतना कुछ घटित हो गया। भीष्म साहनी घर के अंदर घुसकर हेमा को उठा ले गया और कोई कुछ न कर पाया।

''हरामजादो!'' विश्वंभर दहाड़ा, ''तुम लोगों को तनख्वाह मुफ्त में रोटी तोड़ने की दी जाती है?''

दलान के पीछे वाले कमरों से सुबकने की आवाजें आ रही थीं। हेमा की माँ पट्टेदार की औरतों से घिरी मातम मना रही थी। (माँ दुःखी होती है।) ''कलमुँही को ये दिन भी दिखाना था। इससे अच्छा तो पैदा होते ही मर गई होती। कम–से–कम कुल का नाम तो नहीं डुबोती। करमजली ने पूरे गाँव में हमारी नाक डुबो दी।''

महिलाएँ भी आपस में बैठ कानाफूसी के स्वरों में कुछ कह जातीं। एक दबी–सी मुस्कान और फिर सब शांत।

विश्वंभर कुरसी पर औंधे–सा बैठा था। उसकी आँखों में आँसू थे।

विश्वंभर के मुनीम ने उसको समझाया, ''छोटे सरकार छोटा मुँह बड़ी बात, पर थोड़ा माफ कीजिएगा। थाना के बड़ा बाबू आए हैं। कहला भेजा है कि अगर सरकार की इच्छा हो तो हेमा का नाम लापता सूची में दर्ज कराके कोई सकारात्मक कार्रवाई की जाय।'' फिर थोड़ा रुककर बोला, ''शायद मिल जाए।'' काफी देर कमरे में मौन पसरा रहा। मुनीम को

विस्फोट की आशंका थी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह विश्वंभर के चेहरे पर डूबते–उतरते भाव को पढ़ने का असफल प्रयास कर रहा था। वह जितनी ही फुरती से पढ़ना चाहता, उतनी ही तेजी से वह गायब हो जाते। पर हिम्मत करके वह बोल ही गया।

फिर एक क्रोधित मौन पसर गया। ''बुलाओ थानेदार को।''

थानेदार साहब अंदर आए–''कैसे हुआ सरकार ?''

''कुछ नहीं, कुछ नहीं हुआ। बस, हेमा मारी गई।''

''ये मैं कैसे लिख सकता हूँ ? वह जीवित है और उसके मरने की रिपोर्ट दर्ज करना तो सरासर गलत होगा। और यदि कहीं वापस आ गई तो हम सब बरबाद हो जाएँगे।''

विश्वंभर क्रोध से हुंकार कर बोला, ''मैं विश्वंभर साहू। मेरे पुरखों के आगे कोई यह कहने की हिम्मत न करता था कि क्या गलत है। जो ऐसा करता था, उसकी जबान खींच ली जाती थी या जिंदा धरती में गड़वा दिया जाता था। और तुम हमें कानून सिखा रहे हो, जो स्वयं एक कानून है! मुनीम इनके मुँह पर रुपया फेंक दो। जितना भी....''

थानेदार थोड़ा चुप रहा, फिर बोला, ''बात रुपये की नहीं है।'' पर उसकी हलक में थूक सूख गई थी। उसने कुछ बोलना चाहा, पर चुप रह गया। क्रोध में मनुष्य अपना विवेक खो देता है। वैसे भी बेटी की मार ने उसकी प्रतिष्ठा को करारी चुनौती दी थी। पूरा गाँव उस पर थूक रहा था। वह इस शर्म में पागल हो जा रहा था। भीष्म साहनी के खून का वह प्यासा हो गया था। रात तो उसने प्रतिज्ञा भी कर ली थी कि ''अगर चालीस दिन के अंदर वह भीष्म न मारा गया तो मैं अपने प्राण तज दूँगा।''

''हेमा नरसंहार में मारी गई।'' और दरोगा ने F.I.R. दर्ज कर लिया था। हेमा की मृत्यु का पुख्ता प्रमाण–पत्र।

उधर शंकर यादव के घर के बाहर रोना–पीटना मचा था। उसकी माँ और बीवी ने रो–रोकर पूरा गाँव सिर पर उठा लिया था। बीवी ने तो अन्न–जल का त्याग कर दिया था। ''जब तक ये आ नहीं जाते, मैं अन्न नहीं लूँगी।'' और थोड़ी देर चेतनावस्था में रहती और फिर बेहोश हो जाती। बच्चे सकते की स्थिति में अलग एक कोने में खड़े थे। पूरा घर–संसार ही उजड़ गया था। शंकर का गाँव में अच्छा दबदबा था। खेती–बाड़ी थी,

माल–असबाब थे और पक्का मकान था। घर में शंकर ही एकमात्र पुरुष था, जो कमाने के लिए घर से निकलता था। विश्वंभर साहू के यहाँ से दरोगा उसके घर गए। और सबको रोता–कलपता देखकर रिपोर्ट लिखी, 'शंकर को उग्रवादी भीष्म साहनी उठाकर ले गये। खोज जारी है।'

(6)

भीष्म और उसका गिरोह थककर एक झाड़ी के पास सो गए थे। पिछले दस दिन से पुलिस से भागते–भागते उनकी हालत पस्त हो गई थी। थेवलबिगहा कांड के बाद पुलिस को ऊपर से आदेश आए थे, इनको पकड़ने के। भीष्म का आतंक काफी बढ़ा हुआ था और सरकार भी रोज–रोज के आक्षेप से परेशान थी। नरसंहारों पर नियंत्रण पाना चाहती थी। नए डी.जी.पी. मिस्टर ओझा काफी कड़े पदाधिकारियों में गिने जाते थे। वह अपने कार्यकाल में इन चुनौतियों को स्वीकार करके जनता के बीच एक अमिट छाप छोड़ना चाहते थे। उनके निर्देश में सघन छापामारी शुरू हो गई। पड़ोसी राज्यों से भी सीमा को सीलबंद कर देने का आदेश हुआ। जंगल–जंगल और गाँव–गाँव में 'ऑपरेशन क्लीन' शुरू हुआ। इस ऑपरेशन के तहत जंगल के जानवर भी डर कर छुप गए थे।

भीष्म साहनी को पकड़ने के लिए सरकार कोई कसर नहीं छोड़ना चाहती थी। डुगडुगी बज गई। उसके सिर पर इनाम की घोषणा थी। इसलिए गाँववालों का भी उनको सहारा न मिल रहा था। भूख और प्यास से बेचैन भागते–भागते जब वह थक गए, तभी गया के पुलिस अधीक्षक, मि. भानु प्रताप सिंह ने उसको पकड़ लिया। साथ में हेमा और शंकर भी बरामद कर लिये गए। आरंभिक तफतीश के बाद उनको पुलिस की जीप गाँव में छोड़ गई। हेमा अपने कदम घसीटते हुए घर तक बढ़ रही थी। उसके स्वागत के लिए गाँव या परिवार से कोई नहीं आया था। अनकही खिलखिलाहटें उसका पीछे से स्वागत कर रही थीं। किसी ने भी आगे बढ़कर उसका हाल न पूछना चाहा। कुछ कदम आगे बढ़कर वह निढाल हो गिर पड़ी। इतने दिनों की भूख और प्यास ने शरीर को तोड़ दिया था। और हारकर वह आगे न बढ़ पाई।

जब उसे होश आया तो भी वह वहीं पड़ी हुई थी। कितनी देर पड़ी रही उसे ज्ञात न हुआ। अँधेरा घिर आया था। गाँव के सब किवाड़ बंद हो गए थे। पर कोई हौले–हौले उसको उठा रहा था।

"बेटा उठो," अम्मा थीं। थीं तो वह घर की नौकरानी, पर माँ उनको काफी मानती थीं। उन्हीं की गोद में पलकर वह बड़ी हुई थी।

अम्मा उसको सहारा देकर घर ले गई और उसके कमरे में पहुँचा दिया। पूरी रात माँ और अम्मा उसकी सेवा–सुश्रुषा करती रहीं। सुबह कहीं वह उठने लायक हुई। पर उसके उठते ही जैसे पूरे घर में बवंडर आ गया। बाहर दालान में पिताजी दहाड़ रहे थे।

"दस दिन ये लड़की कहाँ थी? किसके साथ मुँह काला करके आई है? इस घर में इसके लिए कोई जगह नहीं। ये जहाँ जाना चाहे, उसके लिए आजाद है। हमारे लिए ये उसी दिन मर गई, जिस दिन भीष्म इसको उठाकर लेकर गया था।"

माँ ने प्रतिकार करना चाहा, "आप भी बस! इसमें इसका क्या दोष? वह वहाँ अपनी स्वेच्छा से तो गई नहीं।"

"ये सब तुम किस–किस को समझाओगी? कोई ये नहीं पूछेगा कि स्वेच्छा से गई या अनिच्छा से? लोग ये पूछेंगे कि इसने वहाँ क्या किया? कैसे रही? है कोई जवाब?"

"हमें किसी से क्या करना? इसको बहन के पास शहर भेज देंगे।"

"कब तक समाज से बचती फिरेगी? मैं पूछता हूँ कब तक? हमें तो इस समाज में हमेशा रहना है।"

"मैं समाज को नहीं मानती। जब उनकी लड़की के साथ होगा तो पूछेंगे। मामला ठंडा होने तक बहन के पास रहेगी।"

"ये मामले कभी ठंड़े नहीं होते। ये ऐसे काले बदनुमा दाग हैं, जो सारी जिंदगी पीछा करते हैं। भीष्म साहनी जिंदगी का कोढ़ बनकर इसको खा जाएगा।"

"पर इसमें इस लड़की का क्या दोष?"

"दोष बीमार का नहीं होता, पर जो भी बीमार पड़ता है, उनको शारीरिक पीड़ा होती है। व्याधि तो व्यक्ति को ही झेलनी पड़ती है। भीष्म साहनी इसका रोग है और ताउम्र उससे पीड़ित रहेगी।"

"ताउम्र समाज....।" और हेमा का सिर ये सब सुनकर चकरा गया और वह बेहोश हो गई।

हेमा को होश आता और रह–रहकर बेहोशी छा जाती। होश आते ही वह बड़बड़ने लगती और फिर गफलत में।

माँ दबे स्वर में पिता की मिन्नतें कर रही थी–"लड़की का हाल देखो, कुछ तो रहम करो।"

पर इज्जत के मिट्टी में मिलने से विश्वंभर तो खिसियाए हुए थे ही, हेमा ने आकर जले पर नमक छिड़क दिया था। वह किसी तरीके से पसीजने के लिए तैयार नहीं थे।

उधर शंकर की घर वापसी पर पूरा जश्न माहौल था। पूरा मोहल्ला इकट्ठा हो गया था। मालपुए और पूरियाँ छानी जा रही थीं। भोज हो रहा था। मुबारकबाद देनेवालों का ताँता लगा था। सब शंकर से मिलकर भीष्म के किस्से जानना चाहते थे। उसकी तकलीफों को सुन–सुनकर लोग दाँतों तले उँगली दबा लेते। सलामती की दुआ कबूल हुई इसके लिए शंकर की पत्नी को परम सौभाग्यशालिनी मान रहे थे।

' नही ंतो कोई उनके चंगुल में फँसकर आया है? सब भौजी की तपस्या का फल है।.....ऊपरवाला बड़ा ही कारसाज है। जब रहम करता है तो कोई भी मार नहीं सकता। भीष्म भी नहीं।'

(7)

ये वही दिसंबर का महीना था। जाड़े की ठिठुरती रातें थीं। कुहासे भरे दिन थे और अलाव की गरमी थी, जब हेमा ने कमरे में फाँसी का फंदा लगाकर जान दे दी थी। अपने परिवार की इज्जत के कारण वह कुरबान हो गई।

रात में ही आनन–फानन में घर के पीछे ही उसका दाह–संस्कार कर दिया गया।

अब भी जब दिसंबर का महीना आता है तो लोग गाँव के चौराहे पर अलाव तापते हैं और थेवलबिगहा की चर्चाएँ अचानक मौसम को गरम कर देती हैं।

■

दोयम मूल्य

शादी की सौगात के रूप में मिले हुए खतों को अनीता एक–एक करके अग्नि के हवाले कर रही थी। अन्तिम खत के साथ विनय के अतीत से जुड़ी हुई कड़ी समाप्त–सी हो गई।

आग तो बुझ गई थी पर चिनगारी की राख मुद्दत बाद भी ठंडी नहीं हुई थी। आज वह अचानक प्रज्ज्वलित हो गई थी और उसकी तपिश अनीता महसूस कर रही थी। गुजरे सालों ने अनीता को कई चुनौतियाँ दी थीं और उसने उनका सामना डट कर किया था।

खाने की मेज आज 'गोलमेज सम्मेलन' का दर्जा अख्तियार कर चुकी थी। बहस छिड़ी हुई थी, बातचीत मुद्दों से होती हुई बच्चों और उनसे जुड़े भविष्य पर आकर केन्द्रित हो गई।

पति रह–रहकर चीख उठता था और उसकी हर चीख पर खाना परोस रहे नौकरों के होंठों पर एक महीन–सी मुस्कान की रेखा रोकते–रोकते भी तैर–सी जाती थी। बलदेव मेम साहब की चीख का जवाब थोड़े हौले से देता–

"जी।"

"कहाँ मर गया है साला! अरे बर्तन उठा लो। मेरे लिए थोड़ी–सी चाय बनाओ।" फिर अपने पति की तरफ मुखातिब होते हुए बोली, "आप लेंगे।" पहले–पहल तो पति का मुँह फूलकर कुप्पा रहा पर दूसरी सोच पर उस सूजे मुँह से हल्की–सी स्वीकारोक्ति निकल गई।

इस घर की यही दुर्दशा थी, क्षमा कीजिए, दशा थी। दशा–दिशाविहीन यह परिवार रोज एक मुद्दे को चुटकियों में बहस में तब्दील कर देता था और देश की राजनीति की तरह बहस के अंत में मुद्दा पूर्णतः खो ही जाता था और शुरू हो जाता था आरोप–प्रत्यारोप का दौर। आज बात थोड़ी अलग थी। वार्तालाप का केन्द्र बिन्दु था मैट्रिक में पढ़ रही सुपुत्री और उसका कैरियर। जहाँ बच्चे का भविष्य दाँव पर लगा हो, वहाँ माता–पिता

की भूमिका अग्रणी हो जाती है। प्राथमिक हो जाता है बच्चा और उसका जीवन। जीवन का मूल्यांकन कैरियर से होता है।

"अरे कुछ सोचा है अंशु की पढ़ाई मैट्रिक में कैसी चल रही है।" विनय ने थोड़ा कड़े स्वर में पूछा।

"उसमें सोचना क्या है, मेरी परवरिश है, मेरी शिक्षा–दीक्षा है, मेरी बच्ची मेरा सिर नीचा नहीं करेगी।" अनीता ने थोड़ा हर्ष मिश्रित झुँझलाहट से कहा।

"हाँ, हाँ, देखा है कितना वक्त तुमने अपनी बेटी को दिया है। सारा–का–सारा समय तो तुम सैर–सपाटे और घूमने–फिरने में ही जाया कर देती हो। ऐसे कहीं बच्चों की परवरिश होती है। अरे बच्चों को पालना कोई मजाक नहीं। मेहनत खोजता है, मेहनत।"

"हाँ, हाँ, मेहनत खोजता है मेहनत" विनय का मजाक उड़ाते हुए अनीता बोली। "जब तुमको इतनी ही समझ थी तो क्यों नहीं मेहनत कर डाली। अरे उस वक्त तो सारा–का–सारा समय अपने कैरियर को बढ़ाने और रात–दिन यार–दोस्तों से बात करते बीत गया। अरे, तुम बेटी से ज्यादा वक्त तो कम्प्यूटर और टीवी पर बिताते थे। शायद एकता कपूर के सारे सीरियत तुम्हें ही ध्यान में रखकर बनाये गये होंगे। उस समय बेटी की चिंता कहाँ थी जो अभी इतनी चिन्ता दिखा रहे हो।"

"माना कि पारंपरिक तरीके से उसकी देख–भाल नहीं की पर सी0डी0 और किताबों का तो ढेर लगा दिया है। उसका कुछ अंदाजा है तुमको। सारी उपलब्धि मगजमारी में नहीं है। जिन्दगी में सही तरीका आना चाहिए और सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी। अब देखो तुम पूरी जिन्दगी यूँ ही माथा–पच्ची करती रहीं पर कहीं भी कुछ नहीं कर सकीं? और मुझे देखो, एक ही बार में इतनी बड़ी मल्टीनेशनल कम्पनी की नौकरी झटक ली।"

अनीता सीधे आक्षेप से तिलमिला गई। यह हर बार की तरह इस बार भी था। उसकी क्षमता का गलत मूल्यांकन था और चोट सीधे कलेजे पर लगी थी। दर्द भी अधिक महसूस हुआ।

"अगर मेरी शादी तुमसे 19 साल में न होती तो आज मेरे भी दामन में डिग्री और सफलताओं की लम्बी फेहरिस्त होती। पर अफसोस।" और हताशा उसके चेहरे पर तैर गई। शायद उसके व्यक्तित्व में एक धूल–सी

जमकर बैठ गई थी। आँधी आने पर वह उसका दर्द शिद्दत से महसूस करती थी। आज भी ऐसी बयार चली थी और उसके जख्म की परतों को खोल–सी गई थी। विनय इस पूरे प्रकरण पर हँस–सा दिया, एक ऐसी खिलखिलाहट जो मखौल बनाने के लिए थी। स्त्री अबला है क्योंकि पुरुष को उसका उपहास करने का अधिकार मिला हुआ है। अब वातावरण में थोड़ी–थोड़ी सी कड़वाहट छाने लगी थी और अवसाद भी।

विनय ने पहल की, "यहाँ चर्चा तुम्हारे कैरियर की नहीं हो रही है। तुम्हारा वक्त गया। बात हो रही है मेरी बेटी और उसके भविष्य की।"

अनीता की आवाज में शक्ति थी, "हाँ, तुम्हारी बेटी और उसका भविष्य। जैसे माँ की भूमिका तो सिर्फ नौ महीने की होती है। उसके बाद तो बच्चों की उपलब्धि की सब की सब जमा–पूँजी बाप की हो जाती है। अरे, वह मेरी भी बेटी है और जहाँ तक मेरे वक्त की.....तुम्हें इतनी खलबली मची है तो ध्यान रखना। अभी मुझे समाप्त कर देने का वक्त नहीं आया। वह तो मेरा विवाह तुमसे जल्दी हो गया था वरना अक्सर मेरी उम्र के आस–पास तो औरतों का विवाह होता है।"

"हाँ, होता होगा। जल्दी विवाह होने के कारण तुम्हारे चेहरे पर उम्र का तकाजा बोलने लगा है और शरीर से ज्यादा तो तुम्हारा मन बूढ़ा हो गया है। चलो छोड़ो, बात अपनी बेटी की हो रही है, तुम्हारी नहीं। अब तुम्हारे करने के लिए क्या बचा है।"

अनीता का मन मथने लगा। हाँ, वाकई क्या बचा! जीवन की तमाम जिम्मेदारियाँ तो मानो पूर्ण होने को थीं। बच्चों का जन्म, उनकी परवरिश, सास–ससुर का दायित्व, मानो ढलती उम्र का संकेत था। वह शरीर से ज्यादा मन से वाकई थक गई थी। जिन्दगी की उदासीनता से ज्यादा चुनौतीविहीन जिन्दगी उबा देती है। उनके पास करने को कुछ नहीं था और उससे भी ज्यादा आगे भविष्य की उम्मीद शून्य थी। जो कुछ भी था वह अब बच्चे और उनसे जुड़े सवाल थे। विनय कहीं–न कहीं सही थे। जिन्दगी को स्वीकार कर लेने में शांति थी। नहीं तो, रोज की किचकिच से क्या फायदा था। बेमतलब बात का बतंगड़ बनता था।

"अरे, तुम्हें क्या बेटी की चिन्ता सवार हो गई है। पढ़ाई में तो ठीक–ठाक कर रहीं है। इतने बढ़िया स्कूल में पढ़ रही है। खामख्वाह चिंता कर वक्त बरबाद कर रहे हो।" विनय की पेशानी पर बल पड़ने लगे।

'हाँ, सब–कुछ ठीक जा रहा है, पर इस उम्मीद में हम लोग हाथ पर हाथ धरे तो नहीं न बैठे रह सकते कि आगे भी सब ठीक ही रहेगा।"

"ऐसा क्या होने वाला है जिसको लेकर तुम इतना चिन्तित हो?"

"अरे अपनी बेटी बड़ी हो रही है इसका भी क्या तुमको कुछ ध्यान है। उसके उठने–बैठने पर क्या तुम नजर रखती हो? बेटी की माँ हो तो जाहिर–सी बात है कि जिम्मेदारी बढ़ जाती है।"

"हाँ, लाजिमी है पर ऐसी सतर्कता का कोई कारण विशेष तो नजर नहीं आता।"

"तुम्हें नहीं आता पर मुझे तो आता है।"

"क्या कहना चाह रहे हो।"

"अरे बेटी का मामला है।"

"साफ–साफ कहो।" अनीता के स्वर में थोड़ी चिन्ता थी।

"अरे आजकल का वक्त खराब हैं इतना मीडिया एक्सपोजर है। माना कि अपनी बेटी में खराबी नहीं है। हमारे परवरिश ओर संस्कारों में दिक्कत नहीं है पर जमाने का रूख तो हम नहीं बदल सकते हैं न।"

"तुम कब से पूरे जमाने का ठेका लेकर बैठे हो। अरे, हमारी बेटी को जमाने से क्या लेना–देना!"

"है न। जवान होती बेटी के बाप को क्यों नहीं लेना–देना है।"

"ऐसा क्या जमाने ने जुल्म ढ़ा डाला?"

"ढ़ा तो नहीं दिया पर ढ़ा जरूर देंगे।"

"साफ–साफ बोलो।"

"अरे हमें सबसे पहले तो बेटी को सह–शिखा वाले विद्यालय से हटा देना होगा।"

"क्यों भला!"

"अब बड़ी हो गई है। आजकल के बच्चे समय से पहले सब कुछ समझ जाते हैं। कहीं गलत सोहबत में पड़ गयी तो सब खेल गड़बड़ा जाएगा।"

"कौन–सा खेल?"

"अरे जिन्दगी स्वयं एक खेल है और हम सब खिलाड़ी।"

"ऐसा क्या गजब होने वाला है?"

"होने वाला नहीं है पर हमें सतर्क तो रहना है।"

"अरे बड़ी होती लड़की के साथ हजार चिन्तायें।"

"फिर वह ऐसा कैरियर ले जैसे मेडिसिन या टीचरी का जिसमें कोई लड़कों से बेजा संबंध की गुंजाइश न रहे।"

"पर क्यों? ये तो दकियानूसी सोच है। मैं चाहती हूँ कि वह एम.बी.ए. करे या इंजीनियर बने और बाहर जाये। विदेश भ्रमण करे और जीवन ऐश में बिताये।"

"हाँ, ऐश में बिताते–बिताते हमारी नाक कटवाये। हमारी कितनी फजीहत होगी अगर कहीं कोई गलत संबंध बन जाये तो। तुम्हें क्या है, तुम तो जैसे और चाहती हो कि कुछ गड़बड़ हो।"

अब अनीता के सब्र का बाँध मानो टूट–सा गया।

"हाँ मैं तो चाहती हूँ। भला माँ होकर मैं क्यों अपनी बेटी का अहित चाहूँगी। फिर अगर कोई अच्छी नौकरी पाकर वह किसी से विवाह भी करती है तो क्या अनर्थ हो जायेगा। फिर इस जमाने की तुम इतनी देर से दुहाई दे रहे हो! अरे क्या आज से बीस साल पहले तुम शेफाली को स्कूटर पर नहीं घुमाते थे? वह भी तो एक लड़की थी और तुम्हारे विद्यालय की सहपाठिन जिसके नाम के चर्चे मैं तुम्हारे मामा से लेकर चाचा के मुँह तक से सुन चुकी हूँ। क्या वह किसी की बहन या बेटी न थी?"

विनय मौन रहा और शून्य में ताकता रहा। शेफाली से उसका प्रेम प्रसंग घर से लेकर विद्यालय तक उससे जुड़े हुए हर शख्स की जुबान की चर्चा का विषय था। सब रस ले–लेकर सुनते और सुनाते थे। और शेफाली का नाम लेकर जब उसको छेड़ा जाता था तो उसका चेहरा सुर्ख लाल पड़ जाता और शरीर में एक अजीब–सी सनसनी फैल जाती। वह सनसनी उत्तेजना की पराकाष्ठा होती थी और कहीं–न–कहीं मन गुदगुदा जाता था। उसे शेफाली को छोड़ना पड़ा था। आज शेफाली की जगह अपनी जवान होती बेटी को शायद ढाल पाने का साहस वह न कर पा रहा था।

"वक्त कभी नहीं बदलता, सिर्फ वक्त हमारे प्रश्न के उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हो जाता हैं। शायद जब जीवन प्रश्न बनकर हमसे जवाब माँगता है तब हमारी कल्पनाशीलता और रोमांच समाप्त हो जाता है। तब हम स्वयं

कहीं–न–कहीं तैयार नहीं होते प्रश्न का सामना करने के लिए। जमीनी हकीकत यही है कि वक्त नहीं बदलता, हमारे स्वयं के मूल्य बदल जाते हैं। शायद जीवन को खोजते–खोजते हम स्वयं ही कहीं गहरे तक उसमें इतना खो जाते हैं कि डूबने का खतरा नजर आने लगता है। शेफाली तुम्हारी जरूरत थी इसलिए समय को स्वीकार्य था पर अंशु तुम्हारा कर्त्तव्य है इसलिए तुम्हें आज अस्वीकार्य। दोष जमाने में नहीं, स्वयं में होता है।"

अनीता बोलती जा रही थी और विनय सुनता जा रहा था।

आज वह स्वयं को हाशिये पर खड़ा पा रहा था। वक्त फिल्म की रील की तरह बड़ी तेजी से लिपटता जा रहा था और वह अपने अन्दर बहुत गहरे खिंचाव महसूस कर रहा था। खिंचाव इतना जबर्दस्त था कि टूटने का खतरा मँडरा रहा था।

अनीता की जैसे बरसों पुरानी भड़ास, उसके हृदयपटल पर से जुबाँ की राह बाहर आ गयी थी। कहीं–न कहीं वह जीवन के दोयम मूल्य पर अपने को स्थापित न कर पाने, पति तथा उनके द्वारा दिये गए दंश को, दवा के रूप में बेटी में पा रही थी। जो जिन्दगी राख बनकर बरसों पहले बुझ चुकी थी उसमें से फिर अब धुआँ उठने लगा था। मूल्यों की शाश्वत्ता और विनय द्वारा उनका उपहास आज स्वयं शूल की तरह उसको चुभ रहा था। एक ऐसा धुँधला अक्स दिखायी देता है जिसमें अपनी पहचान ढूँढ पाने में कठिनाई होने लगती है। स्त्री जीवन के दंश की पराकष्ठा उसका स्वयं का परिवार ओर उससे जुड़े प्रश्न होते हैं।

उधर शायद विनय द्वारा शेफाली को लिखा एक अधूरा खत अभी भी किसी दराज में पड़ा था।

■

श्मशान की आग

श्मशान की आग धधक रही थी। उसमें जीवनदायिनी हवा का संचार उसके प्रज्ज्वलित होने में सहायक हो रहा था। वह तब तक जलती रहेगी जब तक उसमें ईंधन है। फिर तो उसको ठंडा पड़ना ही है। आग सब–कुछ जलाकर भस्म कर देती है। बंधन, कच्चे धागे की तरह टूट जायेंगे और यह शरीर एक आत्मा बन जाने किन–किन लोकों में तर्पण के लिए विचरण कर जायेगा।

ज्योति के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। इस लोक की लीला झटपट समाप्त। बस एक सेकेण्ड का ही फासला रहा जीवन और मृत्यु के दरमियान और सब समाप्त।

उसकी चिता के साथ अनेकों की चितायें जली थीं। सब अलग–अलग दिशाओं और लोकों के विचरण के लिए या शायद गंतव्य एक ही था।

सब लोग ज्योति को जलता छोड़ रोते–कलपते घर लौट आये थे। उसके सिवा और चारा भी क्या था। रात बीतते–बीतते दूसरे दिन के भोर कि रक्तिम लालिमा समस्त दिशाओं में गुंजित हो मानों नृतन नाद कर रही थी। अप्सराएँ नृत्योन्माद में लिपट ढोल–मंजीरे की थाप पर मानो झूमने–सी लगी हों। उसका उल्लास रह–रहकर पृथ्वी के कानों से टकरा झंकृत सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था। इस झंकार से मानव कब अछूता रहा है। वह तो सदैव दुख से खुशी की ओर भागता है। ज्योति का पति राहुल भी इससे अछूता कब रहा। वह भी ज्योति के मृत्युपरान्त रातभर करवट बदलता रहा। रह–रहकर चिता की आग उसके हृदय में स्पन्दन पैदा कर देती थी। हर लौ के साथ वह रातभर तड़पा था। ज्योति का चेहरा रह–रहकर उसके मुख के सम्मुख आ–जा रहा था। वह तड़प उठता। वह बिछोह की वेदना थी या कुछ और.....। अग्नि का साथ सब कुछ भस्म–सा कर देता था। उसके साथ भी यही हो रहा था।

दूसरे दिन सुबह घर में सन्नाटा पसरा था। सुबह उठकर चाय बनाकर पिलाने वाला भी उसे कोई न था। उसकी वेदना बढ़ गयी। दुखाग्नि में इस

कृत्य में घृत का काम किया। किसी तरह से अनमने मन से वह उठा और बाथरूम गया। बिना चाय के सुबह–सुबह मन कैसा हो जाता है कोई राहुल से पूछे। माँ भी बगल के कमरे में सो रही थीं। वह भी थकी थीं, उनको उठाना उचित न समझा। फिर वह भी तो वृद्ध हो चली थीं। कब तक गृह कार्य निपटा पायेंगी। जब तक ज्योति थी तब तक वह उनको घर में हिलने भी न देती थी और अब तो बात ही कुछ और है। सुबह–सुबह उसकी कमी माँ को भी लगेगी। लगता है आलसवश वह आँखें नहीं खोल रही हैं।

धीरे–धीरे सुबह का कोलाहल इतना प्रतीत होने लगा कि सबको तन्द्रा छोड़कर बिछावन से उठना पड़ा, पर घर का पूरा कार्य पड़ा था। कैसे निपटे इसकी चिन्ता सबको सता रही थी।

बाथरूम में भी कुछ भी व्यवस्थित न था। मृत्यु के कुछ क्षण पहले तक ज्योति संपूर्ण कार्य बड़ी चंचलता से निपटा गयी थी। जब तक सब समझ पाते कि कैसे आगे बढ़े तब तक धीरे–धीरे शोक–संवेदना व्यक्त करने के लिए लोगों का ताँता लगने लगा।

कुछेक शुभचिन्तक बाल–बच्चों का ध्यान कर भोजन भी साथ में बाँध लाये थे। कुछ राहत मिली। लोगों के आने से घर का सन्नाटा कुछ हद तक कम हुआ। फिर भी राहुल अपने आपको व्यवस्थित न कर पा रहा था। छोटे–बड़े भाई सब अपनी–अपनी पत्नियों के साथ थे, फिर उसका क्या! वह तो अकेला रह गया। हर भाभी को देख उसका दिल धक् से रह जाता, 'वहीं क्यो....'

अलमारी खोलने पर सब कपड़े व्यवस्थित पड़े थे। उसने सोचा कि जब तक और लोग आ जाये तब तक वह नहा–धोकर फ्रेश हो लेगा। यह कपड़े भी कब तक व्यवस्थित रहेंगे। रोज कौन गंदे कपड़े धोयेगा, कौन इस्त्री करके वापस अलमारी में रखेगा। ऐसा कब तक चलेगा। उसको कुछ भी सूझ न रहा था। वह आखिर करे तो क्या करे। कहाँ जाये? पलंग पर निगाह डाली तो चादर में सिर्फ उसकी तरह की सिलवटें थीं, दूसरी तरफ सब सपाट। किसी ने भी रात में करवटें नहीं ली थीं। दूसरे कमरे में बच्चे अभी सो रहे थे। पहले दिन की थकान ने शायद सब–कुछ बोझिल कर दिया था। बच्चे तो अब इतने छोटे भी नहीं रहे कि उन्हें सहारे की जरूरत हो। बड़ा वाला कक्षा बारहवीं में पढ़ रहा था। छोटे को इसी साल सातवीं की परीक्षा देनी थी। सब कुछ बिखर गया पर चलो दोनों बच्चे एक–दूसरे

का सहारा तो हैं। उसका सहारा कौन बनेगा? वह तो अकेला रह गया। लोगों का जमावड़ा पूरे दिन लगा था। शायद शादी–ब्याह और मौतों में लोंगो को विशेष समय मिल जाता है, सामाजिकता निभाने के लिए।

श्मशान की आग ठंडी पड़ने लगी थी। रात के अँधेरे में जब सियार चीख रहे थे और चिताओं की राख ठंडी पड़ रही थी, तब न जाने कहाँ से एक चिंगारी उड़कर राहुल के सीने में आ गिरी। अभी सिर्फ उसको धधकना बाकी था। शायद वह हवा की अनुकूलता का आकलन कर रही थी। नहीं, तो लौ कब की प्रज्जवलित हो उठती।

बड़े भाई को देख राहुल बिफर पड़ा। "भइया अब मैं अपना जीवन कैसे गुजारूँगा। मेरा क्या होगा?"

"देखते हैं", कहकर भाई तो निश्चिंत हो गया पर राहुल को चैन कहाँ।

ज्योति का क्रियाकर्म निपटते–निपटते राहुल को अपनी फिक्र हो आई और उसने ऐलान कर दिया।

"बच्चों के लिए नई माँ की तलाश में निकलूँगा। मैं फिर से विवाह करूँगा।"

उधर दिन बीतते–बीतते ज्योति की चिता की राख ठंडी पड़ चुकी थी। अब उस स्थान पर एक नई चिता की वेदी बन रही थी। इधर तो राहुल में जीवनदायिनी ज्योति जल ही रही थी ओर विरह ने उसको और प्रज्ज्वलित कर दिया था।

आखिरी दिन जब आर्य समाज रीति से हवन–कुण्ड घर के वातावरण को शुद्ध कर रहा था तो उसमें ही जलकर ज्योति की यादें भी भस्म होकर धुएँ के माध्यम से घर से बाहर जा रही थीं।

ज्योति की माँ ने प्रसाद ग्रहण करने से इंकार कर दिया। वह सहज आँखों में आँसू भरकर बोल ही पड़ीं, "जिस बेटी की छठिहारी का प्रसाद ग्रहण किया उसी की मृत्यु का भोग मैं कैसे खा पाऊँगी।"

ज्योति की सास के लाख कहने के बावजूद अन्न का दाना उनके मुँह तक न जा पाया। आज पूजा–पाठ के साथ सूतक खत्म हो गया था। समयाभाव में मृत्यु का सारा कार्य आर्य समाज रीति से आनन–फानन में सम्पन्न करा दिया गया था। बच्चों को स्कूल जाने की हड़बड़ी थी, पति को ऑफिस। घर में भी समेटने वाला कोई न था। कैसे सारा कार्य वृहद् रूप से निपटता।

उधर शायद ज्योति की आत्मा अंततः चिर में विलीन हो गई थी। अब एक अजब जद्दोजहद जीवन जीने की कोशिश के तौर पर शुरू हो गई। न चाहते हुए भी राहुत को ज्योति से ज्यादा अपनी अस्तव्यस्तता पर ध्यान आ जाता और एक दिन बिगुल फूँककर अपने लिए लड़की खोजने निकल पड़ा।

"इतनी हड़बड़ी भी क्या है।" नाते–रिश्तेदारों ने पूछा। "थोड़ा वक्त बीत जाने दो फिर खोज कर लेना। बच्चों को थोड़ा समय दो। उन्हें तुम्हारी जरूरत है। फिर माँ नहीं है तो शायद तुमसे ज्यादा वह माँ की कमी महसूस करते होंगे। उन्हें साल दो साल में व्यवस्थित कर लो फिर देखा जायेगा। उनके साथ वक्त बिताने से उनका भी अकेलापन दूर होगा।"

"मैं आपकी सब बातें मानता हूँ। मैं भी तो बच्चों के लिए माँ की ही तलाश कर रहा हूँ। ज्योति की कमी तो कोई औरत ही पूरी कर सकती है। मैं ऑफिस में व्यस्त रहूँगा तो यहाँ उनकी देखभाल कौन करेगा? माँ भी बूढ़ी हो चली हैं और पिता लाचार। फिर दाई–नौकर से क्या कभी घर चला है?" राहुल ने एक सरसरी निगाह अपनी माँ की तरफ डाली।

उन आँखों में हलचल हुई पर फिर वह स्थिर हो गई। उनमें भी मौन स्वीकृति थी। नाते–रिश्तेदारों ने जब तक उनकी तरफ देखा तब तक वह झुक चुकी थीं।

महीना–दो महीना बीतते–बीतते राहुल के पिता की हालत चिन्तनीय होने लगी। बुढ़ापे में बहू को खोने का गम उनको अंदर–ही अंदर सालता रहा, भीतर तक तोड़ता चला गया। उन्होंने खाट पकड़ ली।

इस बीच बिरादरी में चर्चाओं का बाजार गर्म हो गया कि राहुल विवाह की तैयारी में है। सब तरफ से लड़कियों की फोटो और बायोडाटा उस तक पहुँचने लगे। पता नहीं कहाँ से इतनी कुँवारी कन्याओं की फौज निकल आयी। कैसे और कहाँ यह खपती हैं इसे तो समाज ही जाने।

राहुल था, कि उसको कोई जँचती ही न थी। विधवा का दुख उससे देखा न जाता था। कैसे वह विधवा और उसके बच्चों को स्वीकारेगा। परित्यक्ता के तो लक्षण ही ठीक न थे। तभी तो पति को छोड़ आई। फिर उसे तो अपने बच्चों के लिए माँ की तलाश थी। एक अदद अच्छी माँ जो एक अच्छी पत्नी भी साबित हो सके। फिर उसे एक ऐसी औरत की तलाश थी जो स्वयं के बच्चे न चाहती हो।

यह पूरा डाटा कोई बहुत आसानी से तो मिलने नहीं वाला था। खोज जारी थी। इस भरे–पूरे संसार में तो किस्म–किस्म के लोग रहते हैं जो कहीं–न–कहीं फिट हो ही जाते हैं।

अंततः राहुल को अन्तहीन खोज का एक मुकम्मल जहाँ मिल ही गया। एक सुन्दर–सी लड़की जो अभी तक कुँवारी थी और, जिसका पिता ज्यादा दान–दहेज में सक्षम न था, तैयार हो गई। उस लड़की की आँखों में जो माँ बनने का सपना था उसे प्रथम मिलन में ही तोड़ दिया गया। अपनी बीतती जवानी और प्रतीक्षारत प्रौढ़ावस्था को देखते हुए उस लड़की ने तुरन्त हामी भर दी।

उसकी हामी के साथ उसके परिवार में हर्ष का वातारण तैर गया। दहेज भी अधिक नहीं लगना था। बात आनन–फानन में तय हो गई और शीघ्रतम ही विवाह की तारीख तय हो गई। बच्चों ने भी अपनी होने वाली माँ को देखकर स्वीकृति की मोहर लगा दी थी।

विवाह आर्य समाज रीति से संपन्न होगा निश्चित हुआ। एक तो शादी का खर्च भी कम आयेगा, दूसरे सहजता और सरलता की इस विवाह में दरकार थी। राहुल का एक बार मन किया कि विवाह में धूमधाम होनी चाहिए पर लोकाचार को देखते हुए उचित–सा नहीं प्रतीत हुआ।

तिथि शारदीय नवरात्र की नवमी को तय हुआ। देवी उपासना माहौल को भक्तिमय बना देती है। सब तरफ मन्त्रोच्चार और पूजा की गहमागहमी रहती है। देवी जाग्रत हो समस्त समाज में शक्ति का संचार करती है। ऐसे में विवाह की इससे बेहतर और क्या तिथि होगी!

सामने हवनकुण्ड जल रहा था। वैदिक मन्त्रों के बीच अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी। उसमें जैसे–जैसे आहुति डाली जा रही थी, वैसे–वैसे वह और तेजी से धधक उठती। अग्नि का यही धर्म है–धधकना। वह हर तरफ सिर्फ वेग से प्रज्ज्वलित होती है। घृत उसको हवा देता है और फिर वह सब–कुछ मानो लील जाती है। जीवन रूपी अग्नि में आज राहुल की कामाग्नि धधककर अपने परम वेग में थी।

ज्योति की कमी उसको पहली बार आज खली पर जैसे ही लौ की ज्वाला ऊपर हुई और उसकी आँच बगल में बैठी उसकी ब्याहता के ऊपर पड़ी कि उस आँच में ही ज्योति की याद जलकर भस्म हो गयी। अब सिर्फ लौ–ही–लौ थी और एक तीव्र लालसा।

मन्त्रोच्चार समाप्त हुआ और आखिरकार बच्चों को माँ मिल ही गयी। नई बहू के स्वागत में आज शाम एक वृहद् भोज का आयोजन था। आखिरकार समाज से भी तो इसकी स्वीकृति मिलनी ही चाहिए। लोग भी देखें कि राहुल की नई ब्याहता कैसी है। राहुल ने एक निगाह कनखियों से अपनी नई–नवेली दुल्हन की ओर डाली। वह इस उम्र में भी लाज की गठरी बनी हुई थी और राहुल के चेहरे पर एक विजय मुस्कान तैर गयी।

राहुल की माँ ने नई बहू का स्वागत घर में किया। राहुल उसको अपनी पुरानी पत्नी की फोटो के पास लेकर गया। फ्रेम में मढ़ा हुआ एक दैदीप्यमान चेहरा। उसके ऊपर एक सूखे फूलों की माला चढ़ी हुई थी। आँखें निस्तेज थीं क्योंकि फ्रेम किसी कलाकार की कल्पना मात्र था। ज्योति का फोटो दिखाकर एक निस्तेज कैनवास का मजमून तैयार कराया गया था।

राहुल ने अपनी ब्याहता का सामना उससे कराया। ज्योति का फोटो देख आज पहली बार राहुल के ह्रदय में हूक उठी क्योंकि आज प्रथमतः उसने उन आँखों में कुछ महसूस किया। हाँ, शायद विगत इतने महीनों में पहली बार उनमें हलचल हुई थी। वह कौंधी थीं। शायद एक विद्रूप–सी हँसी आकर उनको छूकर निकल गई थी। चेहरा मौन था पर कैनवास हँस रहा था। फोटो मानो ठग रहा हो, राहुल का मजाक बना रहा था।

नई ब्याहता ने भी एक सिहरन–सी महसूस की। मानो ज्योति उसको जीवन का आर्शीवाद दे रही हो। कुछ मौन शब्द उसके बदन से टकराकर नभ में विलीन हो गये–

'जाओ सुहागन, मैंने तुम्हें अपना संसार सौंप दिया। अपना अस्तित्व, अपना वर्चस्व दे दिया पर उसके साथ तुम्हें एक कर्त्तव्य भी, जिम्मेदारी भी, जो तुम्हें हमारे कायर पति की निभानी है। एक ऐसे पति की जो भगोड़ा है, हर क्षेत्र में हताश। ये मेरी मृत्यु के बाद अपनी ओर बच्चों की जिम्मेदारी को उठा न पाया तो तुम्हारी क्या उठायेगा। इसमें तो इतनी भी शक्ति नहीं कि ये तकलीफों का मुकाबला करे तो फिर ये तुम्हें क्या सँभालेगा। जाओ इसकी आग को तृप्त करो। इसे जीवन का संदेश समझाओ। जो मैं इसे न सिखा सकी तुम सिखाओ। पति और पिता का कर्त्तव्यबोध कराओ। जीवन भावनाओं का नाम है पर उससे भी ऊपर हर रिश्ते के प्रति एक दायित्यबोध

है, वह भी बताओ। सिर्फ स्व के लिए जीना कोई जीना है? यह तो एक दिन भी स्वयं की जिम्मेदारी नहीं उठा सका। ये तुम्हें क्या सँभालेगा।'

राहुल और उसकी पत्नी की नजरें एक साथ फ्रेम पर टिकीं। चित्र मौन था। मृत्यु ने उसमें से संवेदना को भी छीन लिया था। उनका जीवन चक्र तो मानो अनवरत् चल रहा था।

दूसरे दिन दोनों को गोवा हनीमून पर जाना था। बच्चे अपने दादा–दादी के पास रहेंगे। नई माँ को पिता के साथ भी तो वक्त चाहिए। किस नये जोड़े को एकान्त रास नहीं आता। फिर राहुल ने तो इस दिन के लिए बड़ी तैयारी की थी। वह बड़े–बड़े बच्चों को कैसे घुमाने ले जाता। उसकी पत्नी क्या सोचेगी। इस उम्र में वह उसे तो नहीं खो सकता न।

■

कबूतरबाजी

अंग्रेजों के जमाने में बिगड़ैल रईसों, रईसजादों का शगल था कबूतरबाजी। न अंग्रेज रहे, न वह अंग्रेजियत और न ही बिगड़ैल रईस, पर अब भी कबूतरबाजी बदस्तूर कायम है और अपना झण्डा गाड़े कायम रहेगी, शायद कयामत तक।

हाँ, जब तक कबूतर असामान पर स्वच्छंद रहेंगे तब तक उन्हें जीवित पकड़–पकड़कर लड़ाया जाता रहेगा। जमीनी लड़ाई अस्तित्व की है, अहं की है। प्राचीन काल से मानव अपने वजूद की खातिर लड़ाई करता आया है और पाशविक हिंसा के तहत निरीह जीवों को सताता आया है। उनके बलिदान पर स्व को जीतता आया है और ये निरीह कबूतर, ये किसकी लड़ाई लड़ रहे थे ? इन्हें स्वयं कहाँ पता ? बेमतलब लड़ाई, फालतू का शगूफ़ा। गैरमामूली शगल।

लखनऊ एक पुराना शहर है। तहजीब और तामील का उम्दा तरन्नुम। जिधर देखो नवाबियत और नफासियत। शहर मानो जिंदादिली की सफेद अर्क में मुलायमियत से लिपटा हो। वैसी ही मुलायम खाल जैसी कि एक कबूतर की होती है। छोटे नवाब चाँद शकील खान बेहद नफीसजादे थे। पुराने लखनऊ में रहते–रहते शायह वह भी अपने को पुराने जमाने के उम्दा शो–पीस–सा गिनते थे। सुनते हैं कि बाप–दादा के पास बेहद सम्पत्ति थी। इतनी सम्पत्ति कि उसकी थाह लगाना बेहद कठिन था। इसी गलतफहमी की याद में गोते लगाते पर्त–दर–पर्त खुलती चली गयी और अब जो बची थी वह सिर्फ लंगोटी थी। वह भी उतर गयी तो शर्मोहया को छुपाने के लिए शायद जान नाकाफी है। ठहरे तो रईसजादे! बाप–दादाओं की गिरती हुई कोठी में जड़ी हुई नक्काशीदार जालियाँ अभी भी इस दुनिया की बढ़िया हालत बयाँ करती थीं और अपने खण्डहर हो चुके कबूतरखाने में नवाब चाँद शकील खान को कबूतर पालने का बेहद शौक पनप पड़ा। ये शौक कैसे पड़ा कैसे नहीं, इसकी कहानी से रूबरू हो जाना ही संजीदगी का कार्य होगा।

गोया हुआ कुछ यूँ कि अपने घर की छत पर खड़े–खड़े नवाब चाँद साहब की निगाहें चाँदनी रात में दो–चार हो गयीं पड़ोस की हमीदा बानो से। अब निगाहें क्या चार हुई कि दिल के भीतर, बहुत भीतर कबूतरों की गुटरगूँ चालू हो गई और कबूतरों के मार्फ़त संवाद पहुँचाने और पाने का सिलसिला बदस्तूर चालू हो गया।

उधर हमीदा को चाहने वाला उसका एक और आशिक भी था। नाम था उसका छगन। छबीला बाँका नौजवान। अभी–अभी मानो बचपन बिछुड़ा हो और जवानी की दहलीज पर एक हल्की–सी पहली दस्तक हुई हो। इस मुकाम पर तो हमीदा का सौन्दर्य एक करारा झटका था जिसके पाश में आकर वह उससे बेइंतहा प्रेम करने लगा। यह एकतरफा प्रेम खतोकिताबत से कुछ समय पहले से अपनी रफ्तार रफ्ता–रफ्ता पकड़ने लगा। हमीदा भी इठलाकर कभी छगन तो कभी नवाब साहब की तरफ छुप–छुपकर इशारे करती। उसके लिए तो यह महज एक खेल था। बचपन बिछुड़ने के पहले का जीवन का खेल जिसमें फतह तो सिर्फ उसके रूप और यौवन की ही होनी थी। हर रोज वह दर्पण में अपने को देखते हुए उस नामुराद शीशे की ही धत्ता बुला देती। जिसने उसके अक्स को बड़ी बेदर्दी से अपने फ्रेम में कसकर पकड़ा हुआ था। वह हर रोज उससे आजाद हो स्वच्छन्द आकाश में उड़ना चाहती थी। वह इठलाती हुई अपनी कहानी अपनी सहेलियों को बयाँ करती तो वे सब भी छुप–छुपकर हमीदा के सौन्दर्य से ईर्ष्या करतीं और उसके भाग्य से जलतीं। जीवन के इस खेल में वह सब पराजित एवं अपमानित–सा महसूस करतीं।

शायद यह अपमान ही था कि उसकी एक निकटतम सहेली ने जाकर नवाब साहब के कान भर दिये, ''क्या नवाब मियाँ, बड़ा अपने इश्क पर गर्व है। हमीदा तो छगन की है, छगन की। उसको मैंने परसों छत की मुँडेर से छगन के कबूतर से कोई खत लेते देखा है।''

नवाब साहब का मुर्दा खानदानी खून जाग उठा। ये तो ठीक नहीं है। बिलकुल भी ठीक नहीं है। ये मजाल छगन की कि वह मेरी माशूका को बरगलाये! मैं उससे निपट लूँगा। बाँहें ताने, मूँछों पर ताव देते हुए नवाब साहब को बड़ी मुश्किल से उनके दोस्तों ने सँभाला।

दोस्तों से सलाह–मशविरा हुआ, ढेर चर्चाएँ हुईं। जनाजे निकालने तक की तैयारियाँ बयाँ हो गयीं।

नवाब साहब ने अपने पुराने संदूकों को खँगाला, कपड़ों को झाड़ा पर उनसे पुरानी पिस्तौल गिरना तो दूर एक देशी कट्टा तक न गिरा। असलों की बड़ी–बड़ी कहानियाँ बाप–दादाओं की सुन बचपन बीता था। अंग्रेजों के समय तो बड़ी–बड़ी तोपें हुआ करती थीं पर अब तो एक दोनाली भी दुरुस्त न थी। सारा कोना छानने के बाद भी खाक हाथ न लगी। अतः मरने–मारने के खयाल को फिलहाल कुछ वक्त के लिए विराम देना उचित प्रतीत हुआ।

''देखो नवाब, जान ले लेना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। एक तो मारने में वक्त जाया करो और उसके बाद पुलिस से भागने में। अगर खुदा न खास्ता कहीं पकड़े गये तो खलास। कौन बड़ी उपलब्धि है! न जिन्दगी रहेगी न हामिदा। अरे इससे तो अच्छा कोई मुकाबला–सुकाबला कर लो। जान है तो जहान है। और हम सब तड़पा–तड़पाकर छगन को मारेंगे। साला हारेगा और प्यार को खोयेगा। फिर जीवन–पर्यन्त हमीदा की याद में रोयेगा।''

मंत्रणा में ढेरों संकल्प–विकल्प पर निर्णय हुए। कैसा मुकाबला हो इस पर भी विचार हुआ। नवाब साहब पढ़े लिखे थे नहीं, पर माशाअल्लाह थे खूबसूरती की मिसाल। बचपन धूल फाँक–फाँकर बीता था। छगन ठहरा नवदौलतिया पट्ठा। पढ़ने में ठीक–ठाक। ये गोया अलग बात है कि पढ़ने में कभी मन लगा नहीं। नतीजन दोनों ही दावेदार ठहरे निखट्टू टट्टू।

धूल फाँकते–फाँकते कभी मन किसी खेल में भी न लगा। जिन्दगी तो रह गयी सिर्फ रेलमपेल में। इसलिए खेल का मुकाबला दोनों के बीच हो पाना असम्भव–सा हो गया। नहीं तो दोनों को भिड़ा देते कुश्ती में या फिर कबड्डी में और तू–तू–तू–तू करके हमीदा बानो के भाग्य का फैसला हो जाता। ऐसा बहुत ही मुश्किल–सा प्रतीत हो रहा था। जीवन की दौड़ में भी ठहरे दोनों आलसी। नहीं तो प्रथम आने वाले के हाथ में हमीदा का हाथ होता।

दाँव पर था हमीदा का हाथ और निर्णय हुआ कि निर्णायक खेल होगा कबूतरबाजी। चूँकि दोनों ही हाथ माँगने वालों के पास मात्र कबूतर था जिसको लड़ाया जा सकता था और उसी पर निर्णय होना था कि हमीदा किसकी होगी। मजे की बात कि जितने भी गुर्गे मंत्रणा में शामिल थे सबको सूचना दे दी गयी थी कि इस खबर को अन्त–अन्त तक गुप्त रखना है।

हमीदा के कानों तक जूँ भी न रेंगने देना है। कहीं ऐसा न हो कि कबूतर के साथ–साथ हमीदा भी फुर्र हो जाये तो तमाशा का कोई औचित्य न रहेगा।

पूरे समूह में रातोंरात पोस्टर छपने लगे और दूसरे दिन अहले सुबह मुर्गे की बाँग पर जंग छिड़ने की तैयारी हो गयी। छगन को भी ललकारकर चुनौती दे दी गयी। पुरस्कार में हमीदा का हाथ था और हाशिए पर दो निरीह पक्षियों को लड़ाना था। बड़े तीसमारखाँ की तरह यह काम था। ''कौन अपनी जान सांसत में लगी है'' ललकार के जवाब में छगन बोला। दोस्तों ने चेताया, समझाया पर सब व्यर्थ। इश्क और मुश्क में सब जायज है।

'अगर हार गये तो हमीदा के साथ–साथ इज्जत भी जायेगी। चुप रहने में और भी बेइज्जती है। वैसे भी कबूतर लड़ेंगे। क्या फर्क पड़ता है। और गुटरगूँ तो उनकी होगी। ये तो सीधी तुक्के की बात है और अगर मेरा वाला जीत गया तो चाँदी कटेगी।'

पूरी रात दोनों सूरमाओं ने अधखिली मूँछों पर ताव देकर बितायी। सुबह की पहली किरण फूटने से पहले दोनों अपने कबूतरखाने में थे। छगन ने सारी तैयारी के बाद कबूतर को टीका लगाया और माँ भवानी का आर्शीवाद लिया। आर्शीवाद लेने के बाद भविष्य के सुनहरे सपने उसकी अधखुली आँखों में तैर गये। और हमीदा को पाने की ललक उत्तेजना बन गयी।

उधर हमीदा के पिता को गुप्त सूचना के आधार पर इस सारी कार्रवाई की जानकारी मिल गयी थी।

''हमीदा'' पिता ने जोर से चीखकर बेटी को बुलाया, लानत–सलामत देने के बाद उसे हिदायत दी गयी, ''ये सारी करतूतबाजी तुम्हारे ही बढ़ावे पर है। अरे जवानी के जोश में छत पर जाकर और मुस्कराओ। अरे मन तो कर रहा है कि तुम्हारा ही थोबड़ा इतना बिगाड़ दूँ कि न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।'' मारे क्रोध के हमीदा के बाबूजी ने कुर्सी का सिरा कस के पकड़ लिया। ''भला होता, पैदा होते ही दफन कर दिया होता तो आज इज्जत की जूती तो न बजती। बड़ा शौक चर्राया है लड़कों को ताकने का। अब पता चला कि छुप–छुपकर छत पर क्यों जाया जाता था! जवानी का जोश है जब उफान उतरेगा तो नीचे जमीन भी न मिलेगी।'' और हमीदा के पिता चिल्लाते हुए जोर से काँपने और हाँफने लगे।

हमीदा सिर नीचे किए हुए जमीन को अपने नाखूनों की उँगलियों से छेड़ती रही। उसे ये खेल लग रहा था। अपमान और जगहँसाई की परिधि से अभी उसकी उम्र बाहर थी। बचपन गुड्डे–गुड़ियों के खेल में बीता था और यह भी खेल से अधिक कुछ न था। हाँ, यह बात फर्क है कि यहाँ खेल का पात्र स्वयं हमीदा थी। वह खिलौना बनी कभी इस हाथ तो कभी उस हाथ फेंकी जा रही थी।

पिता ने क्रोध में फरमान सुनाया, ''सामान बाँध लीजिए। अभी और इसी वक्त। भोर होने के पहले हमें यहाँ से निकल लेना है। हम यह कस्बा छोड़ रहे हैं तब तक, जब तक तुम्हारे हाथ पीले नहीं हो जाते।'' और चेहरे पर कठोरता लाते हुए हमीदा के पिता बोले, ''तुम्हारे रिश्ते की बात शमशुद्दीन से हो गयी है। वह रिश्ते में तुम्हारी माँ के फुफेरे भाई का बेटा है। निकाह कल रात पढ़वा दिया जायेगा।''

हमीदा के मुँह से जोरों की चीख निकल गयी। वह शमशुद्दीन, वह तो जल्लाद था जल्लाद। शायद बकरा हलाल करने में भी उसे आनन्द आता था फिर हमीदा तो एक स्त्री थी। उसने और जोर से चीखना चाहा, ''नहीं अब्बा, वह तो जल्लाद है, वहशी है। वह मेरे को मार डालेगा। मैं जीना चाहती हूँ। अब्बा, मैं जीना चाहती हूँ।'' आवाज एक हल्की–सी सिसकी बनकर दब गई। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। दो मसखरों के खेल में वह मोहरा बन गई। और बिना गलती के वह आज सजा भुगत रही थी। दो प्रेमियों की आपसी टकराहट में वह माशूका मोहरा मात्र थी। आँसुओं की धार उसके गालों पर छलक आई। वह हिचकी बाँधकर रोने लगी। अपनी बरबादी का जनाजा वह कपड़ों की तह में लपेट–लपेट सूटकेस में धरने लगी।

उधर भोर फटने के पहले मैदान में भीड़ इकट्ठी होने लगी थी। अभी दोनों ही उस्ताद मैदान में नहीं उतरे थे पर उनके गुर्गे और चमचे जमकर नारेबाजी कर रहे थे। दोनों पक्ष ही अपनी–अपनी जीत को लेकर निश्चिन्त थे। कहीं भी हार का जिक्र न था। उत्साह और जोश दोनों खेमों में देखते ही बनता था। मिनट–मिनट में मोबाइल बज उठता और तैयारियों की समीक्षा का विस्तारपूर्ण ब्यौरा प्रकट कर दिया जाता। सट्टेबाज भी अपनी–अपनी उपस्थिति का अहसास करा रहे थे। खेल के फैसले के वजूद पर दाँव लगा हुआ था। सट्टे की कीमत बढ़ती जा रही थी और खेल उम्दा, रोमांचक होता जा रहा था।

नवाब साहब अपने कबूतर शेरअली को देखकर जो से चिल्लाये, ''वाह मेरे पुत्तर भिड़ जा। और मार और मार, मार डाल।'' शायद नवाब साहब की आवाज पहचानकर या फिर जोश में शेरअली सामने वाले कबूतर पर चोंच से जोर–जोर से वार करने लगा। वार करते–करते पता नहीं क्या हुआ कि नवाब साहब का कबूतर चुप हो गया और शान्त बैठ गए। छगन का कबूतर जो थोड़ा कमजोर पड़ रहा था, इठलाता हुआ एक तरफ हो गया।

उधर से नवाब साहब और उनके गुर्गे चिल्लाये, ''शेरअली, च च च च'', थोड़ा दाना खिलाया, लालच दिया, ''जा मार डाल साले काफिर के कबूतर को।''

छगन जो अब तक अपनी उत्तेजना दबाये हुए था सीधे दौड़ता हुआ दूसरी तरफ से आया और नवाब साहब का कॉलर पकड़ लिया। उसकी आँखों में खून उतर आया था।

''बेहूदे, थू! काफिर किसको बोला ?'' छगन के पीछे–पीछे उसके गुर्गे भी आ गये थे। सबने नवाब साहब को पकड़कर धरती पर धकेल दिया। नवाब इस अचानक हुए हमले से हतप्रभ हो गये। उनके गुर्गे भी बात को समझ न पाये। और इससे पहले कि सँभलने की कोशिश करते, छगन ने पिस्तौल निकाल ली और नवाब का कॉलर पकड़कर चिल्लाया, ''साला गाली देता है। काफिर तुम्हारा बाप था। तभी तुम्हारे जैसे को पैदा किया।''

नवाब की आँखों में डर उतर आया। अपनी हिम्मत बटोरकर बोला, ''पाजी, तुम कौन–सी....'' और थूक हलक में अटक गया।''

पीछे से गुर्गों में उत्साह अधिक था। इस तमाशे में उनको मजा आ रहा था। दर्शकदीर्घा में सन्नाटा पसरा था मानो साँप सूँघ गया हो। छगन के चमचे चिल्लाये, ''मारो सालों को!'' और कहीं पीछे से एक कट्टा उठा और नवाब के एक गुर्गे के ऊपर कस के पड़ा। नवाब का गुर्गा वहीं पर ढेर हो गया। उसके मुँह से एक जोर की चीख निकली और वक्त भी जाया नहीं हुआ, उसके प्राणपखेरू तुरन्त उड़ गये। शोर–शराबा सुन कबूतर का जोड़ा आकाश की अनन्त ऊँचाईयों को छूता हुआ दृष्टि से लोप हो गया। आवाज इतनी तेज थी कि चारों तरफ सन्नाटा पसर गया।

छगन और उसके गुर्गों को तो मानो साँप सूँघ गया और नवाब और उसकी पार्टी के तो पैरों तले की जमीन खिसकी हुई थी। क्या करने निकले थे और क्या हो गया।

एक जीता–जागता हुआ आदमी मिनटों में लाश के ढेर में तब्दील हो गया था। नवाब को तो मानो लकवा ही मार गया, गोया सोचा था क्या, हुआ क्या। तभी पीछे से भीड़ में कोई तत्व चिल्लाया, ''खून, खून!''

दूसरा चीखा, ''पकड़ो, पकड़ो सालों को! एक भी भागने न पाये।''

तीसरा चीखा, ''पुलिस को बुलाओ।''

अभी तक जहाँ शान्ति और उत्साह का माहौल था वहाँ भीड़ एक उपद्रवी शक्ति में तब्दील हो गयी।

नवाब और छगन को, तो जब तक कुछ सूझता तब तक कहीं से एक खाली बोतल आकर छगन के सिर में लगी। और उस बोतल को फेंकने में इतनी शक्ति थी कि वह सिर पकड़कर जमीन में बैठ गया। उसके हाथ में ढेर–सा खून आ गया।

चारों तरफ अफरातफरी और भगदड़ का माहौल हो गया। अनियंत्रित शक्ति हमेशा विनाशकारी होती है। इस भीड़ में यही हुआ। आफत–ही–आफत। कबूतरबाजी का तमाशा स्वयं एक तमाशा बनकर रह गया। सब तरफ भगदड़ और चीख–चिल्लाहट मच गयी।

भीड़ का फायदा उठा छगन तो भाग निकला पर नवाब वहीं लमालेट पड़े रहे। कुछ लोग गिरे हुए नवाब के ऊपर पैर रखकर भाग रहे थे।

एक हवाई फायर हुआ, शायद भागते हुए किसी ने देसी कट्टे से आवाज निकाली थी। उससे इतना शोर पैदा हुआ कि इधर–उधर पेड़ों में दुबकी हुई चिड़ियाँ शोर करते हुए आकाश में उड़ने लगीं।

देखते–ही–देखते मोहल्ला एक दंगे में तब्दील हो गया। सब तरफ अफरा–तफरी और ऊहापोह की स्थिति। खेल–खेल में एक छोटा–सा मखौल भयानक बन गया और पूरे इलाके को अपनी गिरफ्त में ले लिया।

बात एक कान से दूसरे कान तक फैल गयी। यह मामला एक जातीय और धार्मिक विवाद का रूप लेने लगा। एक काफिर ने एक सच्चे मुसलमान का खून कर दिया, यह घटना आग में घी की तरह फैलने लगी। पूरे मुहल्ले की सारी लड़कियों को अपने–अपने घरों के कमरों में बन्द कर दिया गया।

उधर हमीदा और उसके अब्बा इन सबसे अनभिज्ञ बस स्टैन्ड पर खड़े अपने सफर की बस का इन्तजार कर रहे थे। अब्बा हुजूर के चेहरे पर चिन्ता और पसीना साफ–साफ झलक रहा था। वे दाँव शुरू होने के

पहले निकल भागना चाहते थे, पर हुआ ठीक उल्टा। जिस बस से और जिस सफर पर उनको जाना था वह बस आई ही नहीं। अतः वह दूसरी बस के इंतजार में थे कि तभी एक तरफ से आती हुई भीड़ को देखकर अब्बा हुजूर की चिंता बढ़ गई। उत्तेजित युवक कुछेक अस्पष्ट नारे लगाते हुए और जोर–जोर से चिल्लाते हुए आ रहे थे। उस भीड़ में से ही कुछ युवक दुकानों के शटर गिरा रहे थे और व्यर्थ की हाय–तौबा मचा रहे थे। अब्बा ने हमीदा को जोर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और सीने से चिपटा लिया। उससे सुरक्षित जगह अपनी बेटी के लिए उन्हें और कोई न मिली। आखिर इस समय भागते भी तो कहाँ भागते और क्यों भागते!

आखिर क्यों?

जब तक क्यों का उत्तर मिलता तब तक पूरी भीड़ सुनामी की तरह आई और अपने आगोश में हमीदा को उसने समेट लिया।

''मारो, मारो!''

एक सुन्दर–सी लड़की पर भीड़ और मदमस्त हो गयी। इससे पहले कि उस लड़की की जाति और धर्म का ठीक–ठीक निर्धारण हो पाता उसका लड़की होना ही स्वयं गुनाह हो गया। जब तक उसके अब्बा चिल्ला पाते 'यह काफिर नहीं है' हमीदा की शख्सियत टुकड़ों–टुकड़ो में विभक्त हो गयी थी। उसके तन और मन को चिथड़ों–चिथड़ों में कर, भीड़ की उत्तेजना शांत हुई। हर संग्राम के मूल में शायद प्रतिशोध होता है और हर प्रतिशोध एक बलि खोजता है। औरत का सृजन ही तो बलिदान के लिए हुआ है। हर पग पर अगर कहीं कोई बलि की आवश्यकता पड़ती है तो उसमें औरत के व्यक्तित्व का विखण्डन है। मानसिक, शारीरिक और आत्मिक तौर पर औरत का वजूद हर क्षण बलि का बकरा बन रहा है और हमीदा कोई अपवाद न थी। औरत होना उसका दुर्भाग्य हो गया और उसको मारकर भीड़ थोड़ी शान्त हुई और नियंत्रित भी।

हमीदा की क्षत–विक्षत, खून से लथपथ पड़ी लाश को देख उसके अब्बा बेहोश हो गये। जब हमीदा का जिस्म तार–तार किया जा रहा था तो उसकी हर चीख पर उसके अब्बा भीतर तक काँप जा रहे थे। अपनी बेटी को दरिन्दों से बचा पाने का साहस वह शायद कहीं भीतर तक खो चुके थे। बेटी के जन्म के बाद से ही वह इंसान के तौर पर कमजोर पड़ चुके थे और आज की दरिन्दगी देख उनकी शक्ति भी खो गई। बेटी के बाप जो ठहरे।

बेटी के जन्म ने, उसकी अस्मिता ने उनको कमजोर बना दिया था। आज बेटी की नंगी लाश को ढकने का न उनमें साहस था और न उनके पास कफन। बेटी शायद हमेशा बाप को ही नंगा कर देती है।

एक और खून पीकर भीड़ की जीभ ने लपलपाना छोड़ दिया था। ''अरे, ये तो अपनी हमीदा है, हमीदा।'' भीड़ में से कोई बोला, पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। तभी कहीं से सायरन बजाती पुलिस की जीप आ गई।

एक घन्टे बाद सायरन बजाती पुलिस और प्रशासन की मदद से शहर की स्थिति थोड़ी नियंत्रित हुई। रिक्शे पर चिल्लाते हुए माइक ने घोषणा कर दी कि जिले के इस इलाके में आपातकालीन कर्फ्यू घोषित किया जा रहा है। सभी व्यक्तियों को घर के अन्दर रहने का तामिला दे दिया गया। धीरे–धीरे करके भीड़ भी तीतर–बितर होने लगी। हमीदा की लाश को पुलिस वाले लावारिस समझ शवगृह ले गये। वहाँ अन्त्यपरीक्षण के लिए उसकी लाश के साथ भी छेड़छाड़ की गयी। उसके बेहोश अब्बा को भी गाड़ी में डालकर सदर अस्पताल पहुँचा दिया गया।

छगन और नवाब जमींदोज हो गये। उनके गुर्गे और चमचों को भी शहर से बाहर भागने में वक्त न लगा। जब तक शान्ति बहाल नहीं होती है तब तक शहर में घूमना तो दूर घुसना भी न था। पुलिस ने छगन और नवाब के ऊपर प्रथमदृष्ट्या रिपोर्ट दर्ज कर जी। छगन और नवाब दोनों ही अपनी तरफ से निश्चिन्त थे।

''पुलिस को तो पढ़ाया जा सकता है'' छगन बोला। हमीदा के मरने की खबर किसी ने छगन को दी। एकबारगी तो छगन के चेहरे पर थोड़ा–सा तनाव आ गया। शायद आँखों में करुणा का भी संचार हुआ। फिर सब–कुछ सपाट हो गया। थोड़ी देर मौन रहने के बाद छगन सिर्फ इतना बोल पाया, ''साली क्या चीज थी। चलो, अच्छा हुआ मर गयी। अब तो झगड़ा ही शान्त हो गया। न रहा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।'' सिसकीनुमा हँसी विद्रूपता लिए उसके अधरों से निकल पड़ी।

नवाब पर हमीदा की मौत का थोड़ा असर हुआ। कुछेक दिन गुमसुम पड़ा रहा।

शहर की स्थिति धीरे–धीरे नियंत्रण में आ रही थी। किसी भी चीज को दोबारा व्यवस्थित होने में वक्त लगता है।

उधर वह कबूतर का जोड़ा जिसको अहं के लिए लड़ाया जा रहा था, कबूतर और कबूतरी निकले। इतने दंगे और फसाद में भी दोनों उड़ पाने में सक्षम रहे। भागने से उडान भरना ज्यादा श्रेयस्कर है। भागना इंसान को कायर बनाता है, उड़ना एक मुकाम देता है, स्वच्छन्दता देता है, स्वतंत्रता देता है।

कबूतर और कबूतरी एक पेड़ की छाँव तलाशने में सक्षम रहे। अब वे उस पर बैठ गुटरगूँ करते रहते हैं। अब तो उनका परिवार भी बढ़ गया है। पुरानी हवेली के अन्धकूप में दोनों ने अपना घोंसला बनाया है। कबूतर तो शान्ति के दूत होते हैं, लड़ाई से उनका क्या वास्ता।

फिर प्रेम तो समर्पण है, समझौता है, जीवन की नवीन रचना रहा है। दंगे–फसाद तो गुण्डे किया करते हैं। प्रेमियों को प्रेम से ही कहाँ फुर्सत रहती है।

प्रेम तो स्वयं एक उपलब्धि है।

उधर शायद हामिदा आखिरी बार चीखी थी, ''बाबू मैं जीना चाहती हूँ।''

मुझे बचा लो।

शायद तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

■

अक्स

दर्पण के सम्मुख खड़े होकर उस आकृति के विभिन्न अक्स हर कोण से उभर दर्पण पर फैल अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे थे। उस शयनकक्ष में अन्धकार पसरा हुआ था और मद्धिम रोश्नी एक झरोखे से आ उस आकृति को रौशनमान कर रही थी। एक बेडौल–सी आकृति किसी स्त्री की ही प्रतीत होती थी क्योंकि दर्पण के सम्मुख वही न अपना इतना वक्त जाया करेगी। पुरुषों को तो और बड़े कामों से फुर्सत ही कहाँ कि दर्पण में नित अपने को निहारा करें।

वह आकृति काफी देर से अपनी भावभंगिमा को निहार अति प्रसन्नता की मुद्रा में प्रतीत हो रही थी। उसको अपना हर अक्स दिलकश और दिल–ए–अजीज प्रतीत हो रहा था। शायद टूटे हुए दर्पण में जितने प्रतिबिम्ब बन सकते हैं सबके सब उसको अपने प्रतीत हो रहे थे।

उस गहन अन्धकार से उभरकर एक प्रतिबिम्ब उसके कान में हौले से फुसफुसाया, ''मृगनयनी को देखा है कितनी कुरूप है। और अब तो उम्र के साथ और भी भद्दी होती जा रही है।''

उस आकृति ने अट्टाहास किया, अपना रूप–सौन्दर्य निहारा और एक कटाक्ष किया, ''अरे मृगनयनी, वह तो जीवन पर्यन्त मेरे से मुकाबला करती रही। बड़ी तीसमारखाँ बनती थी। नित नए सौन्दर्य प्रसाधन का इस्तेमाल कर–करके अपना थोबड़ा कैसा कर लिया है! अभी बेचारी की उम्र ही क्या है पर देखो कितनी कुरूप लगती है। हृदय के बुरे विचार मानो साक्षात चेहरे पर विद्यमान होते हैं।''

''तुम्हारे साथ तो ऐसा नहीं है'' वही अक्स बोला, ''आज भी उम्र की लकीर चेहरे को छू के भी नहीं गई है।''

तभी आकृति रूपगर्वित हो मदमस्त अट्टाहस करने लगी।

तभी दूसरा अक्स आईने से बाहर आकर धीरे से कुछ बोला।

आकृति का चेहरा दर्प से फूल गया।

''सही बोलते हो। बिल्कुल सही। अरे पूनम ने कभी अपने बेटे पर ध्यान भी दिया। इकलौता बेटा है। देखो, कैसे दब्बू और रीढ़विहीन बना दिया है। हमने भी अपने बच्चों की परवरिश की है पर कितना डरपोक पूनम का बीस साल का बच्चा है।''

''अरे, और माँ को देखो! इतना बड़ा पुत्र किसी लायक नहीं है और माँ की पेशानी पर एक बल भी नहीं पड़ता है। वैसे ही छम्मकछल्लो बनी घूमती है।'' अक्स बोला। ''मैंने अपने बच्चों पर जी–जान से मेहनत की है। अपना कीमती वक्त बर्बाद किया है। बच्चों की यह सफलता उसकी ही देन है। अगर मेरा इतना बड़ा बच्चा जीवन में कुछ न कर रहा होता तो, मेरी तो रातों की नींद ही हराम हो जाती।'' आकृति के चेहरे पर एक दीप्तिमान दर्प ने अपना स्थान जमा लिया था। अपने बेटे की उपलब्धियों को वह अपने जीवन की परम सफलता मान अहंकार से भर उठी।

तभी तीसरा अक्स बोला, ''सोने पर सुहागा। अरे आपके अच्छे कर्मों का ही फल है कि आपका पति आपका हुकुमबरदार है। अरे आप कितनी शरीफजादी हैं जो उसको अपना गुलाम बनाये हुए हैं। आपमें कुछ तो क्षमता है कि वह आपकी इतनी बातें मानता है।''

आकृति जोर से खिलखिला पड़ी, ''क्यों नहीं मानेगा। अरे जो बात नहीं मानता है, मैं हंगामा बरपा मनवा लेती हूँ। शुरू से ही जो मैं नहीं दबी आज उसी का यह नतीजा है कि वह मेरी जूताबरदारी करता है। यह तो प्रेम से अधिक प्रतिष्ठा की लड़ाई है। अरे पति को झुकाना ही तो हम स्त्रियों का प्रथम अधिकार है।''

''अगर वह नहीं झुकता तो,''अक्स ने चुटकी ली।

''कैसे नहीं झुकता! शादी के दिन ही इसको चुनौती समझ स्वीकार किया था। गांधी जी का असहयोग आंदोलन पहले दिन से ही दिखा दिया, जब तक दुश्मन सँभल पाता तब तक तो वह चारों खाने चित् हो गया था।'' पति को पैर की जूती मान वह आकृति ठठाकर कर हँस रही थी। जीवन में उसने सिर्फ उपलब्धि ही हासिल करनी जानी थी। पराजय तो उसको छूकर भी न गई थी।

तभी चौथा अक्स थोड़ा अस्फुट स्वर में बोला,''अरे जानती हो गीता का चरित्र कितना हल्का है। वह तो हर परपुरुष के साथ अपना सम्बन्ध बना लेती है।''

आकृति को अब वार्त्तालाप में आनन्द आने लगा था। अपने समकक्ष नारी का चरित्र छिद्रान्वेषण किसको आनन्दित नहीं करता। अगर वह नारी सौन्दर्य और दिमाग से परिपूर्ण होते हुए किसी भी स्तर पर कमजोर–सी प्रतीत होती है तो एक आत्मिक शान्ति का बोध होता है। किसी से भी श्रेष्ठ होने का बोध कहीं–न–कहीं अपने अन्दर एक खुशी का अहसास करा जाता है। फिर अगर किसी महिला का चरित्र दाँव पर लगा हो तो तब तो मानो सोने पे सुहागा।

उस आकृति ने यह भी जानने की जुर्रत न समझी कि इतने पुख्ता तथ्य की जानकारी किसके माध्यम से मिली। चूँकि बिना आग के धुआँ नहीं होता इसलिए धुआँ तो दिख गया और धुआँ को हवा देने के लिए उसका अक्स कमर कस के तैयार खड़ा था। उसका नारी का सौन्दर्य खिल उठा।

''छिः, ऐसी नारियों से तो मुझे सख्त घृणा होती है। अरे इधर–उधर मुँह मारना उनकी फितरत में शामिल होता है।'' अपने सच्चरित्र होने का अहसास उसमें उत्साह पैदा कर गया। गीता के प्रति एक अजीब–सा घृणास्पद चेहरा उसने बनाया और अक्स से बेमानी–सा प्रश्न पूछा, ''अरे जरा विस्तार से बताओ उसका किस–किस से सम्बन्ध है ?'' लुत्फ का भाव आकृति के मन में घुमड़ पड़ा।

तभी चौथा अक्स बोला, ''अरे गीता की क्या बिसात! राधा की कहानी तो इससे भी जोरदार है। वह तो अपनी नौकरी में आगे बढ़ने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सबका इस्तेमाल करती है।''

आकृति अब विद्रूपता से हँस पड़ी। ''अरे जानती हो मेरे पति तो इसलिए मुझे घर से बाहर कदम नहीं रखने देते। उनका कहना है कि बाहर कामकाजी औरत के मन में रिश्तों के प्रति खुलापन होता है। उसकी सोच घर से बाहर भी बहुत भटकती है। उनके कदमों में सहज सरलता आ जाती है, और पर निकल आते हैं। हर कामकाजी औरत थोड़ा बाजारू हो जाती है। मैं तो पूर्णतः घर–परिवार के प्रति समर्पित रहने वाली स्त्री हूँ। हमें तो अपने बच्चों की देखभाल से ही फुर्सत नहीं मिलती तो फिर घर छोड़कर बाहर क्यों निकलें। पता नहीं क्यों ये औरतें सजने–सँवरने पर ही इतना ध्यान देती हैं कि उनके बच्चे इसी में चौपट हो जाते हैं। बस घर से बाहर निकलने के बहाने–ही–बहाने।''

वह आकृति हर तरफ से अक्सों से घिरी अपनी निजी जिन्दगी की उपलब्धियों का खाका बुन रही थी। हर ताने–बाने में उसे सुरक्षा का अद्‌भुत अहसास हो रहा था। हर स्तर पर उसे सफलता और उत्साह नजर आ रहा था। मानो जीवन में वह अब तक जो भी करती आई है वह सब का सब सही है। सही–गलत का जीवन में उसको जैसे ढेरों अनुभव है और जीवन में हर ओर उसकी निगाह में गलती थी। कहीं–न–कहीं नुक्स उभरकर आ ही जाता था। उसका दामन पाक साफ था। एक झूठा दर्प उसके चेहरे पर निखार ले आया। तभी रोशनी धीरे–धीरे तेज होने लगी और सारे अक्स अचानक उस दूधिया रोशनी में विलुप्त होने लगे थे।

एक गहरे स्याह रंग का अक्स मानो हठात् वहीं उस आकृति के ठीक पीछे अपनी उपस्थिति दर्ज कराता हुआ मौजूद रहा। तेज से तेज रोशनी का पुंज उसके स्याह रंग को और उजागर करता हुआ प्रतीत हुआ। वह आकृति अपने चेहरे पर मेकअप की पर्त चढ़ाती हुई चौंक गयी। इस अक्स के चेहरे पर एक अजीब–सी विद्रूप मुस्कान थी। वह मुस्कान कहीं गहरे, बहुत गहरे उसकी अन्तर्आत्मा को झकझोर रही थी। हर क्षण उसकी निगाह से कहीं अन्दर तक कुछ छू जा रहा था। उसने अपनी निगाहें फेरनी चाहीं पर हर जगह उस अक्स को अपनी तरफ घूरते ही पाया। उन निगाहों में छिद्रान्वेषण करने की अजीब रूमानी काबलियत थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अन्तर्यामी हो, वह मानो आकृति की शख्सियत को तार–तार कर देगी। हर चीर–फाड़ में वह वेदना महसूस करने लगी। ऐसा प्रतीत होता मानो हर पीड़ा उसके शरीर के साथ–साथ मन को भी फाड़ रही है और मन के अन्दर बैठी एक आत्मा है, जिसको उसके शरीर से निकालने का प्रयास किया जा रहा है।

उसने उस अक्स को कस के घूरा। शायद, डर से वह पीछा करना छोड़ दे पर अक्स तो यथावत् था। और मुस्करा–मुस्कराकर, हौले–हौले, मानो उसको सहलाने और बहलाने का प्रयास कर रहा था।

आकृति थोड़ा पीछे हुई, फिर आगे। वह जहाँ–जहाँ जा रही थी वह अक्स उसका हमसाया बन पीछा कर रहा था। होठों पर मंद मुस्कान ले, मानो उसका परिहास कर रहा हो।

जब आकृति से और न सहा गया तो थोड़ा कड़े स्वर में बोली–''क्यों मेरा उपहास–सा उड़ा रहे हो।''

''उपहास और मैं, वह भी तुम्हारा। अरे, तुम इतनी देर से क्या कर रही थीं! तुम भी तो हर अपने से जुडे शख्स की निन्दा करके उनका उपहास ही न उड़ा रही थीं। वह भी उनके पीठ पीछे। अरे, कम–से–कम यहाँ मैं तुम्हारी हर कमजोरी पर तुम्हारा प्रतिवाद सुनने के लिए तैयार हूँ पर तुम जिनकी निन्दा कर रही हो, वह बेचारे तो अपना स्पष्टीकरण देने के लिए भी यहाँ उपस्थित नहीं हैं। अरे, जब सबको आईना दिखाना ही था तो स्वयं को भी तो आईने में देखना सीखो।''

''क्यों?'' आकृति ने तुनककर कहा, ''मेरे में क्या कमी है, जो मैं आईना देखूँ। अपनी पूर्णता का अहसास है मुझको। ''

''यह तुम्हारी गलतफहमी है।''

''गलतफहमी'' एकबारगी आकृति को लगा मानो अक्स उसको तमाचा मार रहा हो। ''कैसी गलतफहमी? तुम कहना क्या चाहते हो? मैं गलत हूँ।'' आकृति चिढ़ गई।

''हाँ'' अक्स चुप रहा।

''क्या, ठीक–ठीक बताओ।'' आकृति का चेहरा मानो तमतमा गया। अपने ऊपर आरोप बहुम कम लोग बर्दाश्त करते हैं। फिर सीधे–सीधे मुँह पर सुना दे तो ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी ने खींचकर जोरदार तमाचा मारा है। उस दर्द से वह अभी तिलमिला रही थी।

''मैं कैसे गलती कर सकती हूँ ?''

''क्यों, क्या तुम इंसान नहीं हो ? मानवी कमजोरी तो तुममें भी है।''

''पर मेरे संस्कार.....'' इससे पहले कि आकृति अपनी बात खत्म कर पाती अक्स ने बीच में ही बात काट दी।

''तुम किन संस्कारों की बात करती हो, वहीं मूल्य न जिनका निर्माण तुमने दूसरों के लिए किया है और जिनकी कसौटी पर तुम दूसरों को अभी तौल रही थीं! तुमने कभी सोचा है कि लोग बाहर तुम्हारे लिए क्या सोच रहे हैं।''

''कोई मेरे लिए गलत क्यों सोचेगा? मैंने तो कभी कोई गलती की ही नहीं है।'' आकृति थोड़ा क्रोधित थी।

''नहीं की है ?''अक्स की आवाज संयत और संतुलित थी। ''क्या कभी नहीं।''

''नहीं।''

''सोच लो।''

''सोच लिया।''

''जवानी की दहलीज पर तुम्हारा प्यार...''

''उस प्यार से तो मैंने शादी कर ली।'' आकृति मुस्कराई।

''अगर प्यार को एक बंधन मिल जाये, एक नाम मिल जाये तो वह जायज और अगर वह मुकाम पर न पहुँच पाये तो नाजायज।''

''जाहिर है।''

''तुमने तो प्यार के पहले शारीरिक संबंध स्थापित किये थे। अगर पिता विवाह की स्वीकृति न देते और तुम भागकर विवाह करतीं तो तुम्हारी वर्जनाएँ, मर्यादाएँ, दलीलें कहाँ तक सही होतीं ?''

''ऐसा कुछ हुआ तो नहीं।'' आकृति को अपनी जीत का अहसास हुआ।

''हो सकता है कि गीता तब भी तुमसे श्रेष्ठ हो, उसकी मित्रता, उसके संबंध मानसिक धरातल तक ही सीमित हों। उसमें यौन आकर्षण न हो। ये कहाँ लिखा है कि पुरुष की महिला से मित्रता हो ही नहीं सकती। मानसिक धरातल पर गीता हो सकता है पुरुषों की तरह बौद्धिक क्षमता रखती हो और उनसे बात करके उसके स्वयं की तुष्टि होती हो। क्योंकि औरतों की सोच दकियानूसी ओर अधिकांशतः निंदनीय होती है।''

''पर पुरुषों से ही क्यों?''

''क्योंकि गीता कामकाजी है। कामकाजी औरतों की सोच का दायरा बड़ा होता है। वह अक्सर काम करते–करते भूल जाती हैं कि सामने वाला पुरुष है या औरत।''

''पर...'' आकृति ने कुछ बोलना चाहा।

''क्या पर ?''

''तुम भी तो किस–किस के साथ यात्रा करती हो। कभी थाईलैंड जाती हो, कभी बैंकाक, कभी दिल्ली। इतनी–इतनी रात अकेली रहती हो। क्या पता वहाँ तुम्हारा क्या रवैया हो।''

''तो फिर पुरुष से बात करना क्या चारित्रिक मूल्यों का हनन है? और वह भी आज के युग में। गीता सुन्दर है इसलिए वह किसी भी पुरुष

से हल्की–सी भी बात करती है तो उँगली उठती है। अगर कुरूप होती तो शायद कोई ध्यान भी नहीं देता।'' अक्स अब गंभीर हो चला था।

''दोष उसमें है या उसकी सुंदरता में! सुन्दरता औरत की ईर्ष्या का पात्र होती है। शायद अपने घर में झाँको तो पाओगे कि कभी तुम्हारे पति ने गीता के गुणों की तारीफ तो नहीं की। गुणी महिला जो बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ होती है, पुरुषों को आंदोलित और समकक्ष महिलाओं को विचलित करती है। औरत, जब तक सिर्फ एक दकियानूसी औरत है तब तक ठीक है। उसके आगे जहाँ वह एक सोचने–समझने और महसूस करने वाली इंसान बनने की कोशिश करती है समाज उसको बहिष्कृत कर देता है और उसके ऊपर तरह–तरह का बन्धन एवं लांछन लगा देता है।''

''हर सुन्दर नारी पर तो इशारे नहीं उठते, न ही हर कामकाजी औरत पर!''

''मैं मानता हूँ। स्त्री जिसकी सुन्दरता ही उसका अवगुण है, कहीं–न–कहीं घर–परिवार में या फिर आसपास के परिवेश में सतायी जा रही है। लोग सुन्दरता को सहज स्वीकार नहीं कर पाते।''

''जब महिला बने–बनाये रास्तों को छोड़ किसी नई राह पर चलती है, कुछ नया करना चाहती है तो उस पर प्रश्नचिन्ह लगता है। जब पुरुषों की नयी सोच समाज नहीं स्वीकारता तो महिलाएँ तो फिर भी दोयम् दर्जे की नागरिक है। उनके आदमकद को समाज क्यों अपना पाएगा?''

आकृति अब थोड़ा–थोड़ा बहस करने की मुद्रा में आ गयी थी।

''इसलिए न मेरे पति मेरे को प्यार करते हैं और घर की चौखट नहीं लाँघने देते।''

''क्या तुम पति के प्यारवश घर में कैद हो या फिर तुममें क्षमता का अभाव है।''

आकृति को क्रोध आ गया।

''और क्या वास्तव में तुममें और तुम्हारे पति में उतना प्रेम है जितना कि तुम दलीलें देती हो ? क्या विवाह की परिधि से बाहर सजधज के तैयार होने पर तुम्हारा मन नहीं करता कि पुरुष की प्रशंसा का पात्र बनो ? इतने चुस्त कपड़े पहनना, इतना मेकअप इस उम्र में क्या दर्शाता है! स्वस्थ और सुन्दर रहना और आकर्षण का पात्र बनने में जमीन–आसमान का अंतर है।

क्या, इसको पतिव्रता होना ही कहेंगे कि तुम अपने पति की ईमानदारी का बाहर दलालों से सौदा करती हो। क्या इसको पति के प्रति समर्पित होना ही कहेंगे या फिर कहीं–न–कहीं तुम अपनी इच्छाओं और वासनाओं के लिए पति की प्रतिष्ठा के साथ खेल रही हो! क्या इसको प्रेम कहते हैं? फिर पर पुरुषों के साथ दलाली? क्या यह सही है या गलत लेनदेन तो है न और मूल्यों के साथ समझौता। इस समझौते के गर्भ में भी स्वार्थलिप्सा और अर्थ छिपा है। तो फिर तुम श्रेष्ठ कहाँ हुईं। बाजार में तो बैठ ही गईं।''

अब आकृति का क्रोध पारावार चढ़ने लगा। क्रोध में उसके चेहरे की मेकअप की परत छिलने–सी लगी। जब क्रोध बर्दाश्त के बाहर हो गया तो उसने क्रीम की शीशी उठाकर आईने पर दे मारी। आईना टुकड़े–टुकड़े हो गया। हर टुकड़े में उसका भयानक–सा अक्स मुँह चिढ़ाता हुआ मानो उसका मजाक उडा रहा था। उसने उन टुकड़ों में उस बदनुमा अक्स को ढूँढना चाहा जिसने उसको आईना दिखाया था। तेज रोशनी में वह उसकी आकृति में मानो अंदर समा–सा गया था। फिर रोशनी उस अंधकार रूपी साये को लील–सी गई। उसके अंदर से एक धीमी–सी आवाज आई।

''हमारी आँखें वही देखती हैं जो हम देखना चाहते हैं। कान वही सुनते हैं जो हम सुनना चाहते हैं। और जुबान वही बोलती है जो हम बोलना चाहते हैं। लोगों का क्या.... उनका तो शगल् है बोलना, लोगों के खिलाफ बोलना। सिर्फ सुनने कि लिए एक अदद् कान होना चाहिए।''

■

रेहन

तेजा काम करते–करते थक–सा गया था। यह इमारत थी कि बनने का नाम ही न ले रही थी। एक–एक ईंट जोड़कर तेजा और उसके साथियों ने यह तीन मंजिला होटल की बिल्डिंग खड़ी की थी। महीनों से काम लगा हुआ था। अब जाकर उसका नतीजा सामने आया था।

छाँव में बैठा तेजा अपने लिए दिन का भोजन बनाने लगा। सत्तू को पानी में घोला और गटककर पी गया। गर्मी से तो राहत मिली ही शरीर में कुछ स्फूर्ति भी आ गयी। आज घंटे–दो घंटे का काम और बाकी था फिर रात की बस पकड़ वह अपने गाँव चला जायेगा। अपनी महरिया के पास।

"तेजा, वापस आने का इरादा–विरादा है कि नहीं?"

तेजा खाना खाकर बरामदे में बैठ बीड़ी सुलगाने लगा। हल्के–हल्के कश लेकर वह उसका स्वाद काफी देर तक महसूस करना चाहता था।

तेजा देर तक चुप्पी साधे रहा। दोपहर की तपती धूप में बाहर बेहद गर्मी थी। तीखी धूप खेत–खलिहानों को पार करके बरामदे में आ रही थी। तीखी धूप उसके जीवन की सहचर बनकर अपनी उष्णता से मानो उसके जीवन के समस्त अरमानों को जला कर स्वाहा कर रही थी। वह धीरे–धीरे कश पर कश खींचता रहा। फिर गला खँखारकर बोला–

"शायद नहीं, यहाँ पेट काट–काटकर इतना पैसा इकट्ठा कर लिया है कि अपनी भूमि को महाजन के कब्जे से छुड़ा पाऊँगा। बाप के समय से गिरवी है। बापू ने 12 कट्ठा जमीन महाजनों को सूद पर चढ़ा दी थी। छोटे भाई के इलाज के लिए जरूरत थी। किन्तु भाई को नहीं बचा पाया। मर गया साला कैंसर से। खूब पीता था। खुद तो डूबा ही हमें भी डुबो गया। जाते–जाते बापू को जीवनभर का कर्जदार बना गया।" तेजा के स्वर में तल्खी आ गयी थी। तुरन्त ही अपने को संयत करता हुआ बोला, "मेहनत–मजदूरी करके इतना इकट्ठा कर लिया है कि जमीन को छुड़ा सकूँगा। अभी तक लुगाई और बड़ा बेटा खेत पर बँधुआ मजूरी करते थे।

पेट भरने का हो जाता था, बस, बाकी ऊपर वाले के रहमोकरम पर।" स्वर में एक उचाटपन और उदासी समा गयी।

अमर और संतोष रोटी और प्याज का निवाला खाते रहे पर हरदेव ने बात को आगे बढ़ाया–

"चलो अच्छा है, हममें से एक साथी और छूट जायेगा। भजनसिंह तो पिछले महीने ऊपर से गिरकर चल बसा था। उसकी तो लाश भी इन कमीने ठेकेदारों ने गाँव वापस न भिजवायी थी।"

अमर को थोड़ा गुस्सा आ गया, "हाँ जब हमारे साथ कोई दिक्कत आती है तो कोई भी पुरसाहाल लेने वाला नहीं होता। सब यह कहकर हाथ झाड़ लेते हैं कि यह ठहरे ठेकेदार के आदमी जैसे कि हम लोग इन्सान न हों, कोई बेजान वस्तु हों, मानो ठेकेदार का गोया कोई पुराना रेडियो था जो चलते–चलते टूट गया या फिर टेलीविजन का भौंपू जो फट गया।"

माहौल गमगीन हो रहा था। तेजा उस माहौल का हिस्सा नहीं बनना चाहता था। आज वह खुश था। बहुत खुश। स्वच्छंद हवा में उड़ना चाहता था। वह वापस गाँव जा रहा था। अब वह गाँव वापस जा पायेगा, परिवार के साथ रह पायेगा। बारह साल उसने बाहर रहकर घुट–घुटकर दिन काटे हैं। अब उसकी जमीन उसकी अपनी होगी। घर अपना होगा, देश अपना होगा। बेगानों को अपना बनाने की फिराक में शायद वह अपनी जमीन से ही उखड़ गया था। उसका वजूद सिमटकर संकुचित हो गया था। उसकी विचारों की तन्द्रा की क्रमवत्ता को एक प्रहार लगा। वह तो वर्तमान छोड़कर एक ऐसे भविष्य में जीने लगा था जिसका अभी तक वह आधार भी ढूँढ़ न पाया था।

हरदेव बिना किसी भाव के बोला, "हाँ, गाँव से उसकी औरत आयी थी। रो–पीटकर चली गयी। और करती भी क्या? इन लोगों ने तो तब तक लाश को ठिकाने लगा दिया था।"

गंभीर बात हल्के से आयी–गयी हो गयी। सब बीड़ी के कश पर हल्की–फुल्की ठट्ठा में लग गये। वक्त ही कहाँ मिलता था जो दूसरे के गम में गमगीन होते। कह दिया यहाँ कोई उस नाम का व्यक्ति काम ही नहीं करता था। वह बेचारी जिंदगीभर अपने पति को खोजती रहेगी, दुधमुँहे बच्चे के साथ।

तेजा बात पलटने के लिहाज से बोला, "अरे छोड़ो भी इन सब बातों को, हमें इनसे क्या लेना–देना। भजनसिंह की भी तो गलती है। जब उसे रेजा का काम नहीं आता था तो काहे लिया। कौन ठेकेदार उसके घर उसको बुलाने गया था। फिर भइया जिसको मौत जैसे आनी है आयेगी।"

सब खाना खाकर अपने–अपने काम में लग गये। तेजा कुछ ज्यादा ही स्फूर्ति से काम करने लगा। जिन्दगी में कुछ पाने की उत्तेजना जीवन में स्फूर्ति भर देती है।

शाम को सभी साथी अलग–अलग दिशा के लिए विदा हुए, पर न कोई आँसू न तकलीफ। यह गरीबी ही तो सबसे बड़ी तकलीफ है। एक कोढ़ जिसको सिर्फ ढोने वाला ही भोग सकता है.....पर गरीबी शायद एक आवरण की तरह जीवन की समस्त पीड़ओं को भी हर लेती है। भावशून्य बना देती है। समस्त दुःख को मानो जिन्दगी जीने की कशमकश अपना एक मैला सा आवरण पहना, गहरे कहीं गहरे दफन कर देती है। यह उधेड़ बुन तब तक चलती है जब तक जीवन स्वयं कहीं अतीत बन कर दफन नहीं हो जाता।

उसने एक हिकारत–भरी दृष्टि उस इमारत पर डाली। अपने बौनेपन का उसको अहसास हो गया था। रुपयों को कुर्ते की जेब में कस के दबाया और बस स्टैन्ड की तरफ बढ़ गया।

अगस्त का महीना चल रहा था। आसमान में बादल साफ झलक रहे थे। शायद वह भी इंसान की जिन्दगी में आने–जाने वाली खुशी और गम की तरह थे, और जब गम के बादल आते हैं तो चन्द्रमा की रोशनी को भी ओट में ले लेते हैं।

पहले–पहल तो तेजा बस के ऊपर चढ़ने से डरा। मौत का खयाल एकबारगी उसे डरा गया पर पैसे बचाने के लिए यह जोखिम कोई बड़ा सौदा नहीं था। सबके बीच में वह दुबककर बैठ गया। बस तीव्र गति से भागी जा रही थी। पता नहीं क्यों इसको इतनी हड़बड़ी थी। तेजा की स्वयं की जिन्दगी में तो सब–कुछ बहुत धीमी गति से घटित होता था। वह भी स्पन्दनहीन था। तेजा छह महीने के बाद घर जा रहा था। वह अपने घर को मानो गाँव में ही छोड़कर गया था। उससे जुड़ी यादों को बहुत सहेज कर उसने गाँव में ही नदी के किनारे कदंब के पेड़ के नीचे मानो छोड़ दिया था। इसी नदी के तीरे वह लाछो की बाँह की छाँव में अपने को भूल जाता था।

घर भी तो उदास–सा होगा। सब कुछ वीरान जैसे वह छोड़ आया था। तब भी तेजा आज बहुत खुश था।

रात में हल्की–हल्की बूँदा–बाँदी होने लगी। अपने को बचाते–बचाते भी तेजा भीग गया। पौ फटते ही तेजा की बस गाँव पहुँच गयी। रक्तिम सूर्य की लालिमा पूरे आसमान को अपने रंग से भर दे रही थी। इस प्रभात को तेजा ने प्रणाम किया और बस से उतर गया। बस स्टैण्ड उसके घर से कुछ फर्लांग दूर था। तेजा ने तेज कदमों ने उस दूरी को नजदीकियों में बदल दिया। कुछ ही मिनटों में वह जैसे उड़ते हुए घर के सामने था। इतना तेज वह कब भागा था उसकी याद तक उसे नहीं थी। जब वह घर के सामने पहुँचा तो हाँफ रहा था। झोंपड़ी के वाहर उसकी बीवी पुरानी धोती पहने हुए धौकनी से आग को हवा दे रही थी। चार महीने का उसका छोटा पुत्र बगल में लेटा था। अपने पुत्र को जन्म के बाद आज पहली बार देख रहा था। धीमी उपले की आग पर आलू पक रहे थे। तेजा ने शर्म से आँखें नीची कर लीं। न कोई उत्सुकता न औपचारिकता। गरीबी में वह सब सर्वथा नग्न खड़े थे। छिपाने या दिखाने में कोई भारी भेद न था। दिखावा तो अमीरों का खेल होता है।

अपने अर्ध–नगन पुत्र को गोद में उठा तेजा ने कहा, "बहुत भूख लगी है। जो भी है परोस दो।"

लाछो कुछ सकुचाकर बोली, "और खास तो कुछ नहीं, क्या दूँ। यही पके आलू हैं। परोसती हूँ पर पहले हाथ–मुँह तो धो लो।"

"वह सब बाद में होता रहेगा। पहले कुछ खाने को दो, भूख लगी है।" तेजा और लाछो आलू के छिलके उतार–उतारकर नमक लगाकर खाते गये।

"नीरज कहाँ है?" कुछ भोजन पेट में जाने के बाद तेजा को थोड़ा घर–परिवार का होश आया।

"उसको तो उसका मामू गिरीडीह ले गया। वहाँ अबरख की फैक्ट्री में काम करने के लिए।"

"चलो, अच्छा ही है, अभी से काम सीख जायेगा। कम–से–कम वहाँ दो जून रोटी तो मिलेगी। यहाँ कौन सा सुख में था। कुछ पैसा–वैसा भी उसका मामा भेजता है कि सब हड़प कर जाता है?"

लाछो थोड़ा बनावटी गुस्से में बोली, "मेरा भाई है, वह भी सगा। अभी पिछले महीने ही हजार भेजे थे।"

"तेजा के कान चौंके, क्या किया तूने?"

"क्या करती कुछ रामू के इलाज में खर्च हो गये। बाकी जो बचा वह पेट की आग शान्त करने में चला गया।"

तेजा को बेहद क्रोध हुआ, "बरबाद करके छोड़ दिया न सारा पैसा। तुम औरतें भी....."

लाछो उठकर बड़बड़ाते हुए अन्दर चली गयी। उसे काम पर जाने को देर हो रही थी। रोपनी का समय चल रहा था। देर होने पर सेठ की डाँट सुननी पड़ेगी। बाहर आयी तो साड़ी का पल्ला ठीक था। माथे पर बड़ी–सी बिन्दी लगी थी।

तेजा चिढ़कर बोला, "लगता है किसी को रिझाने के खातिर यह बनाव–श्रृंगार हुआ है।"

लाछो आँखों ही आँखों में हँस दी।

"क्यों मुनिया कहीं दिखायी नहीं दे रही है। कहीं बाहर गयी हुई है?"

लाछो शामू को गोद में उठाये हुए बोली, "हाकिम को अपने किसी नाते–रिश्तेदार के घर पर कामकाज के खातिर एक लड़की की जरूरत थी तो मैंने उसको भेज दिया। मजे में है फिर चार सौ रुपया महीना भी सेठ देने को बोले हैं। ऊपर से पढ़ाने–लिखाने का भी वायदा किया है।" बड़बड़ाते हुए वह खेतों की तरफ बढ़ गयी। "शाम के लिए माड़–भात पका रखा है खा लेना।"

"ठीक है ठीक है।" झुँझलाता हुआ तेजा अन्दर चला गया। "अभी–अभी मैं आया हूँ और इसको काम की पड़ी है।' रात में भीगने के कारण तेजा को थोड़ी हरारत थी। जी भी अजीब–सा हो रहा था। वह खटिया डाल पेड़ के नीचे सो गया। रुपये उसने बहुत ही सँभालकर अटारी में रख दिये थे। शाम को जाकर सेठ से हिसाब–किताब कर अपनी रेहन में रखी जमीन को छुड़ा लेगा।

नींद की खुमारी उसको ऐसी चढ़ी वह मुँह औंधाये पड़ा रहा। होश तो तब आया जब शाम को लाछो ने आकर हिला–हिलाकर उसको उठाया।

रामू कोने में पड़ा रो रहा था। तेज थोड़ा अनमने से बोला, "इसको क्यों नहीं चुप करती हो, भेजा खाये जा रहा है।"

लाछो उसको गोद में लेकर पानी में आटा घोल पिलाने लगी। नासमझ बच्चा भूख में उसको गटर–गटर पिए जा रहा था।

"सोचता हूँ सेठ के यहाँ जाकर सारा कर्जा चुका आऊँ। फिर खेत अपने हो जायेंगे और उस पर हम और तुम मेहनत करके ढ़ेर सारा अनाज उगा लेंगे।"

लाछो बड़ी–बड़ी बातें सुन नासमझी में सिर हिलाये जा रही थी। वह तो जब से ब्याहकर आयी थी तब से दूसरों के खेत में मजदूरी कर और आधा पेट भोजन खा उसकी जवानी कटी थी। बच्चे को पिलाकर एक तरफ लिटा दिया और तेजा के आगे ठंडा माड़–भात परोस दिया। तेजा बिना खाये ही सेठ के घर के लिए निकल पड़ा। उसकी आँखों में जीत की चमक थी। लाछो भोजन करने के लिए उसका मनुहार करती हुई पीछे तक भागी पर सब व्यर्थ।

सेठ अपनी हवेली में नहीं थे। वह पिछवाड़े वाली पुरानी हवेली की तरफ बढ़ गया। जीत के अहसास को वह ठंडा नहीं पड़ने देना चाहता था।

पुरानी हवेली में सेठजी दीवानखाने में रँगरेलियों में मस्त थे। भीनी–भीनी पकवानों की और हल्की–हल्की पायल की झंकार की आवाज ठंडी हवा में लहराते हुए बाहर छन–छनकर आ रही थी। कुछ देर वह बाहर खड़ा होकर उसी का आनन्द लेता रहा।

"कौन?" सेठजी पूरे मदहोश थे। जबान लड़खड़ा रही थी। दरबान ने रोकना भी चाता था पर वह अनुनय–विनय करके अन्दर आ गया था।

"सेठजी, मैं तेजा।" शायद सेठजी होश में भी अपने दिमाग पर जोर करते तो भी तेजा को न पहचान पाते तो फिर अभी तो होश भी जाता रहा था।

"अपनी जमीन को रेहन से छुड़ाने आया हूँ।"

सेठजी के पल्ले कुछ भी न पड़ रहा था। मुनीम को इशारा करके पास बुलाया।

"ये कौन .....है?"

"सेठजी लाछो का मर्द है।"

"अच्छा वही लाछो जो हमारे अपने खेतों पर काम करती है!" और सेठजी के सामने उसकी खूबसूरत तस्वीर घूम गयी।

"हाँ बोलो, क्या बात है?"

"साहब मेरे बाप ने आपसे अपना खेत गिरवी रख के कुछ पैसे उधार लिए थे। पिछली बार जब पैसे मैंने चुकाये थे तो मुनीमजी ने कहा था कि पाँच हजार ले आना तो तुम्हारा सारा कर्जा चुक जायेगा। साहब वही लाया हूँ।"

सेठजी काफी देर तक हिसाब–किसाब का गणित जोड़ते–घटाते लड़ाते रहे फिर बोले, "अरे यह भी कोई वक्त है इसके लिए आने का? उसके लिए सुबह आना।"

फिर नौकर को गिलास की तरफ इशारा किया। वह उनके गिलास में दारू डाल गया। तभी अन्दर से सेठानी बाहर बैठके में आयी।

सेठ की त्यौरियाँ चढ़ गयीं। इस समय सेठजी को वैसे कुछ नहीं सूझ रहा था पर सेठानी का यूँ आना उनको नागवार गुजरा।

"तुम औरतें भी नाहक उघाड़े चली आती हो। जाओ अन्दर अपना काम देखो।"

सेठानी झिड़की के बाद भी नहीं गई।

"रोशन की तबीयत ठीक नहीं है। उसको तेज बुखार है।"

मुनीम की तरफ इशारा करके सेठजी बोले, "जाओ डॉक्टर को दिखा दो। जितने भी पैसे की जरूरत हो ले लेना। देखना कोई दिक्कत नहीं आये।" फिर नर्तकी के नृत्य में मशगूल हो गये।

तेजा एक तरफ बैठ कर मन ही मन सेठजी को हजार गालियाँ बक रहा था। कोफ्त तो इतनी हो रही थी कि अभी उठे और दो चार झापड़ सेठ को रसीद कर दे। उसके सामने मुर्ग–मुसल्लम की दावत चल रही थी और उसके पेट में चूहे कूद रहे थे। दोपहर से उसने कुछ खाया नहीं था पर सेठ को इस समय टोकना बदसलूकी होता।

तेजा बेहद थक गया था पर वहाँ के माहौल में नीद भी कोसों दूर थी। इतने शोर–शराबे के बीच वह अकेला, नितान्त अकेला बैठा नृत्य की लय पर नाचती हुई नर्तकियों को भावशून्यता से निहार रहा था। उसके मनोभाव भी उन नर्तकियों जैसे ही निर्लिप्त थे। न वह उस माहौल में था न ही वह

नर्तकियाँ। हर आदमी जीवन में अपने–अपने नशे और गम में मशगूल हैं। किसी के जीवन जीने का नशा है तो किसी को उससे भागने का गम।

सहसा जैसे सेठ को तेजा की याद आयी। "तेजा" काँपती हुई आवाज में बोले। तेजा को तो जैसे बिच्छू काट गया, तुरन्त उछलकर बोला, "जी!" फिर जैसे कुछ भूलते कुछ याद करते हुए बोले, "क्यों आए हो?"

"जी जमीन छुड़ाने।"

सेठ ने ठहाका लगाया।

"कितना लाए हो?"

"यही कोई पाँच छह हजार, बस मूल बाकी था।"

इसी बीच सेठ ने अपनी बेशकीमती अँगूठी उतारकर उस नर्तकी को न्योछावर कर दी।

"कल आना।" और तेजा को जाने का इशारा कर दिया। लय और संगीत वातावरण में फिर घुल–मिल गया। इस समय तेजा ने भी बहस करना उचित न समझा। और अँधेरे में राह खोजते हुए घर के लिए चल पड़ा। इतने दिनों के बाद इस गाँव में वापस आया था लिहाजा रास्ता अनजान–सा प्रतीत होता था। पर आखिर ढूँढ ही लिया, अपना घर भी कोई क्या भूलता है।

रामू भूख से रोये जा रहा था। लाछो बदन उघाड़े एक तरफ निढाल पड़ी थी।

"क्या हुआ लाछो! काहे नहीं रामू को चुप करा देती हो।"

लाछो थोड़ा अलसाकर बोली, "मेरी शरीर में कोई जान होगी तभी न। कहाँ तक अपना खून पिलाती रहूँ। तुम तो बाहर क्या गये घर तक की सुध भूल गये। अभी माड़ पिलाया है पर राग अलापे जा रहा है।"

लाछो की भी गलती नहीं थी। तेजा बाहर आकर बैठ गया। अँधेरे में पूरे इलाके को अपने आवरण में ले लिया था। हर झोंपड़ी उसमें मिटकर एकसार हो गयी थी। वैसे भी झोंपड़ी में रहने वाले हर एक दुख और तकलीफ में भारी भिन्नता न थी। इसलिए अँधेरे में मिलने में किसी को कोई तकलीफ न हुई। दूर सेठ के घर से रोशनी अभी भी दूर से टिमटिमा रही थी।

लाछो उसका खाना लेकर बाहर आ गयी और उसके बगल में बैठ गयी।

"खाना खा लो भूखे होगे।" स्वर में आत्मीयता थी। तेजा का अपराधबोध थोड़ा जाता रहा। "अभी की बात और है कि फिर कल से हममें से कोई भूखा न रहेगा।" लाछो ने एक व्यंग्य की मुस्कान छोड़ी और तेजा को अधीरता से निहारने लगी। तेजा भूखे शेर की तरह रोटी को फटाफट चट कर रहा था। इस समय उसे अभी कुछ ही देर पहले दिखे स्वादिष्ट मुर्गे का स्मरणमात्र भी न रहा। रोटी ही अधिक प्रिय लग रही थी।

लाछो अन्दर से रामू को उठा लायी। आँचल में भरकर उसे दूध पिलाने लगी। दूध पीकर रामू माँ के प्यार की छाँव में सो गया। तेजा भी भोजन की तृप्ति से लाछो के बगल में लेटकर गीत गुनगुनाने लगा। वह बहुत खुश था। परिवार के बीच में अपनेपन का अहसास जिससे वह अभी तक वंचित था, तेज हवा के स्पर्श के साथ घुलकर उसके शरीर में हल्के–हल्के छू रहा था। सावन की हवा की खुमारी धीरे–धीरे वातावरण में घुल रही थी। तेजा अभी अपने और लाछो के बीच की खामोशी को तोड़ पाता कि दूर सन्नाटे से खट्–खट् कदमों की चाप सुनायी दी। वह चाप धीरे–धीरे शोर में परिवर्तित होती हुई मालूम हुई। गहन अन्धकार को चीरती हुई एक आकृति दिखायी दी जो धीरे–धीरे करके एक साकार रूप लेती हुई प्रकट हुई, ओर तेजा के घर के सामने आकर रूक गयी।

"सेठजी बुला रहे हैं।"

तेजा तुरन्त कूदकर उठ गया।

"इस समय सेठजी ने मुझे बुलाया है।" और मारे खुशी के वह अपने कुर्ते को ठीक करने लगा। "अभी आया" और वह झोंपड़ी के अन्दर मुड़ गया। पीछे–पीछे लाछो भी अन्दर आ गयी और रामू को चटाई पर लिटा दिया। तेजा सब–कुछ अनदेखा कर बाहर आ गया। उसको सामने सिर्फ जमीन के कागज और जमीन दिखायी दे रही थी।

"चलो!"

दरबान बोला, "आपको नहीं लाछो को बुलाया है। मेम साहब की तबीयत थोड़ी ठीक नहीं है, सेवा खातिर।" लाछो पीछे ओट में खड़ी सब सुन रही थी।

उसने तेजा को आज्ञा माँगने की निगाह से देखा। और लाछो बिना कुछ बोले आगे बढ़ गयी। तेजा ने एक प्रश्नवाचक निगाह उस पर डाली और तब तक खड़ा रहा जब तक वह चली न गयी। फिर जोर से धूल को लात मार गुबार को हवा में उड़ते देखता रहा। फिर जब क्रोध शांत हुआ तो धम् से जमीन पर गिर कर लेट गया। रातभर तेजा करवटें बदलता रहा। नींद का नामो–निशान नहीं था। रह–रहकर अकबकाकर उठ जाता और दूर तक झाँक लेता। सन्नाटा पा फिर उठा और कोठरी में दुबक गया। आँख–ही–आँख में रात बीत गयी। लाछो की कमी को तो इतनी शिद्दत से उसने तब भी महसूस नहीं किया था जब वह सैकड़ों किलोमीटर दूर था। आज तो लाछो उसके पास रहकर भी उसकी पहुँच से दूर होती जा रही थी।

जैसे–तैसे करके भोर हुई। सुबह की पहली किरण ने जैसे चिंगारी फेंकी हो। वह क्रोध में आपे से बाहर हो रहा था।

अभी वह सेठ के यहाँ जाने की सोच ही रहा था कि दूर से लाछो आती दिखायी दी। वह तुरन्त अन्दर चला गया। न जाने क्या सोचकर उसने अपनी अटारी खोली और सारे पैसे जो वह लेकर आया था, निकाल लिए।

लाछो अन्दर आ गयी थी।

थोड़ी देर शान्त खड़ी होकर वह तेजा की प्रतिक्रिया जानने की चेष्टा करती रही। उधर से कुछ भी इशारा न पा वह उसके करीब गई।

"मालकिन की तबीयत खराब थी। कै–दस्त हो रहा था। पूरी रात सेवा–टहल में बीत गयी। सुबह थोड़ी सँभली तो मैं इधर के लिए निकल आयी।" तेजा खामोश रहा, पर उसकी खामोशी चीख–चीखकर कहना चाहती थी कि रात में मालकिन ने तुम्हीं को क्यों याद किया, जबकि शाम तक वह तो ठीक थी और उसका बेटा बीमार था।

तेजा की चुप्पी काफी खतरनाक जान पड़ रही थी। उसको भेदने का प्रयास करती हुई लाछो बोली, "मालकिन इतनी अच्छी हैं कि जब उन्हें पता चला कि तुम आये हो तो तुरंत भेज दिया।" तेजा बोलना चाहता था–पूरी रात रखने के बाद, पर चुप रहा।

"और जब मालकिन को पता चला कि तुम क्यों आये हो तो मालिक से झगड़ा कर वह जमीन के कागज भिजवाये हैं।"

तेजा उन कागजात को घूरता रहा। अब उस जमीन का मूल्य उसके लिए कुछ नहीं था। उसने उसके लिए इतना भारी मोल चुकाया था कि उसमें कुछ और कहने और अब कुछ करने का सामर्थ्य जाता रहा था। उसने एक हिकारत की दृष्टि रामू के ऊपर डाली और लाछो की आँखों में बिना देखे सारे पैसे रख दिये। वह चुपचाप कोठरी से बाहर आ गया। बाहर पौ फट चुकी थी। चिड़ियाँ फुदक–फुदकर गा रही थीं। हवा मंद–मंद बह रही थी। कहीं कुछ भी तो थमा नहीं था। सब अपनी रफ्तार से आगे बढ़ रहे थे। बाहर आकर उसने खुली हवा में साँस ली। वह पीछे मुड़कर आखिरी तौर पर कुछ बेगानों में अपनों में देखना चाहता था। पर तभी एक पत्थर पर पैर पड़ा और ठोकर लग गयी। गनीमत थी कि वह सँभल गया। वह तेजी से आगे बढ़ गया। वह चल नहीं रहा था, भाग रहा था। जो जिन्दगी छूट गयी थी उसको पकड़ लेना चाहता था।

लाछो उसके पीछे थोड़ी दूर तक भागी पर लड़खड़ाकर गिर गयी। तेजा आगे निकल गया।

■

वह काला कप

वह काला कप टूट गया। तो क्या हुआ, कप ने अपनी जिंदगी जी ली थी। टूट गया तो टूट गया। उसमें क्या हाय–तौबा मचानी! पर नहीं साहब, उस घर में मच गई। गुण–दोष कप का नहीं था। दोष था शत्रुघ्न कुम्हार का। एक तो उसका कप था और गोया उसी से टूट गया।

अब भला कप में खासियत क्या थी? थी बाबा, थी। कुम्हार का बेटा था। और वह भी गाँव से शहर आया था, काम के लिए। एक बड़के साहब के यहाँ। तो लाजिमी–सी बात है कप में खास बात हो ही गई। जिसके पूर्वज शायद सदियों से यही काम करते आए थे। यह उनका पेशा था, पेशा। वही कुम्हार, जो गाँव में अनर्गल मिट्टी के बरतन बनाते, छोटे–छोटे, कभी बड़े भी, छोटे–बड़े दीये का निर्माण करते थे। उन दीयों की जरूरत पड़ती थी। वह भी पर्व–त्योहार पर। अब कहाँ रहे पहले जैसे पर्व और कहाँ रहे त्योहार। भागती जिंदगी और बदलते मूल्यों ने अधिकांश की परिभाषा बदल दी है। अब तो जीवन जीने और उससे जुड़े मूल्यों और सिद्धांतों की ही बात रही है तो फिर मिट्टी के दीये और बरतनों का जिक्र भी अब शहरों में खासा मतलब नहीं रखता।

जैसा कि पहले जिक्र किया जा चुका है कि वह गाँव के कुम्हार जाति का बेटा था। एक पिछड़ी जाति पर उसके यहाँ का पानी चलता था और यही सोचकर उसे काम के वास्ते शहर लाया गया था, इस बड़की मेमसाहब के यहाँ घर का काम करने लिए। पहले ही दिन उसका सामना उस काले कप, छोटे–से शीशे के गिलास और छोटी–सी प्लेट से हुआ था।

शत्रुघ्न के पिता घीसू ने पुश्तैनी धंधा किया था पर शायद शत्रुघ्न की दुनिया इन बरतनों की परिधि में सिमटकर रह गई थी। वह गाँव में बढ़ई का काम करते थे और लकड़ी में चीरा लगाते थे। और उसकी लकड़ी को काट–काटकर फर्नीचर बनाते थे। अपने काम में कोई बड़ी महारत नहीं हासिल थी, पर अगर ठीक–ठाक पलंग, कुरसी बन जाए तो गाँव में उससे

अधिक की क्या जरूरत थी! फिर सब–के–सब तो जमीन में सोनेवाले आदमी। कौन सा बड़े पलंग की आदतें थी! यह आदतें और चोंचले तो शहरी लोगों को ही सुहाते हैं या गाँव के बड़े जमींदारों को।

शत्रुघ्न तो ठहरा कुम्हार का बेटा, जो अब बढ़ई का काम कर रहा है। फिर शत्रुघ्न का बड़ा भाई जालंधर जाकर बस गया था। घर पर कर्जा था दस हजार का। उसको तो कैसे भी सुलटाना था। शत्रुघ्न को भी उसके पिता ने बड़का साहब के पास भेज दिया था काम करने के वास्ते।

"मेमसाहब, मुझको कितना मिलेगा?" यह प्रश्न तीसरे दिन ही शत्रुघ्न ने मेमसाहब पर दागा था। पहले दो दिन तो वह सिर्फ एक कोने में पड़ा रोता रहा। उसका मन नहीं लग रहा था। लगता भी कैसे, माँ की याद जो आ रही थी। उसने तो भागने तक की कोशिश की थी। मेमसाहब ने पकड़कर ज्यादातर समय अपने पास ही बैठा रखा था।

मेमसाहब स्कूल की प्रिंसिपल थीं और पहले तीन दिन तो उसको अपने साथ ही ले जाती थीं। वह पूरे दिन उनके दरवाजे के बाहर बैठा रहता था। वहाँ मौजूद रमेश भैया से बातें करता था। पर उसका मन रमेश भैया से ज्यादा घर में मौजूद रामायण भैया में लगता था। रामायण उसी के शहर बेतिया का था और आते ही रामायण से उसको अपनत्व हो गया था।

रामायण उसके लिए अच्छा महकता हुआ चावल बना देता था और चुपके से चाय बनाकर पिलाता था। रामायण अच्छा बढ़िया खाना, मेमसाहब के सो जाने पर बना देता था। और उसी काले कप में उसको थमा देता था। शहर आने पर वह काला कप उसका अस्तित्व बन गया था।

"रामायण भैया अच्छा हैं, मेमसाहब।"

"हूँ" चाय बनाते–बनाते मेमसाहब बोलीं।

"वह क्या घर चला गया है?"

"नहीं, वह यहीं पटना में हैं। मेरे मित्र का नौकर है, वहीं गया है।"

"आपने उन्हें भेज दिया होगा?"

"नहीं, वह कुछ दिनों के लिए ही आया था। जब तक दिक्कत थी। अभी दिक्कत है स्टाफ की। इसलिए मेरे मित्र के यहाँ से वह आ गया था।"

"तो क्या रामायण भैया यहीं है।"

"हाँ।"

"मैं उनसे मिल सकता हूँ।"

"हाँ, कभी ले चलेंगे तुम मन लगाकर काम करो तो तुम्हारी नौकरी परमानेंट हो जाएगी। बाहर जो गार्ड बैठता है, जानते हो कितना पाता है? पूरा दस हजार। कभी इतने रुपए एक साथ देखे हैं?"

शत्रुघ्न ने देखे तो नहीं थे, पर पिता पर इतना कर्ज है, इस बाबत वह जानता था। कर्ज के साथ–साथ ब्याज भी पड़ रहा है, इसको भी वह जानता था।

"मेरे को कितना मिलेगा?" दुबारा यह प्रश्न उसने पूछा।

"तुम्हारे पिता से बात हो गई है। पांडेयजी ने उनसे बात कर ली है। जितना भी मिलेगा, सीधे उन तक पहुँच जाएगा। क्या तुमको खुशी नहीं होगी कि तुम अपने पिता के कर्जा सधाने में मदद कर रहे हो? सोचो, यह तुम्हारी नौकरी है।"

वास्तव में, धीरे–धीरे करके उसका मन लग गया। पिता का कर्जा सधाना और उसमें योगदान देना उसको अच्छा लगा। रामायण भैया को वह थोड़ा भूल गया था, पर उस काले बेडौल टूटे कप ने उसका पीछा नहीं छोड़ा।

मेमसाहब ने उसमें उड़ेलकर उसको चाय दे दी और एक पुरानी प्लेट में दो बिस्कुट, जिसको वह तुरंत गटक गया।

उस कप का मनुष्य के आने के पहले तक कोई अस्तित्व न था। रंग–बिरंगे कपों की शृंखला में वह अस्तित्वविहीन, श्रीहीन था। बरतनों के ढेर में एक कोने में पड़ा रहता था। वह एक पुरातत्व टी–सेट का बचा हुआ, एकमात्र अवशेष था। उसके समस्त साथी या तो इस संसार को अलविदा कर चुके थे या फिर हीन–क्षीण अवस्था में गो–डाउन में डाल दिए गए थे। पता नहीं यह कप कैसे सद्‌गति प्राप्त होने से बच गया और सुंदर–सलोने कप सेटों के बीच वैसे ही जगह पाता रहा, जैसे आधुनिक भवनों और अट्‌टालिकाओं के बीच पुराने अवशेष।

आज इस कुम्हार के बेटे के भाग्य में वह अवशेष, सौभाग्य बन आ गया। वह अकेले नहीं आया। साथ में एक प्लेट को भी साथ लाया। और छुटकू शत्रुघ्न का भाग्य बन वह उसके जीवन का स्थायी हिस्सा बन गया।

मेमसाहब चौके का काम देकर चली गई और ऊपर जाकर अपने छोटे बाबू को तैयार करने लगीं।

वह अभी चाय गटक ही रहा था कि मेमसाहब की आवाज आई–''चलो शत्रुघ्न जल्दी करो, बहुत काम पड़ा है।''

शत्रुघ्न भी पहले दो दिन मेमसाहब के साथ स्कूल गया था। पढ़ने के प्रति उसका खासा रूझान नहीं हो पा रहा था।

"मेमसाहब!" वह तेजी से चीखा। वह जब भी मेमसाहब को बुलाता था तो स्वर में एक तीखापन रहता था या सोचता हो कि शायद छोटे लोगों के ऊँचा बोलने से कोई ज्यादा प्रभाव पड़ता हो या वह सोचता हो कि बड़े लोग ऊँचा बोलने से ही सुनते हैं। अमीर लोग हमेशा बहरे–गूँगे थोड़े ही होते हैं।

मेमसाहब को देख, उसका स्वर थोड़ा संयत हुआ। शायद उनकी मौजूदगी ने एक सुरक्षा का बोध करा दिया हो।

"मेमसाहब! आज भाई से बात हो जाएगी क्या?"

"हे भगवान्! तुमने भाई की बात के लिए सुबह–सुबह परेशान किया। अरे बच्चा! सुबह का समय मेरा बहुत ही व्यस्त रहता है। सब काम फटाफट करके स्कूल जाने की मुसीबत होती है। स्कूल से लौटकर, तब बात करेंगे।"

"मेमसाहब, एक हाफपैंट दीजिएगा।"

"हाँ। ठीक है, ठीक है।" और मेमसाहब अपने बेटे को यूनीफॉर्म पहनाने लगीं। सफेद क्रीज लगी शर्ट, ब्राउन पैंट–टाई। राजा बाबू लग रहा है बिटवा हमार!" आँखों ने अपने बेटे की सुदंरता मन–ही–मन तौली और ढेरों बलाईयाँ लीं। नीचे आकर उसको स्पष्ट दिया, "साहब को खाना देना। चौका साफ करके रखना, दूध नहीं उबालना। और फ्रिज से निकालकर मिठाई खा लेना।"

"मैं मिठाई नहीं खाऊँगा, मेमसाहब!'' शत्रुघ्न ने कहा।

"क्यों?" आश्चर्य से मेमसाहब ने पूछा–"अपने भाई के लिए ले जाएँगे।" वह थोड़ा स्वर ऊँचा करके बोला।

मेमसाहब हँस दीं, "तब की तब देखी जाएगी। अभी से रखेंगे तो मिठाई खराब जो जाएगी। बुद्धू कहीं का!"

और वे गाड़ी में बैठ निकल गई।

शत्रुघ्न दूर तक गाड़ी को जाते देखता रहा। तब तक, जब तक गाड़ी आँखों से ओझल नहीं हो गई।

उसके बाद सारा काम–धाम छोड़कर उसने बाबू का गिटार उठा लिया और बजाने लगा।

काफी देर बजाता रहा। जब बजाते–बजाते थक गया तो बाबू की पुरानी घड़ी देख उलटने–पलटने लगा। जब उससे भी मन ऊब गया तो बाहर जा बच्चोंवाली साइकिल चलाता रहा। दस मिनट नहीं, पूरे बीस मिनट उसने साइकिल चलाई होगी। फिर जाकर गार्ड रूम में सो गया। और तब तक सोता रहा, जब तक मेमसाहब स्कूल से वापस नहीं आ गई।

"क्या बुतरू, सारा काम पड़ा है।" मेमसाहब का स्वर थोड़ा कड़ा था। आँखें मलते हुए शत्रुघ्न उठा। मेमसाहब ने तुरंत ही अपने क्रोध को संयत कर लिया। अभी इस बंदे की सख्त जरूरत थी, कहीं भाग–भूग गया तो मुश्किल।

पर्स रखकर मैडम सीधे चौके में आ गई।

"कितनी रोटियाँ सेंके?"

"तीन।"

रोटी सेंककर मेमसाहब उसको सब्जी देने लगीं। "नहीं, सब्जी ठीक नहीं लगता है। थोड़ा तीता कम है। थोड़ा घी दे दीजिए, खाना हो जाएगा। नहीं तो आम से खा लेंगे।"

"गाँव में तुम आम खाते थे?"

"हाँ, खरीदकर।"

"रोज।"

"हाँ। नहीं, कभी–कभी। खरीदकर खाते थे, मेरे भाई–बाप ने कभी खाने में कोई दिक्कत नहीं की है।"

मेमसाहब थोड़ी देर उसका मुँह ताकती रहीं। एक गरीब लड़का, जिसको वह भूखा–नंगा समझी थी, उनको बातें सुना रहा था।

उसको खाना निकालकर उसके बरतनों में दे दिया गया। शत्रुघ्न को भी इन चार दिनों में जैसे अपने बरतनों की आदत–सी हो गई थी। उसके यहीं के प्रवास के साथी उसके अपने। उसकी पहचान। छुटकू से बुतरू तक की यात्रा के प्रत्यक्ष गवाह।

शाम को मेमसाहब उसको अपने साथ मंदिर ले गई। और मंदिर से लौटते–लौटते वह इतना थक गया था कि भाई का नाम तक उसके जेहन

से मिट चुका था। वह कमरे में गया और भूखा ही सो गया। रात में सबने खाना खाया, पर शत्रुघ्न को किसी ने नहीं उठाया।

"सोने दो। थक गया होगा। नाहक उठाकर खाना बनाना पड़ेगा। सोने दो।" शत्रुघ्न की तथाकथित मेमसाहब अपने छह वर्षीय बच्चे को पोसा–पोसाकर खिलाने लगीं। वह हर बार नहीं खाने के लिए मचलता, पर बेचारा डाँट खा, फिर खाना शुरू कर देता।

धीरे–धीरे वक्त बीतता गया। अब शत्रुघ्न भी घर को इतना याद नहीं करता था। अब तो उसने ललककर कुछ माँगना भी कम कर दिया था। उस दिन वह मेमसाहब के साथ मेला गया था।

उसने उनका हाथ पकड़कर खींचा, "इधर आइए।"

"क्या हुआ बेटा?"

"मेमसाहब चश्मा।"

"अच्छा," मेमसाहब दुकानदार की तरफ मुखातिब हुई। "कितने का है?"

"पंद्रह रूपए का।" दुकानदार ने कहा।

पंद्रह, शब्द पर जोर था, "पंद्रह ज्यादा नहीं हैं, दस लो दस, बस एक दाम।"

"नहीं, बारह में लेना हो तो ठीक।" और सौदा पटना नहीं था। जाहिर–सी बात है, चश्मा खरीदा नहीं गया।

और शत्रुघ्न चुप हो, गाड़ी में बैठ गया।

शत्रुघ्न को घी कुछ ज्यादा ही सुहाता था। एक दिन चुपके से थोड़ा निकाल लिया। मेमसाहब ने पूरा कनस्तर ही अंदर रखवा दिया था।

"मेमसाहब, दूसरी गंजी नहीं है! ठंड लग रही है। पंखा नहीं चलाना।"

और शत्रुघ्न बाबू के खेलनेवाले कमरे में घुमड़िया के सो गया। रात में शीत का प्रकोप बढ़ गया और वह काँपने लगा। उसने कसकर ठोड़ी को अपने से चिपका लिया। बारिश में भीगने से उसका कपड़ा भीग गया था। कोई विकल्प नहीं था।

पर उस शाम शत्रुघ्न, शत्रुघ्न बेटा के बजाय शत्रु का धन बन गया।

उस दिन घर मेहमानों से भरा था। स्वादिष्ट पकवान बन रहे थे। तरह–तरह के व्यंजनों की महक उड़–उड़कर वातावरण में इंद्रधनुषी खुशबू

पैदा कर रही थी। मेहमानों में दो मर्द और दो औरतें थी। साथ में बाबू के साथ खोलनेवाले दो छोटे–छोटे बच्चे। शत्रुघ्न कभी भागकर चौके में जाता और कभी बच्चों को कुछ स्वादिष्ट व्यंजन पकड़ाकर आता। बीच में उसका बदन टूट गया। ऊपर–नीचे के घर में सीढ़ी उतरते–चढ़ते उसका जी हलकान हो गया। महक उसके नथुनों के माध्यम से फेफड़ों में प्रवेश कर रही थी और खून में साँस के साथ घुल, वह पेट में जा, कुलबुलाहट पैदा कर रही थी।

एकाएक परोसते उससे रहा न गया। उसने इधर देखा और उधर। कहीं कोई दिखाई न दिया। उसने सबकी नजर बचाकर ब्रेड का पकौड़ा मुँह में रख लिया। और सफाई से मुँह पोंछ ट्रे लेकर कमरे में आ गया। किसी को पता न चला।

पकौड़े का टेस्ट मुँह में घुल रहा था। काफी स्वादिष्ट बना था। वह दूसरा उठाने की हिम्मत न कर पाया।

"शत्रुघ्न चलो, आओ। पकौड़े बच्चों को दे आओ।"

"जी, आता हूँ।" मेमसाहब ने तीन प्लेटें लगाकर उसको पकड़ा दीं। हर प्लेट में चार पकौड़े थे। ले जाने के क्रम में उसने हर प्लेट से एक पकौड़ा निकाल लिया और बच्चों के सामने रखकर अपना हिस्सा ले, वह कमरे से सटे छत के एक कोने में चला गया और अँधेरे में छिपकर पकौड़े खाने लगा।

एक–दो बार उसे मेमसाहब की आवाज कान में पड़ी। वह शायद उसे पुकार रही थीं। वह खाने में इतना मशगूल था कि उसने ध्यान न दिया।

''कहाँ मर गया शत्रुघ्न?'' और वह तब चौंका, जब एक कड़क–सी आवाज बहुत ही पास सुनाई दी। एक चौड़ी विशालकाय काया उसके ठीक पास मौजूद थी। उसने चोरी से निगाह उठाकर देखा। मेमसाहब थीं। उसने हाथ का पकौड़ा कस के मुट्ठी में भींच लिया।

मेमसाहब ने एक निगाह उसके मुँह पर डाली और एक हाथ पर और माजरा समझते उनको देर न लगी।

"चोर कहीं के! चोरी से बच्चों का खाना चुराते हो! बाप का यही खून तुम्हारे अंदर है! और काम के वक्त मटरगश्ती। चलो, ढेर काम पड़ा है।"

शत्रुघ्न की आँखों में आँसू आ गए। उसका हाथवाला पकौड़ा वहीं गिर गया और जेबवाला, उसके विषय में तो उसको स्मरण ही नहीं रहा। और

चोर शत्रुघ्न चौके में पहुँच फटाफट काम में मदद करने लगा। पूरे माहौल में एक अजीब–सी खामोशी थी। मेमसाहब का पारा चढ़ा हुआ है, इसको वह अच्छे से महसूस कर रहा था। उसकी आँखों में बड़े–बड़े आँसू टप–टप गिरकर आटे को गीला कर रहे थे।

शायद पानी नहीं, उसके आँसुओं से आटा गुँथ रहा था।

सबके जाने के बाद समेटते–समेटते काफी देर हो गई। मेमसाहब भी मेहमानों के जाने के बाद काफी थक चुकी थीं। उन्होंने उससे ज्यादा कुछ नहीं कहा। पर व्यवहार में तनातनी थी। सब बरतन धोते–धोते आधी रात बीत गई। तब तक सब खर्राटे ले रहे थे। उसका खाना वैसे ही उन बरतनों में रखा था, पर खाने को जी नहीं कर रहा था। उसने रोटी को बाहर ले जाकर सड़क पर डाल दिया। कुत्ता आएगा तो खा लेगा और दाल को नाली में बहा दिया। वह झट–पट अपने बरतन धोने लगा। पता नहीं क्या हुआ, पर वह काला कप टूट गया। पुराना तो था ही। हाथ गलत पड़ गया था, बरतनों से टकरा गया, पर वह टूट गया। कप टूटकर दो टुकड़ों में विभक्त हो गया और एक टुकड़ा उसके हाथ में गड़ गया। कस के शायद गड़ा था, क्योंकि खून बलबलाकर बह निकला। उसके मुँह से एक दबी–घुटी हुई चीख निकल गई–'ओई माई' और वह बिलख उठा।

कप के टुकड़े होकर वॉश बेसिन में ऐसा गिरा कि उसके अनेक टुकड़े हो गए। उधर कुम्हार के घर शत्रुघ्न की माँ अचानक रात में अँधेरे में उठकर बैठ गई, "मन नहीं लग रहा है। शत्रुघ्न कैसा है? थोड़ा जी घबरा रहा है।"

बाहर बयार में तेजी थी। सभी जलते दीये बुझे जा रहे थे। कुम्हार के हाथ के गढ़े हुए अनगढ़ दीये आज के बिजली के युग में सिर्फ मद्धिम रोशनी ही दे पा रहे थे इसलिए कुम्हार ने अपना पेशा बदल लिया था। वह बढ़ई हो गया था; क्योंकि कुम्हार तो सिर्फ गढ़ता था। छोटे दीये, छोटे मटके, बड़े घड़े और उसी के घड़ों में हम पानी पीते थे। उसका पसीना मिलकर, वह रचना होती थी। आज खून बह, कप टूट रहा है। वह काला कप, उसके ऊपर खून की बूँदें छिटकर गिर गई थीं। काले रंग पर लाल धब्बे क्यों पड़े, क्या कभी पता चलेगा?

शत्रुघ्न सिर को घुटने पर टिकाये सिर्फ रो रहा था। गरीब का खून था, अब भी वह बह रहा था।

■

ऋषिकेश पड़ाव

हर यात्रा का एक गंतव्य होता है और अनेक पड़ाव। यात्रा में उससे जुड़े पड़ाव ही किसी यात्रा को महत्वपूर्ण बनाते हैं। अनेक यात्राएँ सीधी–सपाट समाप्त हो जाती हैं और उनसे कोई विशेष मकसद बाहर निकलकर नहीं आता है। मैं अपने पति के साथ गई हुई थी मसूरी प्रवास पर। वहाँ मेरे पति की ट्रेनिंग थी और उसमें परिवार को रखने का प्रावधान था। अतः मैं भी बच्चों समेत वहीं विद्यमान थी। जीवन में आए हुए सुनहरे मौके कौन गँवाना चाहता है। इनसान हर समय मौकापरस्त होता है। अवसरों के अधीन उसका बस चले तो वह अर चीज में सिर्फ स्वयं का फायदा देखे। फिर मैं क्यों उससे अलग होने लगी! चलो पति को फ्री में ट्रेनिंग के लिए मसूरी भेजा गया है, तो हम भी छुट्टियों का आनंद लें और ग्रीष्म के अवकाश में सर्द खुशनुमा मौसम का लुफ्त उठाएँ! तो हम सब मसूरी की वादियों में सपरिवार विद्यमान थे।

वहाँ सब लोगों के बीच में वक्त कैसे बीत गया, पता ही न चला। लगा, मानो फिर से हम सब बचपन में लौट आए हैं। जिंदगी एक रूटीन ढर्रे पर चल पड़ी। सुबह समय पर ब्रेकफास्ट, भोजन और रात का खाना। बच्चों से लेकर हम सब नियमबद्ध हो गए। न खाना पकाने की चिंता, न बच्चों की देखभाल की। सबकुछ मशीनी पर सुचारू। ठीक–ठाक चल रहा था। इसी बीच, बच्चों ने बड़ों के लिए एक नाट्य संध्या का आयोजन किया, जो बेहद अच्छे ढंग से संचालित था। सभी ने उसका भरपूर आनंद उठाया। ऐसे ही हँसी–खुशी से वक्त कब बीत गया, इसका इल्म तब हुआ, जब आखिरी दिन आया और एक–एक करके सब–के–सब विदा होने लगा। हर चीज का एक अंत होता है और इस ट्रेनिंग का भी हो गया। अब रह गए हम अकेले। जब तक सब लोग थे, वक्त खलता न था, अब जैसे काटने को दौड़ता है। हम लोगों ने अपना स्टे तीन दिन और बढ़ा लिया था।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। और यही सामाजिकता उसको जीवन में मन लगाने के लिए बेहद आवश्यक है। अगर वह अलग–थलग पड़कर

जीवन काटे तो शायद बोरियत के अंधकूप में गिर जाए। सामाजिकता में वक्त तो नष्ट होता है, पर कभी–कभी सीखने को भी बहुत कुछ मिलता है। हानि के साथ लाभ भी जुड़ा हुआ है। हर चीज को देखने के दो पहलू हैं। और सबसे अहम बात यह है कि आपमें स्वयं कितनी काबिलियत है, मौके और वक्त का लाभ उठा पाने की। इसलिए दोष वातावरण से ज्यादा स्वयं का होता है। उसी परिवेश में रहकर अनेक आगे बढ़ गए, जो पीछे रह गए, वे नाकाबिल।

खैर, वही स्टाफ जो हमारी तीमारदारी में जुटा रहता था, अब उखड़ा–उखड़ा रहने लगा। जैसे हमारे लिए खाना बनाना एक बोझ हो। जाहिर–सी बात है, इनसान को जिस चीज के लिए तनख्वाह मिलती है, उसको सिर्फ उसी की सार्थकता लगती है, बाकी सब तो फालतू हैं। इसीलिए समाज की सेवा तो फालतू का शगूफा बहुतों को प्रतीत होगा; क्योंकि बिना दाम के क्या काम!

इनसानियत जैसी चीज अभी मरी नहीं है, कहीं–कहीं जिंदा है। और ये उस दिन महसूस हुआ, जब हम सबको डायरिया हो गया। बेहद पतले दस्त। ये नौबत आ गई कि उठने में भी कष्ट का अनुभव होने लगा। तब उसी अकादमी के एक स्टाफ ने पूरे दिन सेवा की। अच्छे से दवा–दारू और भोजन का इंतजाम किया। शाम तक कहीं जाकर हमारी हालत सँभली थी। उस तकलीफ में उस इंसान की थोड़ी सी मदद भी ईश्वर का अनुपम तोहफा प्रतीत होता है। सही बात है, जीवन जब तक सुचारू रूप से चलता है, तब तक उसमें अनगिनत शिकायतें रहती है और तकलीफ नजरअंदाज हो जाती हैं। उनका बोध तो तब होता है, जब हम पर मुसीबत आती है। ऊपरवाले का रहम तभी अनुभव होता है, नहीं तो हम कभी यह स्वीकार ही नहीं कर पाते कि हमारे साथ भी कुछ बुरा हो सकता है। हर व्यक्ति स्वयं को एक फरिश्ता और दूसरे को शैतान समझता है। मानव बुद्धि की यह एक बहुत बड़ी भूल है।

अब पति को वहाँ रुकना मुनासिब न लग रहा था। उनका मन उचटने लगा था। वही शख्स, जिसको पहाड़ बेहद हसीन लगते हैं, अब काटने को दौड़ने लगे थे। वहाँ उन्हें कुछ करने को नजर नहीं आता था, वैसे भी पहाड़ों पर हम लोग करने क्या जाते हैं? पहाड़ी सौंदर्य में रहकर अपने चित्त को शांत करते हैं। मुझे पहाड़ कतई अच्छे नहीं लगते। एक तो उन

तक पहुँचना बेहद कठिन (जिसे देखकर चक्कर आते हैं), ऊपर से जीवन वहाँ सिमट–सा जाता है। ऊँचे–ऊँचे पहाड़ अपनी समझ को बौना होने का एहसास कराते हैं। शुरू–शुरू में तो उनके सामने आदमजात मैं, अपने को बेहद क्षुद्र–सा महसूस करती थी। इतने वर्ष उनके समीप जाकर भी कहाँ अपने को कहीं संयमित कर पाई हूँ!

इस बार ऐसी कोई भावना मेरे अंदर नहीं पनपी। पता नहीं क्यों, इस बार एक बेहद शांति का एहसास हुआ। एक आनंद की अनुभूति। कुछ तो जादुई करिश्मा इन पहाड़ों में है। इनके मध्य बैठकर इनसान भी इनके जैसा शांत और गंभीर हो जाता है। मैंने भी धीरता और गंभीरता का अनुभव किया। पहाड़ अपनी जगह अडिग हैं और हमारे अंदर भी उसी स्थिरता का संचार करते है।

शायद ऋषि–मुनि इसलिए इन पहाड़ों पर प्रवास करते हैं। अपने चित्त को उसी तरह स्थिर और दृढ़ बनाने के लिए।

एक दिन फाजिल वहाँ न रुककर मेरे पति ने ऋषिकेश जाने का विचार बनाया। मेरी बेटी सहित मेरी सम्मिलित राय इसके विपरीत थी। हम एक दिन मसूरी में ही रुकना चाहते थे। अब इतनी दूर आ गए हें तो एक दिन में क्या कुछ बिगड़ जाएगा? बिगड़ तो खैर एक क्षण में जाता है, एक दिन तो बहुत दूर की बात है, पर फिर भी इंसान मंसूबों में ही जीता है। वह कभी नहीं सोचता कि अगले क्षण उसकी दुनिया पूरी उलट–पलट हो सकती है। वह तो इसी उम्मीद में जिए जा रहा होता है कि जीवनपर्यत उसका कुछ बिगड़ नहीं सकता। संपूर्ण जीवन उसके बनाए सपनों के आधार पर चलेगा। जैसा वह सोचेगा, वैसा उसका जीवन गुजरेगा।

शायद कभी–कभी ऐसा होता है, पर अधिकतर मनुष्य का सोचा नहीं होता। बहुत–सी बातें ऊपरवाले ने अपने हाथों में रख ली हैं और जिनका खुलासा वक्त आने पर ही होता है।

वापसी का टिकट देहरादून से था। अतः ऐसे भी ऋषिकेश जाने में पूरा आर्थिक नुकसान था। अर्थ की चिंता ज्यादा करनी नहीं चाहिए। अगर भाग्य में लक्ष्मी है तो वह आकर स्वयं दरवाजा खटखटाएगी। अगर नहीं है तो घर के अंदर से लगे पीछे के दरवाजे से धीरे से खिसक जाएगी। धन के सिर्फ तीन उपयोग हैं–भोग, दान और विनाश। अगर धन का दान और भोग संभव नहीं तो धन विनाश की राह पकड़ता है। संचय से धन कभी एकत्रित

नहीं होता। जो रुकना होता है, वहीं रुकता है। नहीं तो बीमारी, चोरी, रोग कितने साधन हैं, उसके विनाश के। अतः अर्थ की चिंता सबसे कम करनी चाहिए। जैसे भी जितना है, उतना भोगना चाहिए। कल की चिंता, कल पर टाल देनी चाहिए। ऐसे भी कल अपने हाथ में तो है नहीं। कल छुपा हुआ है, काल के गर्त में और उसकी परतें खोलना थोड़ा नामुमकिन है। अच्छे–से–अच्छा भविष्यवक्ता भी काफी कुछ नहीं बता पता। बता पाता है तो सिर्फ ईश आराधना और उसी के निमित्त हम निकल पड़े ऋषिकेश यात्रा पर।

ऋषिकेश तक पहुँचने के लिए सड़क ही एकमात्र साधन था। पहाड़ों की यही विडंबना है कि उन तक पहुँचने के लिए सड़क के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। इतनी दुर्गम और कठिन यात्रा ही उन तक पहुँचने का साधन है। यही पहाड़ों की विवशता है। उनकी कठिन और दुर्गम यात्रा। शायद इतनी दुर्गम चढ़ाई न होती तो पहाड़ों को भी इनसान कब का बरबाद कर चुका होता। इनसानी फितरत है कि वह हर सहज, सुलभ वस्तु को अपनी इच्छा के अनुरूप तहस–नहस करता है। निजी स्वार्थ में वह हर प्राकृतिक संपदा का जमकर दुरुपयोग करता है। यह मानव–मन का सीमित संसार है, जो स्वः से आगे और कुछ का भी भेद नहीं ले सकता। वह हर चीज का इस्तेमाल स्वः से शुरू कर के स्वः पर ही खत्म करता है। स्व की लड़ाई में वह स्वयं तो हारता ही है और साथ में प्रकृति का विनाश करता है, क्योंकि प्रकृति ही हार उसी की हार है। वह प्रकृति पर निर्भर है, उस पर प्रकृति नहीं।

मसूरी से हमने टैक्सी पकड़ी ऋषिकेश के लिए। अकादमी से ही हमारे ठहरने की व्यवस्था रामानंद आश्रम में हुई थी। टैक्सी हमें पुल के एक तरफ छोड़ गई। वहाँ से आश्रम करीब 2 किलोमीटर दूर था। पैदल यात्रा और समान। कम–से–कम एक सौ रुपए का अतिरिक्त भाड़ा था। इतने सामान के साथ यात्रा करना एक बेहद खर्चीला शगल हैं जितने का एक सूटकेस नहीं, उससे अधिक का भाड़ा देते–देते परेशान। खैर, इसी से कुलियों को रोजगार मिलता है और कितने ही घर चलते हैं। जब आदमी बाहर रहता है तो सिर्फ अपने ही अर्थ को सोचता है, दूसरे का उसे किंचित् मात्र भी ख्याल नहीं रहता है। ऐसे हम लोग बड़ी–बड़ी बातें करते हैं, सोशल वर्क के नारे लगाते हैं, पर जब अपने पर बीतती है तो सब शोषण

पर उतर आते हैं। गरीब का एक रुपया भी हम दबा ले जाएँ तो अंदरूनी तौर पर हम अपने को विजयी समझते हैं। वहीं जब हमारा हक मारा जाता है तो हम बेहद आक्रोशित हो अपनी बात रखते हैं। हमारी संवेदनाएँ दूसरों और खासतौर पर गरीबों के लिए नगण्य रहती है। हमारे बच्चे दैनिक जीवन में जाने कितना रुपया टॉफी और खिलौने के नाम पर बरबाद कर देते हैं। वह हमें मंजूर है, क्योंकि उससे हमारा बच्चा आनंदित हो रहा होता है। इस आनंद में उसका स्वास्थ्य कितना खराब हो रहा है, इसकी हमको चिंता नहीं रहती, पर उतने ही पैसे में उचित मजूरी से किसी के परिवार के बच्चों को भोजन नसीब हो जाता है, उसकी हमें चिंता नहीं रहती। वहाँ हम किफायत और कंजूसी करते हैं।

ले–देकर हम रामांनद आश्रम पहुँचे। यहाँ पर पहुँचते ही कोई दिक्कत नहीं हुई। अकादमी से रहने की व्यवस्था कर दी गई थी। इस रामानंद में नॉन–एसी से लेकर एसी कमरे तक कम–से–कम एक हजार थे। वाकई नाम से अनुरूप यह रामानंद ही था। स्वयं का भी कल्याण और तीर्थयात्रियों का भी। जाते ही हमें भोजन कक्ष में ले जाया गया। क्या स्वादिष्ट भोजन था! इतना अच्छा खाना अगर इस आश्रम में मिलता था, तो फिर वाकई मोक्ष की डगर कभी कतई मुश्किल नहीं होनी चाहिए। स्वादिष्ट भोजन और आरामदेह आवास। किसी को जीवन में और क्या चाहिए?

हमारी अगर जीवन में जिम्मेदारियाँ पूरी हो गई होतीं तो हम भी भगवा पहन मोक्ष के पथ पर चल चुके होते। माँ ममतामयी आश्रम को करोड़ों का डोनेशन आता। एसी कमरे में विदेशियों के मध्य हम स्वर्ग में व्यतीत करते, जब लाखों–करोड़ों व्यक्ति भूख से पीड़ित नरकीय जीवन का संताप भोग रहे होते हैं। खैर, इस व्यवसाय को शुरू करने में ज्यादा इल्म की भी जरूरत नहीं। इसमें तो शुद्ध रूप से सबकुछ ऊपरवाले के हाथों में है। उसका नाम भज और तर जा जीवन के पार। उस ईश्वर के समक्ष तो हम सब तुच्छ–सी वस्तु हैं और जब उसके शरणगत हो गए तो शुभ कल्याण अस्तु! सब तरफ कल्याण ही कल्याण है। उसकी शुद्ध गंगा में ये डुबकी लगा रहे हैं।

रामानंद आश्रम के सामने से गंगा बहती हैं हिंदुओं की जीवनदायिनी गंगा। इसी गंगा को लेकर हिंदुओं का साम्राज्य और संस्कृति विकसित हुई। और सौभाग्यवश हमारे ही कमरे की खिड़की के ठीक सामने से स्पष्ट

गंगा के दर्शन होते थे। जीवनदायिनी नदी मेरे सामने से बह रही थी और अंदर एक अजब–सा रोमांच था।

रात में छककर खाने के बाद खूब गहरी नींद आई। अच्छे भोजन का स्वाद और सुकून देह बिस्तर की गरमाहट, कब आँख लग गई, पता ही न चला। एसी की कमी भी न खली। वैसे भी एसी रूम मिलता नहीं। उत्तरांचल के सी.एम. एवं संजय दत्त सपरिवार वहाँ मौजूद थे। संजय दत्त अपने दिवंगत पिता की अंत्येष्टि के लिए आए थे। गंगा में नहाकर और अंत समय गंगा में प्रवाहित होकर अनंत जन्मों के लिए पाप समाप्त हो जाते हैं। अतः हम हिंदू मरते–मरते भी पापरहित हो जाते हैं। अर्थात् हमें पाप करने का जन्मसिद्ध अधिकार मिला हुआ है। आराम से पाप करो, जेबें भरो, गंगाजल और तुलसीपत्र मरते–मरते मुँह में डालो और सब कल्याण! अर्थात् हे वत्स! अगले जन्म में तुम्हारा पाप का खाता जीरो। अगर गलती से नालायक बच्चे गंगा जल पिलाना भूल जाएँ या जीवन में एक बार भी गंगा में डुबकी न लगाई हो, तो काम खत्म। हर समस्या का रेडीमेड जवाब। ऐसा न कर पाओ तो वैसा। पर फिर भी हमारे ही देश में गरीबी, भुखमरी, अकाल मौतें असंख्य हैं और गीता के उपदेश के अनुसार, आत्माएँ अपने जन्मों–जन्मों के कर्मों को भोग रही होती हैं कर्म और उससे संबंधित फल का सिद्धांत हैं अर्थात् मृत्यु पर कर्म समाप्त नहीं होते, चाहे जितनी भी डुबकी गंगा के जल में इनसान लगा ले। गंगा के वैज्ञानिक आधार को हमारे ऋषि–मुनियों ने धार्मिक कर दिया और उसकी महत्ता बढ़ाकर उसे धर्म से जोड़ दिया। गंगा के जल में घुला सल्फर, फॉस्फोरस एवं अन्य रासायनिक पदार्थ उसकी गुणवत्ता बढ़ाते हैं और गंगास्नान से अनेक व्याधियों का उपचार सरल बनाते हैं धार्मिक के आश्रमों और गुरुओं की सदैव से चाँदी रही है। जिस देश में धर्म व्यवसाय हो, वहीं हर चीज के धार्मिकीकरण की अत्यंत आवश्यकता है। ये तो हर चीज का व्यवसायीकरण है और कुछ नहीं।

जहाँ मेरे परिवार के अन्य लोगों ने स्नान किया, वहीं अपने चरणों को गंगा में डाल मैंने अत्यंत गौरवान्वित महसूस किया। एक महत्वपूर्ण बात का उल्लेख करना तो मैं भूल गई। इन आश्रमों में मैंने अनेक छोटे बच्चों को धार्मिक शिक्षा लेते देखा। अच्छा ही है, गरीब पल रहे हैं और उनके जीवन में धर्म का उद्देश्य भी परिवर्तित हो रहा है। नही तो ये बच्चे पंडित न बनने तो चोर बनते । तो जो होता है, अच्छा ही होता है।

घाट पर एक परिचित मिल गया। उसने पूर्व में मेरे साथ सामाजिक सेवा की हुई थी। अभी यहीं विदेशियों को योगा सिखा रहा है। और कुछ एक विदेशी मित्र एकत्रित कर विदेश जाने का वीजा सेट कर रहा है। विदेश पहुँचा नहीं कि योगा के नाम पर धंधा शुरू। हर्बल और योगी और सिद्ध हो गया जोगी।

अब शाम घिर आने को थी। शाम को गंगा आरती देख हमें प्रस्थान करना था। दीपदान और दीपयज्ञ मुझे शुरू से भाता है। दीपों का एक साथ जलना रोमांचित कर देता है। अंधकार से प्रकाश की ओर सभी जाना चाहते हैं। जीवन में अंधकार हमेशा से मुझे भयभीत करता आया हैं तेज रोशनी भी उद्वेलित करती है, पर मद्धिम दीपों का प्रकाश आँखों को भाता है। रात्रि की कालिमा को दूर करता है। ज्योति हमेश आगे ले जाती है। फिर अपने से सर्वोच्च की तो स्तुति होनी चाहिए। गंगा हमारी संस्कृति, अपने पूर्वजों का सम्मान है।

हे गंगा तुझे शत–शत प्रणाम!

गंगा आरती पूरी भी नहीं हो पाई थी कि हम हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर पाए। रास्ते में जीव–जंतु से भरा हुआ टेढ़ा–मेढ़ा पथ। हर मोड़ पर लगता कि अब हाथी या तेंदुआ आ जाएगा। ये तो खैर छोटा–सा वन था, पर हमारा जीवन तो स्वयं एक गहन वन है, जहाँ हर मोड़ पर न जाने कितने भेड़िए और चीते हमें फाड़ खाने के लिए खड़े हैं। हर यात्रा का एक आदि होता है, एक पड़ाव और एक अंत। और इस यात्रा का भी अंत करीब था। हरिद्वार के स्टेशन से हमे लखनऊ के लिए गाड़ी पकड़नी थी। हमारी रोमांच और खुशनुमा यात्रा का यह सुखद अंत था।

■

हाईवे की यात्रा

हाईवे की यात्रा....ब्रेक का अनवरत चलना। बहुत मन बना हाईवे पर एक लांग ड्राइव के लिए निकले। रास्ता लंबा पर सुगम चुना। मौसम सुहाना था, हवा मन्द पर शीतल प्रतीत होती थी। आनन्ददायक यात्रा का अनुभव सुकून और हर्ष देने वाला था।

हॉर्न दे निकल पड़े यात्रा पर। बस थोड़ी हवा खाकर आ जाएँगे। रोड भी अच्छी बन पड़ी थी। लग रहा था कि बस फिसलते चले जाएँगे। गाना लगा आँख मूँद बैठ गए। अभी आँख लगी ही थी कि चर्र... स्टेयरिंग पर एक झटका लगा। ब्रेक लगते–लगते भी गाड़ी काफी दूर तक घिसट गई। आँख किसी अनहोनी की आशंका से अचानक खुल गई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो प्रलय आ गया है या फिर जीवन में कुछ भयंकर घटित हो गया है। चर्र–हाँ वाकई एक कुत्ता था। नहीं, ऐसा कुछ नहीं था। एक मरियल–सा कुत्ता नौटंकी करता हुआ गाड़ी के नीचे आ गया था। कुत्ता वह भी कुपोषित। सरकार ने लगता है अभी कुपोषित जानवरों पर कोई अभियान नहीं छेड़ा है। नहीं तो बस एक कहानी बनती–एक कुपोषित कुत्ता गाड़ी के नीचे आकर मरा। शुक्र है कि मरा नहीं। कुत्ते को बचाते–बचाते भी गाड़ी का संतुलन बिगड़ गया था और वह सड़क पर मानो नशे की स्थिति में झूमने लगी। विडम्बना ऐसी कि वह कुत्ता इतनी भारी गाड़ी का भी दंश झेल गया। हाईवे का कुत्ता था, ट्रक के नीचे मरने की आदत जो थी। गाड़ी, स्कूटर तो बस खरोंच मारकर निकल जाती थीं। हाईवे के कुत्ते को मारने का माद्दा तो सिर्फ ट्रक में था। वह कोई मामूली जानवर तो था नहीं जो हर ऐरे–गैरे से भिड़ जाए। हाईवे का कुत्ता था!

खैर कुत्ते को लेकर अस्पताल तो भागना न था। बस ऊपर वाले का नाम लेकर उस मरियल कुत्ते को मरने के लिए वहीं छोड़ आगे बढ़ गए। अब लगा कि हाईवे पर आनन्द–ही–आनन्द आएगा। नींद थोड़ी देर के लिए उड़ गयी थी अतः बाहर दृष्टि डालकर दृश्यों का आनन्द लेने लगी।

वाह क्या दृश्य है। एक के बाद एक कुटिया, झुग्गी–झोपड़ी, गरीबी, बदहाली। लगा कि सच में वास्तविक भारत गाँव में ही बसता है। देश की समस्त सार्थकता यहाँ चरितार्थ हो रही थी। अधनंगे बच्चे, भूख से सिकुड़ा पेट। पर यह सब कब से मेरी समस्या हो गई? समाजसेवा तो नामीगिरामी लोगों का पेशा है। टीवी मिडिया की कवरेज उन्हीं को ही प्राप्त है। हम आम आदमी क्योंकर समाज का ठेका उठाएँ ? समाज ने हमें दिया ही क्या है?

अभी मैं इसी मंतव्य पर मंथन करते हुए दृष्टिगोचर थी कि अचानक फिर ब्रेक लगा। इस बार लगता है मानो पूरे गाँव की गाय बिरादरी घूमते–घामते हुए अपने सहपाठी के विवाह भोज के लिए जा रही थी। किसी को हड़बड़ी नहीं थी। वक्त ही वक्त था। फिर क्यों हड़बड़ाया जाए। हर दृश्य का आनन्द लेते हुए बारात आगे बढ़ी जा रही थी। बड़े–बूढ़े उसमें सभी शामिल थे। उनको देखकर 'विलियम वर्डसवर्थ' की एक कविता की पंक्तियाँ स्मरण हो आती थीं कि हमारे पास कब समय है खडे होकर प्रकृति का आनन्द लेने का पर यहाँ इन भैंसों और उनको हाँकने वाले मालिक से इस सैद्धांतिक समस्या का हल यह मिला कि सारी समस्या का समाधान स्वयं के पास है। अगर हम खड़े होकर ताकना चाहेंगे तो ताकेंगे, झाँकना चाहेंगे तो झाँकेंगे, इस पर सिर्फ हमार अधिकार है। चूँकि इस देश में रहकर हम अपने हर अधिकार का उपयोग नहीं करना चाहते तो यह हमारी समस्या है।

वैसे समाज में अक्सर देखने में आता है कि समाज जरूर रखवाला बन हर एक के जीवन में ताका–झाँकी करता है। वह अपनी इस अहम् म्हती भूमिका से कब पीछे हटा है यह उसको ज्ञात नहीं। समाज प्रहरी बन इस पर कड़ा अंकुश रखता है कि पुरुष जरूर मतवाला हो जाए पर स्त्री को लक्ष्मण–रेखा पार करने का विचार भी नहीं आना चाहिए। औरत को डायन घोषित करने में समाज कभी भी पीछे नहीं हटा। अगर दो–चार चुड़ैलें समाज में छुट्टे नहीं घूमेंगी तो फिर बच्चे भय किसका खाएँगे? भूत आया–भूत आया कहकर दादी माँ किसको दूध पिलाएँगी? समाज की संरचना कहानी–कविताएँ बनना ही बंद हो जाएँगी। इसलिए आज भी समाज में भूतों, डायनों, चुड़ैलों आदि को जिन्दा रखकर इस सभ्य समाज को भयभीत करने का अधिकार समाज ने सुरक्षित रखा है। पर मुझे आज तक यह बात गले के नीचे नहीं उतरी कि जब समाज चुड़ैलों

को निर्वस्त्र कर और कीचड़ खिला अपमानित करता है तो वह चुड़ैल जो इतनी शक्तिशाली रहती है कि किसी को भी स्वाहा कर सकती है, वह उस समाज का बाल भी बाँका क्यों नहीं कर पाती? अपमान सहते हुए समाज के सामने बेइज्जत हो जाती है। है न हास्यपद कि कौन बड़ा–चुड़ैल, डायन या समाज और इसी समाज में जाँति–पाँति का साँप फन फुफकारता हुआ कभी भी डसने को तैयार रहता है पर विडम्बना यह है कि जब कभी किसी शोषित–उपेक्षित को अधिकार देना होता है तो यही समाज नाक, आँख, कान बंद कर लेता है और सिर्फ अपना मुँह खोल उनकी निन्दा करता है।

जैसे बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद, वैसे ही भैंस के आगे बीन बजाने का क्या फायदा–वैसे भी समाज के आगे राग अलापने का कोई फायदा नहीं। समाज तो बंदर और भैंस से भी गया–बीता है। उसका तो सिर्फ अपना ही राग है और वह अपनी ही धुन अलापता है।

खैर धीरे–धीरे करके अपनी गति से वे गाय–भैंस आगे निकल गई। उनको जाने में जितना वक्त और रास्ता देने में समय लगा उतने में तो एक क्रान्ति की बिगुल फुँक गयी होती।

भैंसों को रास्ता दे, हम आगे बढ़े। निश्चिन्त थे कि मार्ग बढ़िया है। अब कुछ दिक्कत नहीं होगी। अपना वाकमैन कान से लगाया और संगीत का आनन्द लेते हुए रास्ता नापने लगे। एक–दो–तीन और यह क्या! चर्र से गाड़ी का ब्रेक फिर से लगा और ऐन उसी वक्त जब संगीत का स्वर अपने चरम पर था–उसकी ध्वनि में यह अहसास ही न हो पाया कि कब एक झटका लगा और मेरा सिर गाड़ी के आगे वाली सीट से जा टकराया।

दर्द का अहसास बाद में होता पहले तो एक डाँट का स्वर ड्राइवर के लिए निकला। पर उस बेचारे की भी क्या गलती थी। सामने एक लहराता हुआ साइकिल वाला झूमता मदमस्त रास्ता पार कर रहा था। जाहिर है कि हर नागरिक का सम्मान होना चाहिए। उसका भी हुआ। कम–से–कम उस साइकिल सवार की स्थिति उस कुत्ते से तो बेहतर ही थी।

चलो जो हुआ सो हुआ। गाड़ी ने फिर अपनी गति पकड़ी थी। एक बार गति अवरूद्ध हो तो शुरू किया जा सकता है पर बार–बार अवरूद्ध हो तो लय और ताल में तारतम्य खत्म–सा हो जाता है। मूड भी कुछ–कुछ ऑफ होने लगा था। आगे जाने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। वापसी का

सफर भी लंबा था। एक बार सफर में जो निकल जाओ तो वापसी की राह कठिन होती है। फिर भी वापस तो जाना ही था।

चलो अब तो घर वापस पहुँचेंगे। घर पहुँचने की हड़बड़ी और उत्तेजना सुकून प्रदान करने वाली होती है।

अब आगे तो न जा पायेंगे पर कम–से–कम घर तो सकुशल पहुँच पायेंगे। हाईवे के इस आनंद में गाँव के भी दर्शन हो गये। भारत देश की आत्मा तो गाँव में बसती है। वास्तविक दर्शन करना हो तो गाँव की ओर जाओ। हम नहीं कह रहे। चूँकि राष्ट्रपिता का सपना था कि गाँव–गाँव की ओर हर भारतीय नागरिक को उन्मुख होना चाहिए तो कम–से–कम इतना आत्मिक सुकून तो आया कि हम गांधीजी के पदचिन्हों पर आज की तारीख में भी चलने का प्रयास करते हैं। नहीं तो आम और खास नागरिक ने उनको भूलकर, उनकी यादों को मात्र रुपये, चौराहों और पार्कों तक सीमित कर दिया है। आप हर शहर के सबसे प्रतिष्ठित पार्क में चहलकदमी कर रहे होंगे, वहीं गांधी मैदान होगा। और जिस चौराहे पर अंग्रेजी हुकूमत का कभी परचम लहराया होगा वह भी गांधी चौराहा होगा हर पल गांधीजी को जीने के बाद भी हम अभी तक गांधीजी के आदर्शों को न जी पाये। मुझे सुकून हुआ कि कम–से–कम आनंद के बहाने ही सही मैं गांधीजी की राह पर कुछ डग चल पाई और उनके सपने को जी पाई।

गाँव के कच्चे–पक्के रास्ते, उस पर टूटी–फूटी झोपड़ियाँ, अधनंगे बच्चे, यौवन की दहलीज पर छुटी हुई माँ, पोपले मुँह की बुढ़िया! काश मेरे पास कैमरा होता तो मैं इन सबका फोटो खींच लेती और इन्टरनेशनल मैगजीन को ऊँचे दामों में बेचती। सैर के बहाने कुछ पैसा भी आ जाता। अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत। चलो अभी भी देर नहीं हुई है। इस देश में ऊपर वाले की असीम कृपा से विकास की रफ्तार काफी कम है। ऊपर वाले से मेरा तात्पर्य ईश्वर से भी है और ऊपर बैठी सरकार से भी है। ऊपर वाले ईश्वर पर आम भारतीय नागरिक की इतनी असीम आस्था है कि जब वो देता है तो छप्पड़ फाड़कर देता है। देश की जनसंख्या इसका ज्वलंत उदाहरण है। ईश्वर अपने नेक बन्दे को सिर्फ खाने के लिए एक मुँह देता है पर कमाने के लिए दो हाथ। और सरकार, वह तो हर पाँच साल में संपूर्ण आश्वासन देने आती ही है और सरकार को तो अपने आम और अवाम का इतना ख्याल है कि वह स्वयं अपने महल को छोड़ अवाम के

बीच उसका हाल–चाल पूछती है। ऊपर वाले सर्वदा नेक ही होते हैं। देते हैं तो खजाना ही लुटा देते हैं।

मेरा सफर तो वापसी का था। अभी खयालों के पुलाव में मैं विचरण कर ही रही थी कि गाड़ी ब्रेक लगते–लगते भी एक तरफ लुढ़क गई। जब तक मैं समझ पाती कि गाड़ी खड्डे में थी। हुआ कुछ गोया यूँ था कि सड़क को खेल का मैदान समझकर गाँव के कुछ तेज–तर्रार बच्चे भागम–भाग करते हुए गाड़ी के नीचे आने ही वाले थे कि गाड़ी भी खेलने को उतावली हो गयी। वह भी उनके चक्कर में लुढ़कती–पुढ़कती सड़क पर अठखेलियाँ करती खड्डे में जा गिरी। असल में दोष उन बच्चों का न था। दोष तो प्रारब्ध का था। हमारे देश में सब–कुछ प्रारब्ध का ही खेल है।

देश में अभी तो खेल की मानो बयार ही बह रही है। आईपीएल, धोनी, सानिया मिर्जा सब के सब जुटे हुए हैं, देश को ''चकदे'' कर देने के लिए। ''गोल पर गोल'' दागा भी इसलिए जा रहा है कि यहाँ का आधा पेट खाया हुआ बालक देश का भावी कर्णधार बने और देश को इन्टरनेशनल पटल पर पहुँचाने का भरसक प्रयास करे। जब से ग्लोबलाइजेशन का जमाना आ गया है तब से हर गाँव ग्लोबल विलेज बन गया है। पता नहीं कब इस विलेज से उठकर कोई भिखमंगा देश का भावी सितारा बने। ''कोटा राज'' में तो अब सब–कुछ जायज है। खैर, सैर का आनंद लेने के चक्कर में गाड़ी खड्डे में जा गिरी। हमारे देश में अगर यह खबर मीडिया को हो जाये तो मैं रातोंरात सैलिब्रिटी बन जाऊँ। गाँव में अभी आर्मी को बुलाना पड़ेगा और वह घंटों के अथक प्रयास के बाद मीडिया की पैनी निगाह में मुझको और मेरे ड्राइवर को बाहर निकालती। शायद ऐसा न भी होता क्योंकि मैं कोई बालक तो हूँ नहीं, वयस्क हूँ। वयस्क को मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। मेरे अपने लिए तो जिन्दगी की ढ़ेर कीमत है। लिहाजा मैं अथक हाथ–पैर मार रही हूँ, और अपने को गड्ढे से निकालने के लिए मैं जीवन की जद्दोजहद् में जुटी हुई हूँ।

कभी–कभी गोया बस यह चन्द खयाल लम्हों में आते हैं कि शायद यह खड्ड हमारे देश की उसी व्यवस्था की तरह है जिसमें गिरने के बाद बमुश्किल कोई तैर किनारे लग पाता है।

हम भी खड्ड में गिरे छटपटा ही तो रहे हैं, शायद कोई निकाल ले।

■

टुकड़ों-टुकड़ों में औरत का.....

हवा तेजी से चल रही थी। वैसे भी हवाएँ तेजी से चलती हैं तो बवंडर आते हैं। दूर से ही रेगिस्तान में गुबार उठते हुए आ रहे थे। रह–रहकर वे तपती धरती को ढक जाते। जब मौसम साफ होता तो एक धूल मिश्रित खामोशी सब तरफ छिटक जाती। ऐसी ही एक शाम बसंती अपनी कुटिया के बाहर बैठी थी और खाली बर्तनों को इधर से उधर घुमा रही थी। हवा के झोकों और बर्तनों की टनटनाहट का स्वर उस उदास शाम को एक संगीत का रूप दिए जा रहे थे। बसंती अपनी जगह से उठकर उस स्थान पर गई जहाँ उसकी एकमात्र फटी–पुरानी साड़ी फैली हुई थी। हवा का तेज बहाव आने के पहले वह उसको समेटकर अन्दर रख देना चाहती थी।

अरे ये क्या! पता नहीं कहाँ से हवा का एक तेज झोंका आया और उसका वस्त्र हवा के साथ उड़ता चला जा रहा था और वह उसके पीछे–पीछे भागी चली जा रही थी। वह भागकर साड़ी को पकड़ना चाहती थी। और पकड़ भी लिया था पर उसका पैर एक पत्थर पर पड़ा, वह गिरी और साड़ी का जो कोना उसके हाथ में था वह छूट गया। वह बदरंग–सी साड़ी अपनी पूरी विद्रूपता से मुँह चिढ़ाते हुए हवा के झोंकों के साथ अनन्त में विलीन हो गयी।

वह काफी देर तक बैठकर अपनी विलोप होती साड़ी को देखती रही। शायद उसको साड़ी के उड़ जाने का इतना दुख नहीं था। वह फटी–पुरानी साड़ी भला कौन–सा तन ढ़क पाती थी। अच्छा हुआ उड़ गयी। उसे नई साड़ी पहनने का नसीब प्राप्त होगा। कैसे प्राप्त होगा? उसी सोच में डूब गई। हवाएँ अभी भी पूरे वेग से चल रही थीं। उनका वेग थर्रा देने वाला था। पर वह इन सबसे बेखबर अपनी ही चिन्ता में डूबी हुई थी। पीछे अभी भी खाली बर्तन टनटना रहे थे। उसके बच्चे इन सबसे बेखबर अन्दर सो रहे थे।

उसकी चिन्ता काली रात से भी अधिक स्याह थी। वह उसी में आकण्ठ डूबी काली स्याह रात के आगमन से बेखबर थी। खबर तो तब

हुई जब अन्धकार पूर्णरूपेण अपना पैर धरा पर पसार चुका था। चारों तरफ स्तब्धता फैल चुकी थी। वह सोच–सोचकर हताशा के भँवर में फँस ही जाती अगर दूर क्षितिज पर आशा की पहली किरण के आगमन का उसको अहसास न हुआ होता।

हाँ उसने सुन रखा था कि दूर देश के पहाड़ों के उस पार बढ़िया और अच्छी साड़ियाँ बिकती हैं। शायद उसकी साड़ी भी वहीं कहीं उड़कर चली गयी हो। वह उसको भी ढूँढेगी और उस देश से नयी साड़ियाँ भी खरीद ले आयेगी। उसके जो अधनंगे बच्चे हैं, उनके तन को ढकने के लिए भी कपड़े मिलते हैं। ऐसा उसने सुन रखा था। भोर होने को थी। वह उनींदी आँखों से अपने बच्चों को देखकर दूर देश की पहाड़ियों की ओर चल पड़ी जहाँ कई किस्म के सुन्दर वस्त्र थे। इन रंगीन कल्पनाओं से तो उसने तत्काल अपने मन को सुख पहुँचाया परन्तु उसकी कल्पनाएँ साकार कैसे होंगी ? कारण रुपयों का अभाव था।

अर्थाभाव का अहसास होते ही उसकी कल्पनाओं का महल क्षण में ढह गया और वह निराश और उदास हो गई। वह नदी–नाले को पार करती हुई एक शहर में आ गयी।

यह शहर बहुत ही अजीब था। क्रमबद्ध तरीके से इमारत खड़ी थीं। इमारतों की क्रमबद्धता कौतूहल और भय पैदा करती थी। साफ–सुथरी चमचमाती सड़कें थीं, उसने ऐसी सड़कें अपने जीवन में कभी नहीं देखी थीं। उसके गाँव में तो सड़क का नामोनिशान भी न था और जो पगडंडी थी वे भी वहाँ आते और जाते हुए भँवर के इशारों पर बनती और बिगड़ती रहती थी। वह सीधी चमकदार सड़क पर चलती गई। उसका मन भयाक्रांत था। ऐसे अनजान शहर में उसको दिशानिर्देश देने वाला कोई नहीं था। एक इमारत से दो लोगों को निकलते देखकर उसने थोड़ी राहत की साँस ली। पर जो लोग बाहर निकले थे वे तो तन पर वस्त्र ही नहीं डाले हुए थें। एक अजीब प्रकार की जालीदार पोशाक उन्होंने पहन रखी थी। उनके पास जाने से भी वह सिहर उठी। उन्हें देखकर उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो सीमेंट की इमारतों में लोहे के लोग बसते हों। नहीं, उसने शायद एक मनुष्य की आँख में कुछ हलचल महसूस की थी। संभावित है कि शायद उसको देखकर एक आँख झपकी भी थी। शायद उन सूनी आँखों ने उसको पहचानने का प्रयास भी किया था। बसन्ती ने लाजवश अपने तन को फटे–पुराने कपड़ों

से ढकने का प्रयास किया पर–व्यर्थ। उन आँखों में संवेदनाएँ आकर वापस चली गई। नहीं, जिन आँखों में संवेदनाएँ जागी थी, वह तो स्त्री के ही नयन थे। हाँ कुछ–कुछ स्त्री जैसी प्रतीत हो रही थी। तभी तो शायद उसका दिल बसन्ती के लिए धड़का होगा। पर बदलते वक्त ने शहर की औरत को भी बदल दिया था। उनके अन्दर की संवेदनाओं और भावनाओं को पाषाण सदृश कर दिया था। खैर ये सब गुजरे जमाने की बात थी। उस पर चिंतन व्यर्थ था। वैसे भी वह शहर भावनाएँ एकत्रित करने नहीं आयी थी, उसकी तो समस्या कुछ और ही थी।

शहर में कहीं दुकानें न देखकर वह सोचने लगी–'बड़ा ही अजीब शहर है, यहाँ तो सारे बाजार में ही वस्त्र नहीं मिल रहा। फिर स्त्रियाँ अपना तन ढकती कैसे होंगी!'' वह विस्मित–सी खाली पड़े पूरे बाजार में घूमती रही। शहर का नयापन उसके मन में एक विस्मय भर रहा था। अनिश्चित–सी वह घूमती रही। निरूद्देश्य वह भटकती रही। आगे बढ़ने पर उसने अपने विचारों को नियंत्रित किया और उद्देश्यों को चिन्हित। वह यहाँ व्यर्थ नहीं आई है। उसे भी कुछ करना है। और ये विचार मन में आते ही नेत्रों में चमक लौट आयी और चेहरे पर तेज। जब जीवन में कोई उद्देश्य आ जाता है, चाहे वह कितना भी छोटा हो, तो इंसान दुगने उत्साह से जीवन को जीने लगता है। पर इस वीरानगी में जाये तो कहाँ जाये? तभी आगे बढ़ने पर उसे एक जगह एक इमारत बनती नजर आयी। वहाँ कुछ हलचल थी। कुछ लोग भी नजर आ रहे थे। वह उसी तरफ बढ़ गयी।

वाकई एक भवन बन रहा था। भवन क्या मंदिर था। उसी का भूमि–पूजन हो रहा था। विशाल मंदिर की नींव रखी जा रही थी। औरतें भी इस पुनीत कार्य में जुटी हुई थीं। पर उसने गहन आश्चर्य से देखा कि औरतों के तन धूल और मिट्टी से सने हुए थें। दूर खड़ा एक चुस्त–दुरूस्त आदमी आँखों पर चश्मा पहने पारदर्शी वस्त्रों में ढका पूरे काम का मुआयना कर रहा था। हिम्मत बटोरकर वह आगे बढ़ी। अपनी रामकहानी कहकर उसने काम की गुहार लगाई। उस व्यक्ति ने बसंती को ऊपर से नीचे तक सरसरी निगाहों से देखा और एक फीकी हँसी हँस दिया।

''कल से काम पर आ जाना।''

सूरज ढल चुका था। वह उसी मंदिर के अहाते में रात बिताने के विचार से ईंटों के ढेर के पास बैठ गई। उसके तन पर फटे हुए कपड़े थे।

हवाओं का झोंका उसे बेपर्दा कर देना चाहता था। उरोजों को एक झीनी पारदर्शी साड़ी का आवरण पहना वह निश्चित हो निद्रा की गोद में सो गयी। निद्रा के आगोश में थकान को उतारकर वह कल की मेहनत के लिए पूरी तरह तत्पर हो गयी।

दूसरे दिन प्रातः मर्दों और औरतों की भीड़ का वह हिस्सा थी। उन्हीं औरतों के साथ वह भी काम करने लगी। जब मंदिर बनते काफी दिन बीत गए तो एक दिन उसने कान्ट्रेक्टर से अपने काम का हिसाब माँगा। कान्ट्रेक्टर ने शाम को आकर हिसाब चुकता कर देने का वचन दिया। शाम ढलते ही पैसे लेने के लिए वह कान्ट्रेक्टर साहब के बंगले पर पहुँच गई। आज उसके उद्देश्य की पूर्ति का पुनीत दिन था। उसकी खुशी का पारावार न रहा।

संयोग से कान्ट्रेक्टर साहब उसकी मजूरी का ही हिसाब निकाल रहे थे। हिसाब में तो उसको मजबूत होना ही चाहिए था।

''क्या हुआ साहब?'' जब इस औरत से रहा न गया तो थोड़ा सहमकर बोली।

''समझ में नहीं आ रहा कि तुम्हारा हिसाब कहाँ गड़बड़ा रहा है। बात यह भी है कि मंदिर निर्माण हेतु तुम्हें भी कुछ दान करना होगा।'' कान्ट्रेक्टर काफी देर सोचता रहा। उसके चेहरे के भावों को पढ़ पाना आसान न था।

बसन्ती को एक झटका लगा। वह और दान... फिर पहले तो वह विस्मित हो ठेकेदार को देखती रही। उसे लगा कि ठेकेदार उसकी गरीबी देख उसका मजाक उड़ा रहे हैं। फिर वह जोर–जोर से हँसने लगी। उसकी हँसी थमने का नाम ही न ले रही थी। ऐसा उसके जीवन में कभी नहीं हुआ था जब उस गरीब से किसी ने दान माँगा हो। जब हँसी थमी तो भी ठेकेदार साहब के चेहरे पर दृढ़ता और स्पष्टता का भाव था और आँखों में एक खोज। उसको आर–पार देख सकने की जीत। उस पर एक पूर्ण एकाधिकार और वह काँप उठी। हँसी भी ठहर गयी और जोश थम गया। वह एक कोने में बैठकर गहन सोच में डूब गयी। वह हार गयी थी....। हारकर भी उसकी समझ में यह बात आ गयी कि मंदिर में लगी औरतें क्यों धूल से अपने तनों को ढके कार्य में लिप्त थीं। ये उनका मंदिर निर्माण के कार्य में छोटा–सा मूल्य था या फिर पेट की आग के आगे एक छोटी–सी भेंट....

उसे भी तो गाँव वापस जाना है और जल्दी....

इसी विचार–विमर्श के बीच एक काले भुजंग व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया। उसके शरीर का रंग उस काली रात के रंग से भी स्याह था। अगर उसकी आँखों में एक अजीब–सी लाल चमक न होती तो उसको परिवेश से अलग कर पाना असंभव था। उस कृत्रिम चमक ने उसको एक चेहरा दिया था क्योंकि उसका शरीर तो नग्न था। हमाम में सब नंगे ही थे।

बसंती को बातचीत के क्रम में पता चला कि यह व्यक्ति इस इलाके का बड़ा नेता है और इसी की देखरेख में यहाँ पर काम हो रहा है। मंदिर के नाम पर ये वोट का अपना प्रयोजन सिद्ध कर रहा है। उसने संयत स्वर में पूछा कि ''इस मंदिर की नींव डालने में कितने शरीरों का प्रयोग हुआ है।'' ठेकेदार अदब से बोला कि निर्माण कार्य में जितनी ईंटें लगीं उतने ही इन्सान। इसलिए मंदिर अब सिद्ध बनेगा क्योंकि इन्सानों ने नीचे बिछकर जगह को जाग्रत कर दिया है।

उसके वचन सुन नेता टाइप आदमी स्वाभाविक रूप से हँसा। पहली बार इस औरत ने इस शहर में होठों पर हँसी देखी थी। नहीं तो, बेजान आदमियों को देख–देखकर वह भी शून्य में प्रवेश कर रही थी। उसके अन्दर की भावना भी मरने लगी थी।

अब बातों का केन्द्र बिन्दु मंदिर निर्माण न होकर उस औरत के निर्वाण पर आकर टिक गया। नेता तो नेता होता है। उसके पास तो हर समस्या का हल है..... क्यों–शायद सबसे बड़ी समस्या तो स्वयं वह ही होता है। कुछ भी हो नेता तो नेता ही होता है। इसीलिए आम और अवाम ने सोच का ही सर्वथा त्याग कर दिया है। क्या फायदा नाहक सोचने का। सोचने का बीड़ा तो नेताजी टाइप लोगों ने अपने ऊपर ले लिया था। अधिक दिमाग का इस्तेमाल....

पौ फटने वाली थी। प्रातःकाल का प्रवेश होने वाला था और नये दिवस की शुरूआत। उस प्रभात की ज्योति के साथ नेताजी को एक हल मिल ही गया। औरत को उसकी साड़ी का एक हिस्सा कान्ट्रेक्टर को देना होगा, बतौर मुआवजा। निर्णय ले लेने की खुशी नेता के चेहरे पर थी। आत्मज्ञान का गौरव मस्तक का तेज, होंठों की मुस्कराहट बन उभर रहा था। इसमें भी एक समस्या थी। साड़ी का कौन–सा हिस्सा उनको अर्पित होगा। तत्काल निर्णय आँचल पर आकर टिक गया।

वह औरत इस बात पर अड़ गयी। नहीं वह आँचल का भाग नहीं दे सकती। आँचल तो उसके बच्चों का दूध ढकता था। तो देने लायक हिस्से पर विचार हुआ और बात आकर साड़ी के अग्र भाग पर ठहर गयी। औरत ने मस्तक नीचे कर बात मान ली और उस हिस्से को भेंट स्वरूप दे आगे बढ़ गयी।

इस विराट शहर में एक आसरा था वह भी गया। वह मंदिर के दर पर बैठ गयी। प्रभातकाल में अंजलि भर पानी में स्नान करके पुजारी आ रहे थे। एक औरत को यूँ बैठा देख वह ठहरे।

''क्या हुआ! तुम कौन हो?

''मैं यहाँ साड़ी की तलाश में आयी, एक अभागिन हूँ।''

पुजारी थोड़ा देर उसकी तरफ देखते रहे। फिर मंदिर के अन्दर गये और एक गीता लाकर उसके हाथ में दे दी। उसको समझाते हुए बोले, ''द्वापर युग में जब द्रौपदी को भरी सभा में चीर की आवश्यकता पड़ी थी उसने श्रीकृष्ण को पुकारा था। लो यह गीता तुम्हारी मदद करेगी।''

गीता को हाथ में पकड़े वह काफी देर बैठी रही। उसको उम्मीद थी कि शायद उस पुस्तक को पकड़ने मात्र से कुछ ईश कृपा होगी और उसके अन्दर से चीर अवतरित होगा। वह काफी देर बैठी रही और कुछ विशेष न होते देख वह पुस्तक को पकड़कर सड़क पर चीर की तलाश में आगे बढ़ गयी। अभी वह थोड़ा आगे निकली ही थी कि पीछे से कुछ तेज स्वर ध्वनित हुए–

''पकड़ो–पकड़ो। चोर....चोर...!''

इससे पहले कि वह औरत कुछ सँभल पाती भीड़ उसको ढकेलती हुई आगे ले गयी और थोड़ी दूर ले जाकर छोड़ दिया। पुस्तक अब भी उसके हाथ में थी और एक दारोगा उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसने सब लोगों से भिन्न प्रकार की पोशाक पहनी हुई थी। सफेद रंग की पोशाक में काले धब्बे थे। धब्बे इतने ज्यादा थे कि सफेद रंग अदृश्य समान हो गया था। फिर भी कहीं–कहीं से उभरकर दिखने जैसा प्रतीत हो रहा था। पेट के ऊपर का हिस्सा पूर्ण रूपेण सफेद था पर हृदय स्थान पर काले धब्बे स्पष्ट थे।

''क्यों चोरी की है। वह भी गीता की? हमारी गीता की चोरी करने का दंड तुम जानती हो क्या है? वह सजिल्द किताब है। हम लोग इसको इतना

पवित्र मानते हैं कि इसका पठन नहीं करते हैं। इसको सिर्फ पवित्र अलमारी में गंगाजल से पवित्र कर, ताले में रखते हैं। इसकी चाभी सिर्फ यहाँ के पुजारी के पास रहती है और साल में एक दिन इसके दर्शन के रखा गया है। उस दिन यहाँ ढ़ेर उत्सव होते हैं। और तुमने उस गीता को उठाकर सीने से लगाने की जुर्रत की। इसकी सजा तुम जानती हो!''

बतौर सजा उसको जेलखाने में डाल दिया गया। उससे पवित्र सजिल्द गीता लेकर वापस अलमारी में बंद कर दी गयी। दोपहर होने पर उसको जेलखाने के बाहर लाया गया और दारोगा ने उससे प्रश्न पूछना शुरू किया।

''तुमको सुबह से बंधक रखना तो हमको भारी पड़ रहा है। तुमको एक रोटी जो सुबह खाने के लिए दी गयी थी उसका इंतजाम हम लोग कहाँ से करेंगे?''

हाँ, सुबह एक रोटी तो उसको मिली थी। पर उसका एक टुकड़ा खाने के बाद उसे अपने बच्चों की याद हो आयी। उसने उस रोटी को अपने आँचल के कोने में कसकर बाँध लिया था। जिससे किसी की भी निगाह उस रोटी पर न पड़े। यहाँ से निकलकर ये रोटी वह अपने बच्चों के लिए ले जायेगी–

उसने निगाह नीचे कर ली। दारोगा के सफेद पेट पर अब भी उसकी दृष्टि पड़ रही थी। दारोगा ने उस तरफ इशारा करके आदेश दिया।

''ये कैसे भरेगा ?''

नहीं वह रोटी नहीं दे सकती। इस रोटी के असंख्य टुकड़े अनगिनत दिन तक उसके बच्चों का पेट भरेंगे।

''तो ठीक है साड़ी का एक टुकड़ा उसका मूल्य चुका देगा।''

वह राजी हो गयी। स्वतंत्रता के लिए ये घाटे का सौदा न था। बात फिर इस पर आकर टिक गयी कि कौन–सा हिस्सा उनको दान स्वरूप दिया जाये। बात मध्यम भाग पर तय हो गयी। वह सहर्ष तैयार हो गयी। अब सिर्फ उसके पास आँचल बचा था। उस भाग को लेकर उसमें रोटी को कस के बाँधकर वह थाने से बाहर आ गयी। खुली हवा में उसने काफी समय के बाद पहली बार साँस ली थी। इस शहर में उसे एक बात अच्छी लगी कि कभी उसने यहाँ हवा का बवंडर चलते न देखा था। हवा हमेशा शान्त बहती थी। उसकी गति भी शायद तय और नियंत्रित थी।

वह अभी शहर की परिधि पर पहुँची ही थी कि इस शहर के एक नौजवान से उसकी भेंट हुई। अभी–अभी यौवन पर उसने कदम ही रखा था। इस शहर में पहली बार उसे श्वेत वस्त्र में कोई व्यक्ति दिखा था। इसका चेहरा भी लुप्त हो रही आदिम जाति जैसा था। कुछ–कुछ शक्ल पहचान में आ रही थी। ये शायद कोई लुप्तप्राय जीव का अवशेष था। उसके अन्दर संवेदनाएँ भी थीं। उसने पहल की–

''चलिए मैं आपको आपके गाँव छोड़ देता हूँ। रास्ते में एक नई साड़ी भी ले दूँगा।''

वह उसके साथ हो चली। अफसोस, शहर की परिधि के बाहर अभी उसने अपना चरण निकाला ही था कि कुछेक युवकों ने उसको रोक लिया।

''ये हमारे शहर का नियम नहीं है।''

''क्या नियम नहीं है?''

''यही कि इस शहर का कोई भी युवक दूसरे शहर की युवती के साथ शहर की सीमाओं को पार करे। इसके लिए तुम दोनों को दंड मिलेगा। हमारे साथ तुमको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित होना पड़ेगा।''

बसंती को उस युवक के साथ न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया। एक खाली कुर्सी के पीछे एक औरत की मूर्ति थी। उस श्वेत मूर्ति की आँखें काली पट्टी से बंद थीं। हाथ में एक तराजू था जिसका एक पलड़ा नीचे और एक ऊपर था।

न्याय शुरू हुआ। इस शहर का न्यायाधीश अदृश्य व्यक्ति था। उसकी सिर्फ आवाज सुनायी देती थी। वह दिखायी नहीं देता था।

''हाँ क्या है मामला? न्याय की प्रक्रिया शुरू की जाय।''

''जी ये इस शहर के एक युवक के साथ शहर की सीमा पार कर रही थी। यही जुर्म किया है इसने।''

''नहीं, मैंने जुर्म नहीं किया है। इस युवक ने मेरे आगे पेशकश की थी कि यह मुझे गाँव छोड़ आयेगा। वहाँ मेरे बच्चे भूखे हैं। मैं उनके लिए रोटी लेकर जा रही थी।''

''पाप, तब तो तुमने महापाप किया है। शहर की रोटी गाँव लेकर जा रही थी। तुमको दंड मिलेगा। युवक की गलती भी नहीं है। जरूर एक स्त्री

होकर तुमने उसको पथ–भ्रमित किया होगा। कोई पुरुष इतना साहसिक कदम उठा ही नहीं सकता है, अगर स्त्री उसको न उकसाये।''

थोड़ी देर सभा–कक्ष में मौन रहा। सब न्याय की आवाज सुनना चाहते थे। न्यायाधीश अदृश्य था पर उसकी आवाज में दम था। कोई उसको काटने की जुर्रत नहीं कर सकता था।

उसकी आवाज गूँजी, ''पहला जुर्म जो कि युवक के शहर की सीमाओं का उल्लंघन करने का है उसके एवज में यह सजा है कि ये इस मूर्ति वाली औरत के हाथ का तराजू बराबर करेगी। जब तक तराजू के दोनों पलड़े बराबर नहीं हो जाते यह इस शहर को नहीं छोड़ सकती। दूसरा पाप जो शहर की रोटी गाँव ले जाने का इसने किया है, उसकी सजा ये है कि ये आँचल सहित रोटी यहाँ न्यायालय में जमा कर देगी। इसके आँचल समेत रोटी जब्त की जाती है। न्याय खत्म हुआ। न्यायालय निरस्त।''

वह औरत मूर्ति वाली औरत की बंद आँखों पर खुले हाथ में झूल रहे तराजू को बराबर करने में लग गयी। कभी एक पलड़ा नीचे आ जाता तो कभी दूसरा। वह पूरा दिन पूरी रात और दूसरे पूरे दिन कोशिश करती रही। जब तराजू को बराबरी पर न ला सकी तो थककर बैठ गयी। रात घिरने को आ रही थी। अचानक जो बंवडर वह गाँव में छोड़ आयी थी वह शहर में चलने लगा। लोग अनायास बिगड़ गये मौसम के मिजाज से भयभीत हो गये। अफरातफरी मच गयी। उसी भगदड़ में वह औरत सब लोगों की निगाह बचाकर शहर की सीमा पार कर गयी। वैसे भी अब वह शहर की अन्य औरतों से भिन्न न थी। उनसे बचने की भी जरूरत न थी। आँचल न्यायालय में जब्त हो जाने के बाद वह शहरी ही प्रतीत हो रही थी।

वह गाँव की तरफ भागने लगी। उसको कितना वक्त लग गया इसका उसे ध्यान नहीं। पर जब पहुँची तो रात घिरने को आ रही थी। मौसम साफ था। बच्चे बाहर बुझे हुए चूल्हे की ठंडी अंगारों पर अपना माँस भून रहे थे। उसकी महक से उस औरत का सिर चकराने लगा। वह बेहोश होकर निढ़ाल गिर पड़ी। उसकी नई साड़ी की चाहत ने उसको उसका सबकुछ छीन लिया था। स्त्री की हर चाहत का मूल्य स्वयं उसे ही चुकाना पड़ता है।

■

अछूत

बाहर घटाटोप अंधकार छाया हुआ था। सावन का मेघ था, बरस जाने को उद्यत। रह–रहकर कड़कती हुई बिजली उस नीरव अंधकार को छेड़ जाती थी, और मेघों को शायद छेड़े जाना पसंद न था। वह उसका प्रतिकार घर्षण पैदा करके करता था। प्रकृति अपनी ही गति से बहती है। उसकी अपनी ही लय होती है, ताल होती है।

उसी तूफ़ानी रात में वह छोटी–सी बालिका डरी, सहमी अपने बाबा की गोद में बैठी थी। उसकी माँ का देहान्त पहले हो चुका था, उसके बाबा धीर–गम्भीर व्यक्ति, जिनकी आँखों में उसने अपने लिए सपना पलते हुए देखा था। मीरा, यही नाम उस बालिका का था के बाबा थोड़ा उम्रदराज व्यक्ति थे। हरि कीर्तन करते हुए कब शादी की सही उम्र बीत गई इसका उनको ज्ञान नहीं हो पाया। अक्ल तब आई जब गाँव के कुछ बड़े–बूढ़ों ने विवाह के लिए दबाव बनाना शुरू किया। अपना कोई सगा परिवार था नहीं जो सही वक्त पर भूमिका बाँध पाता और अपनी जाति में किसी से प्रेम हुआ नहीं अतः चालीस पार करने के बाद भी बाबा अविवाहित ही बैठे रहे।

शायद ब्रह्मचर्य का संकल्प बाबा ले चुके होते अगर सावित्री सरीखी लड़की से उनका जबरदस्ती परिणय बन्धन न हो गया होता। गाँव वाले ही उनके सगे–संबंधी बन बारात में शामिल हुए थे और वही बिरादरी बन सावित्री की मृत्यु पर जीमने आये थे। उन्हीं को खिला बाबा ने अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री कर ली थी। सावित्री की मृत्यु के बाद वे भीतर से टूट गये थे। जमाने से उन्हें विरक्ति हो गयी थीं। सावित्री मरते वक्त मीरा को गोद में डाल गयी थी।

''इसकी परवरिश तुम्हारे हाथ में है। इसमें मेरा प्रतिरूप देखना।'' और बाबा ने अक्षरशः सावित्री की बातों पर मनन किया। मीरा को अपने दिल के टुकड़े की तरह हमेशा अपने करीब रख। मीरा को चोट बाद में लगती पर दर्द बाबा पहले ही महसूस कर लेते। यदि मीरा की उँगली में काँटा गड़ जाता तो बाबा के हृदय में शूल चुभता। बाबा की आँखों की कोरो में एक

अलसाए सपने की भाँति मीरा की जिन्दगी आकर फँस गई थी। बाबा ने अपने लिए जीना छोड़ दिया था और उनका हृदय सिर्फ मीरा के दिल की थाप पर ही धड़कता था।

देखते–ही–देखते मीरा ग्यारह बरस की हो चली थी। अबकी सावन उसको बारहवाँ साल लग जायेगा। बाबा की तपस्या का एक–एक पल उसके रूप और सौंदर्य में टपकने लगा था। बहुत ही सूझबूझ से बाबा ने अपनी मीरा की परवरिश की थी। कहीं से उसके व्यवहार और व्यक्तित्व से ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि उसको माँ का अभाव बचपन से है। बाबा का प्यार उसके सिर चढ़ के बोलता था। वह दर्प उसके रूप एवं सौन्दर्य में उभरकर आता था। अछूत होते हुए भी वह कहीं भी किसी से भी कभी नहीं डरती थी। निर्भीकता उस अछूत का गुण था शायद। आज उसका मन बहुत दुखी था। आँखों में टप–टप आँसू भरे पड़े थे। जो तूफान बाहर घुमड़–घुमड़ कर आ रहा था, वहीं तूफान उसके मन में भी मानो चुपके से कब प्रवेश कर गया इसका इल्म ही उसको न हुआ। वह बालिका अपने रूप एवं बुद्धि के मद में विद्यालय गई थी। वहाँ पर सब–कुछ ठीक था और रोजाना जैसी ही दिनचर्या थी। कुछ अप्रत्याशित घटित होगा वह भी विद्यालय के परिसर में इसकी किसी को हल्की–सी भी भनक न थी। मीरा रोज तो स्कूल आती थी और पढ़ने में भी ठीकठाक थी। बल्कि उसके सहपाठी उससे स्नेह भी करते थे। वह अछूत सभी सहपाछियों के मध्य में बैठती थी, कहीं कोई दिक्कत नहीं, कोई कष्ट नहीं। बालकों के मन में भी कभी कोई संशय न उठा। अछूत क्या होता है इसको नन्हे–मुन्ने बालक भला क्या जानते थे एवं उस विद्यालय के शिक्षक भी शिक्षा के परिवेश में रहते–रहते छुआछूत से ऊपर उठ गये थे। एक मिलनसारिता आ गई थी। अपनेपन का अहसास था। दूसरे के सुख में सुखी और दुख में दुखी होने का उपक्रम तो ग्रामवासी अवश्य करते थे। वह शिक्षिका जो शहर से अभी–अभी आई थी, क्या जानती थी कि जात–पाँत की साँसों में भी अपनत्व घुसा है। पहले दिन ही कक्षा में कदम रखते हुए उसने सबके नाम के साथ उपनाम को भी परिभाषित कर दिया। और उस उपनाम में तो सबकी अपनी पहचान कहीं खो–सी गई।

''ऐ लडक़ी, तुम तो अछूत हो। तुम्हारी कक्षा में बैठने की हिम्मत कैसे हुई ? दहलीज पर बैठो। जाओ बाहर पड़ा हुआ पायदान ले लो और जो

जितना सुनाई पड़े और दिखाई पड़े उसे ही ग्रहण करो। और हाँ एक बात और, भूल के भी अपनी कापी मेरे पास जमा करने की कोशिश न करना। एक अछूत की कापी से तो बड़ी आसानी से छूत का रोग लग जाएगा।''

अपमान का घूँट पीकर मीरा ने अपनी पुस्तक और कापियाँ समेट लीं। उसकी आँखों में गिरते हुए आँसुओं को शायद शिक्षिका महोदया पढ़ भी नहीं पायी। उन आँसुओं में उसका अपना वजूद एकदम से मानो धुल–पुछ गया। वह मीरा से एक संक्रामक छूत का रोग बन गई और बाहर पायदान पर बैठा दी गयी। उसका गुनाह व प्रश्न उसके जेहन में कौंधा था, पर वह उत्तर की अपेक्षा किससे करे, सब तो मौन थे और सबकी आँखों में उपजा वह उपहास था जो रह–रहकर बाहर की ओर प्रकट होना चाह रहा था। वही बच्चे जो कल तक उसके दोस्त थे आज अजनबी बन गये। अपनी पीड़ा वह किससे बाँटें ? किसके उपहास का पात्र बने। नहीं, इतना स्वाभिमान उसमें था और वह सिर कटा सकती थी लेकिन सिर झुका नहीं सकती थी। अपने आँसू उसने आस्तीन से पोंछ लिये।

ये बात उड़ते–उड़ते प्रधानाध्यापक के कानों में भी पड़ी। शिक्षिका से जवाब तलब किया गया। वह अपने उसूलों, संस्कारों और बचपन की परवरिश पर अडिग रही।

''मैं उच्च कुल की कन्या हूँ। मेरे परिवार में शूद्र घर की दहलीज भी नहीं लाँघते और आप उन्हें यहाँ सबके बीच में बिठाते हैं। छीः कहाँ गये आपके सदियों पुरानी मान्यताएँ, विचार, संस्कार और संस्कृति। शूद्र नीची जाति हैं और रहेंगे। मैं अपना स्थानान्तरण दूसरे विद्यालय में करवा लेती हूँ। आपको भी मेरे लिए ज्यादा कष्ट नहीं लेना पड़ेगा। ''एक हिकारत भरी दृष्टि प्रिंसिपल पर डालकर वह खट–खट करती हुई विद्यालय से बाहर निकल गई।

एक अनसुना–अनकहा तमाचा प्रिंसिपल के मुँह पर लगा। यह शिक्षिका मंत्री साहब की अपनी पैरवी थी। इस विषय से वह भलीभाँति परिचित थे। एक शूद्र कन्या के लिए उनकी अपनी कुर्सी थोड़ी डाँवाडोल होने लगी थी। पूरे विवाद की जड़ मीरा अपमानित और उपेक्षित कक्षा की दहलीज पर खड़ी अपमान की घूँट पी रही थी। जब ज्यादा दर्द बर्दाश्त नहीं हुआ तो अपना बैग समेटकर घर की राह पकड़ी।

अक्सर इंसान समाज से लड़ते–लड़ते टूट जाता है तो घर का एक कोना ही सुखद सहारा होता है और यही स्थिति मीरा की थी। घर पहुँचते ही बैग को एक किनारे पटककर बिस्तर में घुस गयी। बाबा बाहर गये हुए थे। उनके आने तक बिस्तर ही मीरा का सहारा था।

बाबा आये तो अपनी बिटिया को यूँ सुबकते देखकर उनका कलेजा दहल गया। खटिया के पास पहुँचकर बाबा थोड़ा ठिठके, बेटी ने मुँह फेर लिया था। कलेजा मुँह को आ गया, नाराजगी और उनसे। वह देर तक सोचते रहे कहाँ गलती हुई, कैसे हुई, और क्यों हुई ? बार–बार जोर डालने के बाद भी कोई स्पष्ट कारण ज्ञात न हो सका। दिल को सुकून पहुँचा। लाडली की नाराजगी उनके कारण न थी। प्यार से बोले, ''बिट्टो!'' मीरा का प्यार का यही नाम था। खटिया पर बैठकर धीरे–धीरे माथे पर हाथ फेरने लगे।

''क्या हुआ बेटा'' पर बार–बार दुलार को भी उसने झटक दिया।

''क्या बात है, कुछ तो बोल। तेरे बाबा के पास हर समस्या का समाधान है।''

बिट्टो फफक पड़ी। उठकर कलेजे से लग गयी। बाबा बराबर बालों में हाथ फेरते रहे। जब थोड़ा सँभली तो बाबा ने पूछा, ''अब बता बात क्या है ?'' ''बाबा विद्यालय में नयी शिक्षिका मे मेरा अपमान किया। मजाक उड़ाया।'' बाबा थोड़ा गम्भीर हो गये पर स्थिति को हल्का करते हुए बोले, ''किस बात पर मेरी बेटी का अपमान करने की हिम्मत हुई। मेरी बेटी को मेरे होते हुए कौन मजाक उड़ा सकता है भला!''

''पर बाबा उड़ाया है'' मासूमियत से मीरा बोली। और आँखों से टप–टप आँसुओं की अविरल धारा बह पड़ी।

बाबा ने उसको रो लेने दिया। कभी–कभी रो लेना भी मन को स्थिर कर देता है। आँसुओं का वेग जब कुछ थमा तो हिचकी ले–लेकर मीरा ने विद्यालय में घटी घटना का सिलसिलेवार ब्यौरा देना शुरू किया। बाबा भी यह सुनकर हतप्रभ रह गये। अछूत! उनके मन में एक वेदन उठी, पर समाज के द्वारा सत्यापित सच्चाई को तो वह झुठला भी नहीं सकते थे। इतनी उम्र होने पर तो समाज से जूझना भी सरल न था। बेटी के आँसू, वह तो मोती थे जो झर–झरकर बह रहे थे। वह आँसू ध्रुवसत्य बनकर हृदय को विदीर्ण कर रहे थे। शायद प्रलयंकारी तूफान वहाँ से उठ उनको कमजोर

कर दे रहा था। समाज से तो वह अब भी लड़ सकते थे पर बेटी.... नहीं, उन्हें कुछ तो करना होगा।

''बेटा!''

मीरा ने कोई जवाब न दिया।

बाबा बहुत ही संयत और शांत स्वर में बोले, ''जानती हो बेटा, तुम बहुत ही भाग्यशाली हो।''

''क्यों ?'' बड़ी मुश्किल से मीरा बोल पायी।

''क्योंकि तुम अछूत हो। तुम्हारा जन्म एक अछूत परिवार में हुआ है।''

''पर कैसे बाबा!''

''जानती हो गांधीजी जब भी प्रार्थना करते थे तो भगवान् से क्या माँगते थे।''

''क्या माँगते थे।''

''यही कि अगले जन्म में ईश्वर उनको अछूत बनाकर भेजे।''

'अछूत' थोड़ी देर यह शब्द वायुमंडल में गूँजता रहा। जब ध्वनि से वातावरण गुंजित हो गया तो कंपित स्वर में मीरा ने शब्दों को दुबारा दोहराया, ''अछूत! पर क्यों बाबा ?''

''क्योंकि अछूत अपने कर्म का खाता है। देश का कर्णधार वही है। उसी के कंधों पर देश की पूरी अर्थव्यवस्था टिकी हुई है। अगर शूद्र अपना कार्य छोड़ दे तो बुद्धिकौशल और रणकौशल का भी क्या फायदा और इतिहास गवाह है कि सदियों से देश में जयचन्द जैसे गद्दार हुए, पर आज तक किसी भी शूद्र ने देश से गद्दारी नहीं की। फिर क्यों न कोइ अछूत बनकर पैदा हो? और जो देश से गद्दारी कर सकता है, उसको बेच सकता है, नित अपना फायदा खोजकर निजी स्वार्थ में लिप्त हो कार्य करता है वह अगर ऊँची जाति में भी पैदा हुआ तो धिक्कार है। इतिहास गवाह है ऊँची जाति वालों ने सिर्फ स्वः की पूर्ति के लिए ही दूसरों को अछूत बना उनका शोषण किया है। क्या हुआ अगर हम जन्म से अछूत हुए तो, हमारा कर्म तो शुद्ध है। हम कभी किसी को सताते नहीं, किसी का शोषण नहीं करते, किसी का हक नहीं मारते और न ही किसी का खून पीते हैं। कर्म से उन तथाकथित समाज की ऊँची जाति वालों से बहुत–बहुत ईमानदार हैं। तो क्या हुआ हम अछूत हैं उनकी निगाह में! पर अपनी निगाह में हम कहीं भी किसी के लिए भी गुनाहगार तो नहीं है। अब हम निर्णय तुम पर छोड़ते है

कि तुम्हें अछूत होने पर फख्र है या शर्म। तुमने अपनी अध्यापिका की तरह किसी का दिल तो नहीं तोड़ा है। मत रो मेरी बच्ची, मत रो।''

दूसरे दिन तक मीरा ने निर्णय कर लिया था। उसका सिर मान से तना हुआ था। हाँ वह अछूत थी पर सिर्फ जन्म से। अपने कर्मों का मार्ग वह स्वयं बनायेगी।

(2)

मृगनयनी छौने के पीछे भागते हुए मीरा गहन वन के अंधकार कूप में मानो भटक–सी गयी थी। वह हिरन का बच्चा था जो जंगलों के कायदे–कानून से अच्छे से वाकिफ था अतः उसे अपना मार्ग ढूँढने में कोई भी दिक्कत न हुई। मीरा तो जंगल की न थी। इंसानों के बीच में रहते–रहते इंसानी फितरत हो जाती है और इंसान बुद्धिजीवी जानवर है जो संहार भी करता है तो बुद्धि से !

जब भटकाव का कोई अन्त नजर न आया तो मीरा घबराने लगी। माथे पर पसीने की बूँदें छलछला आयी थीं। लगने लगा कि यह शायद उसके जीवन का आखिरी भटकाव होगा। इसके बाद सम्पूर्ण जीवन की इतिश्री ही नजर आ रही थी। जीवन में भटकाव, उत्तेजना और घबराहट पैदा कर देता है। अक्सर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रपात हो जाये तो इस घटनाक्रम से छुटकारा तो मिलेगा। तिल–तिल का मरना तो मरने से भी ज्यादा दुखद है और जब अन्त का पता हो तो जीवन सिवाय मिथ्या के और कुछ नहीं प्रतीत होता। अभी मीरा सिर पटक–पटककर जीने की राह खोज ही रही थी कि फटाक, एक हवाई फायर हुआ और बहुत ही करीब किसी के धम्म से गिरने की आवाज आई। दहशत ने उसको कसकर दबोच लिया। वह किधर भागे पर भागने की उत्कंठा शीघ्र ही समाप्त हो गयी। मुसीबत में धीरे–धीरे ही आगे बढ़ना श्रेष्ठ रहता है। हर कदम फूँक–फूँककर रखना श्रेयस्कर है और उसने यही करना शुरू किया। शायद झाड़ियों के पीछे एक मरता हुआ शेर या घायल हिरण मिल जाए। मीरा डरपोक न थी। हर स्थिति से मुकाबला करने के लिए तैयार और उसे अपने बाहुबल पर विश्वास था। उसने अपने बाबा की शिक्षा को अच्छे से स्मरण किया था और आत्मसात भी।

एक इच्छा हुई कि झाड़ियों में व्यर्थ में क्यों पड़ा जाये और सीधे निकल लिया जाये पर मीरा शुरू से रोमांचक प्रवृत्ति की रही थी अतः बिना देखे आगे बढ़ना उसे कदापि मंजूर न था।

झाड़ियों की खोज शुरू भी न की थी कि लो यह क्या, खोदा पहाड़ निकली चुहिया। एक बेहद गबरू जवान पैर में गोली लगने से घायल पड़ा था।

''पानी'' उसने धीमे से मीरा को देखकर कहा। निगाहें मिलीं, मौन संवाद हुआ। आँखें बहुत कुछ बोल गयीं। ''मैं स्वयं रास्ता भटक गयी हूँ। मुझे ज्ञात नहीं पानी कहाँ मिलेगा।''

उस नौजवान ने निगाह भरके मीरा को देखा, एक हल्की फीकी हँसी हँसकर बोला, ''जंगलों में रास्ता साधारण महिलाएँ नहीं भटका करतीं।'' फिर अपने ही कथन पर मौन हो गया। फिर उभरते हुए दर्द को दबाकर बोला, ''यहाँ से दायें थोड़ी दूर पर ही पानी का झरना है। एक दोने में ले आओ।''

एकाएक मीरा हिचकी, दायें–बायें करते ही वह इतनी दूर चली आयी थी। अब ज्यादा अन्दर जाने का उसको शौक न था। सामने पड़ा व्यक्ति कराह रहा था, पुकार करुण थी और वह कदापि उसको इस अवस्था में छोड़कर जाना न चाहती थी।

एक दृष्टि उस पर डाल वह जल की खोज में निकल पड़ी। मन में भय भी था पर मानवता का तकाजा यह न कहता था कि वह भागे। और भागती भी तो कहाँ ? रात की कालिमा उसका पीछा न छोड़ती।

शुक्र था, थोड़ी दूर पर ही जल का स्रोत मिल गया। झरझर बहता हुआ पानी, वह क्यों नहीं उसका नाद सुन पायी, उसके कान शायद इस ध्वनि के अभ्यस्त नहीं हुए थे। कानों को तो सिर्फ शहर का कोलाहल ही रूचता था। जंगल की कलकल में तो परम शान्ति थी। अँधेरे में पहले–पहल ढूँढने में थोड़ा कष्ट हुआ। पत्ते ढूँढकर फटाफट एक साधारण–सा दोना बना उसमें पानी भर घायल इंसान के पास ले गयी। दर्द से अभी भी वह कराह रहा था।

पानी और जीवनदायिनी जल की बूँद उसके मूँह में पड़ते ही उसकी थोड़ी चेतना लौटी। कुछ जल मीरा ने उसके मूँह पर छिड़क दिया और सहारा दे उसे बैठाने का सफल प्रयास किया। अजनबी रास्तों पर चलते–चलते कभी दो विपरीत दिशा से आये हुए अपरिचित ही एक–दूसरे का सहारा बन जाते हैं।

''कैसे हुआ'' मीरा ने धीरे से पूछा। उँगली को मुँह पर रखकर वह घायल व्यक्ति फुसफुसाकर बोला, ''मेरे पीछे लोग पड़े हुए हैं। इस अँधेरे में ही हमें जंगल छोड़ना होगा। हम यहाँ नहीं रुक सकते।''

''पर कैसे ?''

''मैं रास्ता जानता हूँ। मुझे सहारे की जरूरत है। मुझे सहारा दे दो।'' उसके स्वर में विनती थी।

मीरा सकपका गई। अंधकार में उसकी सकपकाहट को वह व्यक्ति अच्छे से महसूस कर गया। मीरा के हाथ की पकड़ थोड़ी ढीली पड़ी थी।

''मैं स्त्री हूँ।''

वह हँसा, ''मैं जानता हूँ। एक स्त्री का स्पर्श ही इतना कोमल हो सकता है।'' मीरा झेंप गई।

''मुझे घर जाना है।'' मीरा का स्वर ही था। ''बाबा इंतजार कर रहे होंगे।''

''मुझे भी घर ले चलो।''

''बाबा क्रुद्ध होंगे।''

''मैं समझा लूँगा।''

उस अजनबी के स्वर में दृढ़ता थी। पता नहीं क्या आकर्षण था कि अंधकार में भी वह उसके स्वर से सम्मोहित–सी हो गई। एकबारगी बाबा का चेहरा निगाह में आकर ओझल हो गया। शरीर में सिहरन कौंध गयी। परन्तु एक तरफ मानवता का तकाजा था। घायल पुरुष को वह जंगल में छोड़ भी नहीं सकती थी। फिर उसको भी तो रास्ता बताने वाला कोई चाहिए था। वह भी जंगल की कैद में फँस अपने प्राण जंगली जानवरों के हत्थे नहीं चढ़ाना चाहती थी। जिजीविषा हिचकोले मारने लगी और उस अजनबी का हाथ पकड़कर मीरा वन के बाहर आने का रास्ता खोजने लगी। साथ कितना भी अजनबी हो पर किसी की मौजूदगी जीवन में विश्वास का संचार करती है और पथ सुगम बना देती है। वही मार्ग जो कि इतना जटिल महसूस हो रहा था अब कितना सरल हो गया। भोर फटते–फटते वह अपने गाँव में थी।

उधर गाँव में बाबा हैरान–परेशान थे। जिसकी जवान–जहान बेटी घर न पहुँची हो उसका क्या खाक बेहतर हाल होगा। पूरी रात आँख–ही–आँख

में कटी। भोर होने का इंतजार था, जब रोशनी में बेटी को तलाशने का मन बना रहे थे। अभी ढ़ेर संकल्प–विकल्प उभर ही रहे थे कि मीरा ने अजनबी के साथ कुटिया में प्रवेश किया।

एकबारगी तो अजनबी को देख बाबा को साँप सूँघ गया और शक बुद्धि पर हावी हो गया। रातभर की थकान और भय क्रोध बनकर फूट पड़ा।

"कहाँ थी सारी रात?" शब्द उच्च स्वर में न थे पर सधे और सीधे प्रहार करने वाले। मीरा बाबा का रूख भाँप गयी। बाबा की निगाह उसकी अन्तरात्मा में झाँककर मानो सत्य को खोजना चाह रही थी। बाबा सत्य उसकी आँखों में नहीं पढ़ पा रहे थे। वहाँ कपट की काली छाया मात्र न थी, पर बाबा को विश्वास नहीं हो रहा था। मीरा के ऊपर उनको पूर्णरूपेण विश्वास था। उससे भी अधिक अपनी परवरिश पर गर्व। मीरा रातभर बाहर रही थी, पहली बार ही सही पर गलती तो हुई थी। क्रोध विवेक को नष्ट कर देता है, शक उसमें घी का काम करता है।

हिम्मत कर मीरा बोल पाई, "बाबा मेरा विश्वास कीजिए। आपकी पुत्री गलत राह पर नहीं जा सकती।'' रातभर की उत्तेजना बाबा के निर्णय लेने की क्षमता में बाधक बन रही थी। बाबा बोले कुछ नहीं पर उन्होंने मानो मौन का एक आवरण धारण कर लिया था। अजनबी बीच में पड़कर स्पष्टीकरण देना चाहता था पर बाबा ने तुरन्त बात काटी दी, "मैं गैरों से सफाई नहीं माँगता।"

मीरा आगे कुछ न बोल पाई। मीरा और वह आगन्तुक जिसका नाम रमेश था, वहीं खड़े रह गये। खड़े–खड़े आगन्तुक के पैर से खून रिसने लगा और एक अजीब–सी टीस भी उठी। उसके मुँह से एक हल्की–सी चीख निकली और वह वहीं पर गिर पड़ा। मीरा उसकी ओर मुड़ी पर बाबा के कड़े स्वर पर रुक गयी, "तुम्हारा इससे संबंध?" मीरा फफक पड़ी। इतने लंबे जीवन में बाबा ने उससे कभी सफाई नहीं माँगी थी।

"नहीं" बस मीरा इतना ही बोल पाई। थोड़ी ही देर दोनों को सहज होने में लगी पर अन्ततः बाबा को मीरा की आँखों में कड़वा सत्य दिख गया, या फिर प्रेम ने अविश्वास पर विजय पा ली थी। जब मीरा ने धीरे से रात्रि में घटित घटना का सिलसिलेवार वर्णन सुना दिया तब बाबा के चेहरे पर करुणा उभर आई और करुणा कहीं–न–कहीं इंसान को कमजोर बनाती

है। बाबा ने मदद करके उस आगन्तुक को खटिया पर लेटा दिया। रातभर में खून तो रुक गया था पर पैंट पूरी खून से सन गयी थी।

"कैसे हुआ?" बाबा पैन्ट को हल्के से हटाते हुए बोला।

"दुश्मन पीछे पड़े थे।" रमेश ने हल्की कराह से उत्तर दिया।

"क्या करते हो?"

एकबारगी रमेश का चेहरा स्याह पड़ गया पर अपने को नियंत्रित करके बोला, "बाप–दादा की जमीन–जायदाद का विवाद था। चचेरा भाई पीछे लगा था। काफी सालों से आपसी मनमुटाव चल रहा था। झगड़ा बढ़ गया और और बात यहाँ तक आ गयी।"

न चाहते हुए भी बाबा को उसकी बातों पर विश्वास करना पड़ा। बच्चे होते ही ऐसे हैं, उनकी प्रीत का मोह निर्णय को कमजोर बना देता है। इंसान टूटता है तो औलाद से, और उनकी औलाद ने रमेश का साथ दिया था। मीरा से अपने प्यार की खातिर उन्होंने विश्वास कर लिया और अपने घर में पनाह दे दी।

मीरा और बाबा ने मदद करके उसके पैर में लगी हुई गोली निकाली। बाबा ने किसी अच्छे डॉक्टर को बुलाने के लिए पैरवी की थी पर रमेश तैयार नहीं हुआ। डॉक्टर के नाम पर रमेश में एक अज्ञात भय समा गया जिसका कोई कारण एकाएक समझ में न आया।

बाबा ने गोली निकालने के बाद रमेश का हल्दी से उपचार कर दिया और कुछ दिन अपने घर में ही रुकने की सलाह दे दी थी। (शायद बाबा को कथन के वक्त यह अंदाज न था कि कुछ दिन कब कुछ वर्षों में तबदील हो जायेंगे)।

"मीरा तुम्हारी देखभाल करेगी।" कहने को तो बाबा कह गये पर अक्सर इंसान इतना कुछ बोल जाता है जिसका उसको बाद में पछतावा होता है। एक निगाह मीरा पर डाल बाबा ने मुँह मोड़ लिया। बाबा को शायद यह अहसास हो गया था कि कुछ दिन कुछ वर्षों का ही पर्याय बन जायेंगे।

रमेश की हालत सुधरने में वक्त लग गया। अपने आचरण के बल पर वह बाबा के भी दिल के करीब आने लगा। खाली वक्त में वह बाबा के बाँस के काम में हाथ बँटाता और जब बाबा चले जाते तो मीरा की घर में

मदद करता। रमेश एक फुर्तीला युवक था और अपनी वाक्पटुता के बल पर उसने बाबा के हृदय को जीत लिया था। एक दिन बाँस छीलते हुए बाबा बोले, "रमेश, एक बात बोलें। बुरा तो न मानोगे?"

"आप भी कैसी बात करते हैं बाबा, आप तो मेरे आश्रयदाता हैं।"

"तुम्हें देख इन बूढ़े हाथों को जैसे बल मिल जाता है। पहले सोचता था कि मीरा के हाथ पीले कर दूँगा तो मेरा क्या होगा। मैं तो शायद जीते जी ही मर जाता पर अब तुम्हें देखकर आसरा बँधा है।" सिर झुकाकर बोले, "बेटी का बाप हूँ। हाथ जोड़ विनती करता हूँ मीरा का हाथ थाम लो। मुझे अच्छे से ज्ञान है तुम भी हृदय से मीरा को वरण करते हो।"

रमेश का चेहरा एकबारगी स्याह पड़ गया। बाबा की बूढ़ी आँखें रमेश के चेहरे पर चढ़ते–उतरते भावों को न भाँप पायीं। पर रमेश गहन विचार–विमर्श में था। वह इस अचानक अप्रत्याशित हमले को झेलने के लिए मानो तैयार न था। विगत कई हफ्तों से चले आ रहे मीरा के आकर्षण को वह एकबारगी चुनौती दे पूरे परिवार को संशय में न डालना चाहता था। इस घर में उसको पनाह मिली हुई थी और पनाह की गर्माहट को वह अपने किसी भी गलत निर्णय से तोड़ना नहीं चाहता था।

"बाबा वक्त दीजिए। मैं मीरा और अपने संबंधों को लेकर पूर्णतः आश्वस्त होना चाहता हूँ।"

"किसलिए?" बाबा के स्वर में कठोरता थी। "जब तुम मीरा के साथ घूमते हो, उठते–बैठते हो तो क्या तुम्हारा आचार–विचार दिखता नहीं है। नहीं, मैं अब तुम्हें और वक्त नहीं दे सकता। तुम्हें या तो निर्णय लेना होगा या फिर मेरे घर को हमेशा के लिए छोड़ देना होगा।" बाबा के आदेशात्मक दबाव से रमेश थर्रा गया। बाबा को इतना सख्त उसने पहले कभी भी न देखा था। पर निर्णय वह तत्काल न ले पाया।

"मुझे एक दिन की मोहलत दीजिए। मैं अपनी भावनाओं में सुदृढ़ हो जाना चाहता हूँ।" एक लाचारगी की दृष्टि उसने गाय का दूध दुह रही मीरा पर डाली। मीरा के चेहरे पर रौनक थी।

बाबा ने एक सतही निगाह उसके ऊपर डाली और बहुत ही धीमे स्वर में बोले, "बरखुरदार जहाँ प्रेम होता है वहाँ संशय नहीं होता, वहाँ विलम्ब नहीं होता।" और बाबा की पारखी निगाहों से अपना अंत्यपरीक्षण होते हुए रमेश महसूस कर रहा था। आत्मग्लानि से उसकी आँखें भर गयी।

पूरी रात उसको निद्रा न आई। आधी रात में उठ जंगल की तरफ निकल गया। दरवाजा खुलने पर एक झटके से बाबा की नींद टूटी पर फिर शारीरिक थकान होने के कारण उठकर देखने की हिम्मत न हुई 'बिल्ली होगी'। मन को तसल्ली दे दूसरी करवट ले लिया।

रमेश वन में झरने के पास जाकर बैठ गया जिसके जीवनदायी जल से उसके प्राणों की रक्षा हुई थी। वह व्यथित अपने जीवन पर मंथन करता रहा। इधर एक नया सवेरा बाँह फैलाये उसका स्वागत कर रहा था। पीछे सिवाय एक अंधकार के और कुछ न था। एक अनाम जिन्दगी को पहचान मिलने जा रही थी। पर अगर बाबा को या मीरा को गलती से भी इसका ज्ञान हो गया तो कयामत आ जायेगी। अनजाने भय ने उसके सम्मुख उपस्थित हँसी को विलुप्त कर दिया। अनिर्णय की स्थिति हमेशा कष्टकर होती है। 'क्या करे क्या नहीं' के विचार में पूरी रात कट गयी। जब भोर का प्रथम संगीत कानों में पड़ा तो मानो तन्द्रा टूटी। भोर हमेशा विश्वास लाता है, रात भय। मीरा का स्वाभिमानी स्वभाव जानते हुए भी रमेश ने निर्णय ले लिया, हाँ वह विवाह के लिए बाबा को बोल देगा। जो होगा उससे वह बाद में निपट लेगा। मीरा के स्नेह ने उसे भविष्य के प्रति आशान्वित कर दिया था। वह अपने निर्णय से खुश था। और चपल कदमों से उसने घर का रास्ता पकड़ा।

रमेश और मीरा के विवाह को कुछेक वर्ष व्यतीत हो चुके थे। रमेश के मन में अब जिम्मेदारी की काई जमने लगी थी, नयापन कुछ–कुछ समाप्त–सा हो रहा था। मीरा अब माँ बनने वाली थी। इधर रमेश का अपने पुराने दोस्तों से मिलना चालू हो गया था। उसके करीब–करीब सभी दोस्तों को देखकर मीरा ने आपत्ति उठायी थी। बाबा के वृद्ध और लाचार हो जाने के उपरांत रमेश के व्यवहार में भी हल्का–सा बदलाव आया था। अब वह मीरा को उतनी तवज्जो नहीं देता था। मीरा गुणी थी। उसने रमेश के बदले हुए मिजाज को भाँप लिया था। पर वक्त का तकाजा है सब सुधर जायेगा–कहकर अक्सर वह मन को दिलासा दे देती थी।

उस रात भी बाबा बिस्तर पर लेटे हुए खाँस रहे थे। खाँसी के साथ–साथ दम भी फूलता था। बाबा का रोआब उसकी खाँसी की झनकार ही बयाँ कर जाती थी। शायद पूरे इलाके में इतनी जोरदार खाँसी किसी की न होगी। उसकी गूँज दो–चार कोस तक थी। बाबा थे तो पिछड़ी जाति के पर

अपनी ईमानदारी, होशियारी और वफादारी के बल पर उन्होंने पूरे इलाके में अपनी पहचान बना ली थी। ईश्वर का भी उनके ऊपर साक्षात वरदान था। हाथ में ऐसा यश था जिसको आयुर्वेद की दवा दे देते वह स्वस्थ हो जाता। और पुण्य की यह थाथी उनके साथ थी। अतः मृत्यु को इतने सन्निकट देखकर भी किंचित मात्र उनको भय न था। कुछ रातें पहले मीरा का हाथ थाम वह उसको दिलासा दे रहे थे।

"बेटा अब मैं कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ।"

"ऐसा न बोलो बाबा!" मीरा रोने लगी, "आपके बिना मैं अनाथ हो जाऊँगी। आपके अलावा मेरा इस दुनिया में और कौन है।"

बाबा धीरे–धीरे उसके हाथ को सहलाने लगे। मीरा के रिश्ते से वह भी खुश न थे। रमेश का बदला हुआ व्यवहार उनको भी खलने लगा था। आँख मूँदने के पहले वह मीरा को खुश देखना चाहते थे। पर ऐसा हो न पाया। उनका दिल कचोट गया। वह अच्छी तरह जानते थे कि वक्त उनके पास बहुत ही कम है। मृत्यु का वार्तालाप उन्होंने सुन लिया था। उसकी पदचाप को वह पहचानने में माहिर थे। पर जाते वक्त बेटी को कम–से–कम आशीर्वाद की पूँजी तो वह अवश्य ही देकर जाना चाहते थे। दिलासा के साथ–साथ वह बेटी को आशीष देते रहे। इसके कुछ ही दिनों बाद बाबा सदा के लिए मीरा को अजनबियों के बीच छोड़कर चले गये।

बाबा की मृत्यु के बाद रमेश अपने असली रूप में आ गया और अपने मिशन को अमलीजामा पहनाने लगा।

उसके संस्कारहीन दोस्त रात–रातभर घर पर ही डेरा डाले रहते और शराब और कबाब का दौर चलता। मीरा की आपत्ति के बाद तो उस पर हाथ भी उठने लगा। पहले–पहल सिर्फ थप्पड़ से काम चल जाता था पर बाद में तो धुनाई भी कम पड़ने लगी। जब अति हो जाती तो मीरा को रोता हुआ छोड़कर जंगलों में निकल जाता। जंगल के रास्तों में वाकिफ इंसानों का शहरों में जरा कम ही मन लगता है। और अब तो रमेश कई–कई दिनों तक घर ही न आता।

मीरा कोई कमजोर महिला न थी। अपने त्याग और सहनशीलता से उसने अपने अन्दर एक अद्‌भुत शक्ति का संचय कर लिया था और वह शक्ति पर्याप्त थी उसके जीवन को खींचने के लिए और पति का अत्याचार वह एक हद के बाद झेलने के लिए तैयार न थी। सबसे पहले उसको अकेले

रहने का भय सताया। बाबा भी नहीं हैं और एक नये जीवन की तैयारी। इस नये जीवन के संचार के लिए उसको सहारा चाहिए। नये जीवन के लिए कुछ उम्मीदें थीं, कुछ सपने और इससे बढ़कर एक आवलम्बन। शायद वह अकेली होती तो और बात थी। मन में काफी मंथन किया, विचार–विमर्श हुआ, तर्क–वितर्क हुए पर अन्त में अपमान को सहना कायरता ही सिद्ध हुई। शुरू–शुरू में उसने रमेश की हर बात को सहने का साहस किया, फिर उसे बदलने का दुस्साहस। जब उसमें भी सफलता न मिली तो अक्सर जीवन में बेहतर होता है उस विषयवस्तु पर अपना ध्यान केन्द्रित कर किसी दूसरी चीज की तरफ विक्रेन्द्रित हो जाना। और अन्त में मीरा का निर्णय अपने बच्चे पर आकर केन्द्रित हो गया।

मीरा ने अभी अपने बदलने की प्रक्रिया शुरू ही की थी वह रात उसके जीवन में एक चुनौती बनकर आ खड़ी हुई। शाम से ही उसका मन घबरा रहा था। किसी अनदेखी, अनहोनी की आशंका दिल दहला देती है। मीरा के पास अब खोने के लिए बचा ही क्या था। जब इंसान अपना सब कुछ गँवा चुका होता है और खोने के लिए कुछ भी नहीं होता तो एक अजीब–सी निर्भीकता आ जाती है। बाबा थे नहीं, पर यह बच्चा! नहीं बच्चे को कुछ नहीं होने देगी। उसका हाथ अपने पेट की गोलाई पर आ गया। बस अब कुछ ही दिन बाकी थे उसके इस जगत में आने के लिए। हाथ फेरते–फेरते अनजाने में रूलाई फूटने लगी और उसको पता ही न चला कि कब अविरल आँसू की धार बहने लगी। वह चादर ओढ़ खटिया पर लेट गयी। घबराहट में मुँह ढाँप लिया एवं उसका हृदय काँपने लगा। पता नहीं, कब आँख लग गयी। नींद तो तब खुली जब दरवाजे पर हल्की–सी आहट हुई। रमेश था, बाहर जाने की तैयारी कर रहा था। अँधेरे में भी आकृति स्पष्ट थी। पूर्णमासी की रात थी और पगडंडी पर उसकी आकृति की छाया उसका पीछा कर रही थी। न जाने क्यों मीरा उस दिन अज्ञात को जानने के लिए कृतसंकल्पित थी।

मीरा के मन में जाने कहाँ से विचार कौंधा, 'आज पता लगाकर ही रहेंगे कि रमेश जाता कहाँ है।' और पद्चाप को धीमा कर वह भी रमेश की परछाई का पीछा करने लगी थी। वैसे भी इंसान जब किसी का भी पीछा करता है तो थकान अवश्यंभावी है। अपनी राह चलने वाला व्यक्ति अनन्त को भी सहज प्राप्त कर लेता है। वहाँ अपना मानसिक संबल होता है। पर

शुक्र है इस यात्रा की एक परिधि थी, एक सीमा थी और पेड़ों के झुरमुट के पास आकर रमेश रुक गया। वहाँ उसके मित्र पहले से ही उसकी प्रतीक्षा में थे। मीरा एक वृक्ष की ओट में हो गयी। अंधकार में आवाज गूँजती है। शायद सब कुछ अस्पष्ट होने के कारण ध्यान सिर्फ ध्वनि पर केन्द्रित हो जाता है।

रमेश और उसके मित्र भावी योजना की तैयारी में व्यस्त थे।

"नहीं, हम लोग स्वतंत्रता दिवस के दिन ही इस कार्य को अंजाम देंगे।"

"हाँ, इससे उपयुक्त कोई दिवस दृष्टिगोचर भी तो नहीं हो रहा।"

"सही है।" रमेश बोला, "इस महान कार्य का क्रियान्वयन मैं करूँगा। हमें अपने अधिकारों के लिए लड़ना है। उस पुनीत दिन हम जिले के नेता को उड़ा देंगे।"

और एक ठहाके से पूरा का पूरा समुदाय हँस पड़ा।

मीरा के नीचे से तो जमीन ही खिसक गई। उसका पति हत्यारा और एक मुजरिम है। उससे भी घातक वह एक देशद्रोही है। देश के अधिकारी जो अपने प्राणों पर खेलकर राष्ट्र को आगे बढ़ाते हैं उनके साथ विश्वासघात। राष्ट्र और जनता के साथ धोखा। उपद्रवी कभी किन्हीं अधिकारों के लिए लड़ता है क्या? उसकी लड़ाई हमेशा स्वः की होती है। वह कभी किसी का हो ही नहीं सकता।

और मीरा यही बड़बड़ाते हुए अपने घर की तरफ निकल पड़ी। सामने चुनौती देने पर हार सुनिश्चित थी। इतने लोगों के बीच में वह खड़ी तक नहीं हो सकती, ललकारना तो दूर। क्या वह खामोश बैठ जाय?

मीरा को खामोशी कुछ दिन खींचनी होगी। रमेश घर लौटकर नहीं आया। उसकी खामोशी एक प्रश्न बन उथल–पुथल मचाये हुए थी। यह एक जलजला था जो फूटने के लिए बेताब था। क्या तबाही लाएगा इसका मीरा को खुद इल्म न था? रमेश से बात तो करनी होगी। उसको समझाना होगा, रोकना होगा पर अगर वह इंतकाम लेकर आया तब! तब तक तो बहुत विलम्ब हो जायेगा।

इस उदास खामोशी ने धरा–सी शान्त मीरा के हृदय में दरारें तो डाल ही दी थीं। और इन दरारों से उस दिन जलजला फूट ही पड़ा जब रमेश घर वापस लौटकर आया।

''इतने दिन तक तुम कहाँ थे''—मीरा ने रास्ता रोक लिया।

''तुम पूछने वाली होती कौन हो।''

''तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी जीवनदायिनी।''

''तुम अछूत से विवाह करके, अपना नाम देकर मैंने उस कर्जे को चुका दिया।''

'' क्या पति—पत्नी का रिश्ता सिर्फ नाम का होता है या कोई कर्ज जो चुकाते रहते हैं। उसमें तो विश्वास, श्रद्धा, समर्पण और इससे भी अधिक प्रेम की जरूरत है।''

''प्रेम और तुमसे, तुम्हें तो छूते भी घिन्न आती है।''

मीरा अपने जन्म से जुड़े हुए अपमान से तिलमिलाकर रह गयी। वह नीची जाति की हो सकती है पर नीच नहीं है।

उसने जोरों से चीखकर कहा, ''ये जातियाँ तुम जैसे कमीनों की देन हैं।''

''क्या मतलब ? क्या ... क्या कहना चाहती हो तुम ?'' रमेश चीखकर बोला।

मीरा काफी देर मौन रही। उसकी शान्ति रमेश को और तिलमिला दे रही थी।

''बोलो, साफ—साफ बोलो।''

''सिर्फ इतना कि सदियों से कर्म प्रधान जाति को कमजोर और पंगु करके उनकी बोली छीन ली। वह संवाद कर पाने मे भी असक्षम हो गये। संवेदनाविहीन समाज ने हमें दिया क्या है? सिवाय जिल्लत और घृणा के। जिस कर्म के आधार पर यह समाज टिका है उसी को तुम जैसे हत्यारों ने नीचता का दर्जा दे दिया। नीच तो तुम हो। तुम्हारा कर्म है। तुम साजिशकर्त्ता, षड्यंत्रकर्त्ता हो।''

''हत्यारा तू किसे कहती है ?''

''तुमको, इस समाज को, इसके मूल्यों को, संस्कारों को, तुम्हारे विचारों को।''

''मेरे को !''

चीख—चीखकर मीरा ने कानों से सुनी बातों को मुँह से उगल दिया। एकाएक रमेश का चेहरा स्याह पड़ गया। मीरा उसके चेहरे पर

चढते–उतरते रंगों को पढ़ने की कोशिश करने लगी। थोड़ा स्थिर होने पर रमेश का क्रोध लौटा। उसके विवेक और चेतना पर हिंसा उतारू हो गयी।

मीरा भी कमजोर न थी। पहले–पहल तो इस अप्रत्याशित हमले से वह सिहर गई। पर आत्मरक्षा के लिए उसने वहाँ गिरी हुई कटार उठा ली और रमेश के पेट में कसकर घोंप दी। वह तब तक घोंपती रही जब तक रमेश की अंतिम श्वास ने भी उसका साथ न छोड़ दिया। शायद सदियों के उत्पीड़न को वह इसी हिंसा के माध्यम से समाप्त कर देना चाहती थी। या फिर एक हत्यारे को उसके अंतिम मुकाम तक पहुँच उसे सजा देना चाहती थी।

कुछ देर तक रमेश तड़पता रहा और मीरा चीखती रही। कटार का वेग थम न रहा था। शायद सदियों का अपमान या देशद्रोही का साथ उस दंश को तीव्रता दे रहा था।

हर उफान में एक क्रान्ति होती है, जुनून होता है, पर धीरे–धीरे वह भी थमता है। जैसे ही रमेश ने अंतिम साँस ली मीरा का इन्तकाम पूरा हुआ।

बदहवास मीरा, बिगड़े बाल, अस्तव्यस्त साड़ी, माथे पर लाल रक्त की बिन्दी और हाथों में संगीतमय चूड़ियाँ। एक उचटती दृष्टि मीरा ने रमेश पर डाली। आँखों में स्नेह उमड़ आया।

था तो रमेश उसका पति ही। मीरा फफक पड़ीं। पति की लाश पर गिरकर वह मूर्च्छित हो गई।

एक अछूत ने अपना सब कुछ दे समाज को बचा लिया था।

■

रोप-वे

ऊपर जाने का रास्ता एक ही है।

वैसे भी ऊपर जाने का रास्ता हमेशा एक ही होता है। ये सत्य भी है, पर शायद नहीं। द्वैत या अद्वैत का द्वंद्व तो मानस–मन में सदैव विराजमान रहता है। समस्त सृष्टि एक है। प्रकृति और ईश आपस में परस्पर एक हो मनष्य के नेत्रों पर पड़ी अन्य की पट्टी को दूर करते हैं। शायद मनुष्य हमेशा से स्वः पर निर्भर होता आया है, और यही स्वः की लड़ाई उसे हमेशा प्रकृति से दूर करती है। जहाँ मनुष्य को प्रकृति में विलीन हो जाना चाहिए था, वहाँ वह हमेशा से एक अलग अस्तित्व रखकर द्वंद्व में उलझा रहता था और परमात्मा से लेकर उससे मिलनेवाले समस्त रास्तों को वह आपस में ऐसा उलझा देता है कि जो इतना सरल–सा होते हुए भी एक जटिल समस्या, बन, सुरसा के मुँह की तरह भयानक और कष्टकर प्रतीत होने लगता है।

खैर, यह कहाँ की थ्योरी मैं ले बैठी! मैं तो मसूरी में स्थित गनहिल जानेवाले रास्ते की बात कर रही थी। गनहिल थोड़ी ऊँचाई पर था। खैर, तुलनात्मक नाप–तोल करना तो समस्या होगी, पर अगर आकाश को सीमांत मानें तो नीचे से ऊपर वह बिल्कुल दिखाई न देगा।

मनुष्य की काबिलियत की भी दाद देनी पड़ेगी। वह अपनी मानसिक शक्ति के बल पर और थोड़ा–थोड़ा शारीरिक भी हर सीमा को तोड़ना जानता है। अगर मनुष्य मानसिक शक्ति को विकसित कर ले, तो वह अनन्त को भी प्राप्त कर लेगा। मनुष्य में तो ईश्वरत्व का अंश है। असीमित शक्तियों को विकसित करके भी वह सीमित ऊर्जा ही प्राप्त कर सकता है। वह पूर्ण प्रकृत नहीं बन सकता। उसका मात्र एक छोटा–सा ही टुकड़ा या शक्ति ही वह प्राप्त कर सकता है। पूर्णता मनुष्यता का गुण नहीं है। सीमित ऊर्जा प्राप्त कर मनुष्य इतना दंभी एवं अभिमानी बन जाता है कि वह प्रकृति का संहार ही कर देता है तो मनुष्यता से ऊपर उठकर भी वह ईश्वरत्व से बहुत ही दूर है। शायद महाशक्तिमान की यह हम सब पर या कहें सृष्टि के

ऊपर असीमित अहसान है, सृष्टि इसीलिए कायम है और ईश्वर आदि से अंत काल तक विद्यमान है।

अब कर लो बात! बात है सीधी–सपाट, गनहिल तक जाने की और घुमा–फिराकर बातें हो रही हैं प्रकृति की और ईश्वर की! गनहिल तक जाने का रास्त एक ही नही था। एक तो पैदल रास्ता था। थोड़ा कठिन और दुगर्म, और हम जैसे आलसी लोगों के लिए कष्टप्रद। हमें तो हर चीज सरल चाहिए। सहज और सुगम। शायद हम जैसे लोगों का ही वैज्ञानिक ईजाद है रोप–वे, जिसकी अब तक मैंने तो चर्चा ही नहीं की है। चर्चा हर बार करनी चाही, पर बात के विस्तार और विषयों से थोड़ा फर्क पड़ गया।

मैं अकेली होती तो इतना दुस्साहसिक कार्य कर भी लेती, पर मनुष्य जब गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है, तो जिम्मेदारियाँ उसका बंधन बन पैर की जंजीर बन जाती हैं। वह विवश हो जाता है। इसलिए तपस्वी, गृहस्थ जीवन त्याग, संन्यास का रास्ता अख्तियार करते हैं। क्योंकि 'एकला चलो रे', तभी संभव है, जब मनुष्य स्वतंत्र हो और स्वतंत्रता का बोध तभी होता है, जब इनसानी दायित्व कम हो। मेरे साथ तो मेरा पुत्र था। एक माँ के साथ उसका सात वर्षीय पुत्र। माँ की कमजोरी 'उसका सृजन' और इनसानी विवशता की पराकाष्ठा। कहा भी गया है, कि इंसान हारा है तो ममता के मोह से और आज वही मोह जिद बन मुझे गनहिल पर चलने के लिए विवश कर रहा था। अब पुत्र के साथ मैं जीवन का दुर्गम पथ तो अपना नहीं सकती थी। हर माँ चाहती है कि पुत्र को समस्त सुविधाएँ सहजता से उपलब्ध हों और उसका जीवन–पथ बेहद सुगम हो। मैं भी अगर उसकी जिद्द के आगे हार गई और घुटने टेक दिए तो क्या हुआ? यही सही था।

खैर, सही–गलत का फैसला करने का वक्त न मिला, क्योंकि उसकी फरमाइश हठ बनकर पीछे पड़ गई। वह बिना टिकट ही मानो चल देता। उसे क्या पता पैसे का मोल! उसे क्या पता, कि जीवन में हर वस्तु की एक कीमत होती है अरै वह चुकानी पड़ती है। बिना दाम, जीवन नाकाम। यहाँ सिर्फ इंसानियत बेमोल है। नेकी कर और दरिया में डाल। फकीरी कहती है, गरीबी ही सबसे बड़ी अमीरी है, पर फकीर कौन बनना चाहता है? वह डगर बेहद कठिन है। और हम तो आसान डगर के राही हैं। कठिन डगर पर चलकर चाहे बेहद अनमोल हीरा क्यों न मिले, पर उससे क्या? किसी ने उसे देखा है, क्या पता?

हम तो वैसे भी सांसारिकता में लिप्त हैं। प्रकृति ने हमें पैदा कर अपने बीच में ही पनपने के लिए छोड़ दिया। बौद्धिक विकास ने मनुष्य को विज्ञान के समस्त अविष्कारों के माध्यम से भोग–विलासिता के अधीन कर दिया। वह सुख–सुविधाओं का गुलाम हो गया। उसे उठना न पड़े, इसलिए उसने रोबोट से लेकर कंप्यूटर तक ईजाद कर डाला। मिनटों में भोजन तैयार। लिफ्ट उसे लेकर कितनी भी ऊँची मानव निर्मित ऊँचाई तक ले जा सकती है। बौद्धिक विकास ने मानसिक गुणों का ह्रास कर दिया है। मनुष्य के हृदय में मानवता का स्पंदन कम कर दिया है। अब उसका हृदय किसी की विवशता देखकर नहीं पसीजता। उसमें सद्‌गुणों का समुचा न सही, तो किंचित् मात्र को नाश तो हुआ है, क्योंकि वैज्ञानिक उपलब्धता जीवन में प्रतिस्पर्धा विकसित करती है और अक्सर प्रतिस्पर्धा खेलपरक नहीं होकर ईर्ष्या का संचार करती है। ईर्ष्या ही समस्त बुराईयों की जननी है, क्योंकि ईर्ष्या से ग्रसित मनुष्य अंधा हो जाता है। वह अपना सुख भूल दूसरे के सुख से पीड़ित रहता है और अपना दुःख छोड़ दूसरे के दुःख में आनंद की अनुभूति महसूस करता है। ईर्ष्या से ही उसमें स्व का संचार होता है और 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होता है। मैं सही और समस्त जग झूठा–

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझसे बुरा न कोय।।

वह तो कबीरदास की वाणी है, जो संत थे। हम तो अब स्वतः की लड़ाई लड़ रहे हैं और उस 'मैं' में सिर्फ मैं ही बच गया, जग तो कट गया।

मैं अकेली न थी, जैसा पहले कहा जा चुका है। मेरे साथ मेरे अस्तित्व का हिस्सा था और उसके प्रजनन में भी मैं अपने को प्रकृति सदृश महसूस कर चुकी थी। एक बच्चे के जन्म ने सार्थकता का बोध करा दिया था तो फिर यह प्रकृति क्यों न हमारा उपहास करती! करे। वह तो नित–प्रतिदिन अपने को बार–बार जी रही है। प्रजनन में लिप्त है। कभी उसे अपनी सार्थकता पर अहंकार न आया। मैं ठहरी एक नारी। हठात् अहंकार कर उठी और मातृत्व के परम एहसास के तले मैं जीवन की चुनौती पुत्र–मोह के आगे हार गई।

उसे तो रोप–वे से ही जाना था। नया आडंबर, नूतन आकर्षण और जीवन में नवीनता, जिज्ञासा पैदा करती है और खासतौर पर बाल–मन पर। वैसे मानव–मन सर्वदा से जिज्ञासु रहा है। नहीं रहता तो नित नए

आविष्कार न होते और रोप–वे का कदापि नहीं। जो मिनटों में हमें जमीन से पहाड़ों की ऊँचाईयों पर पहुँचा देती है। ऊँचाईयों की तो सीमा ही नहीं है। मनुष्य चाँद पर पहुँचकर भी नाखुश ही है। फिर अपने जीवन में भी तो नित नई ऊँचाईयों और मापदंड निर्मित करता रहता है। ऊँचाईयों और ख्वाहिशों की सीमा नहीं होती। स्व–निर्मित ऊँचाईयों पर पहुँच, उसे हमेशा गिरने का भय सताता रहता है।

गिरने का भय तो रोप–वे से भी था, क्योंकि अभी कुछेक महीने पहले एक ट्रॉली दुर्घटनाग्रस्त हुई थी। वह तो ईश्वर का लाख–लाख शुक्र है कि कोई हताहत नहीं हुआ। अंत में, जब मनुष्य की कल्पना से परे कुछ चीजें होने लगती हैं, तो उनका सीधा संबंध लौकिक और पारलौकिक शक्तियों से जोड़ दिया जाता है। नहीं तो सबकुछ मनुष्य की मुट्ठी में है। दुर्घटनाएँ, कब से मनुष्यों को भयभीत करने लगीं? मनुष्य दुस्साहसिक है, हर दुर्घटना के बाद भय पर विजय प्राप्त करके वह पुनः उसी मार्ग पर चल देता है।

हम भी चल दिए। आँखों में दिवास्वप्न लिये कि ऊपर एक अलौकिक तिलिस्मी संसार है। हर चीज जो दूर होती है, वह सुंदर प्रतीत होती है। एक अजीब–सा तिलिस्म का संसार मनुष्य उसके इर्द–गिर्द बुन लेता है और उसे ही प्राप्त करने के पीछे भागता है। जो चीज सहज प्राप्य और उपलब्ध है, वह मामूली–सा प्रतीत होती है। अक्सर तिलिस्म एक छलावा मात्र होता है।

हम दोनों सहयात्री बन चल पड़े, उस दूरस्थ को प्राप्त करने और मिनटों में हम रोप–वे के केबिन के अंदर थे। अंदर हमारे साथ और भी यात्री थे। जीवन की यात्रा भी अच्छे सहयात्रियों के होने से सहज सुगम हो जाती है। फिर मेरे साथ तो मेरा बेटा था। मेरे जीवन का स्तंभ। पूरे रास्ते वह दृश्य देख–देखकर मचलता रहा, कूदता रहा। छोटा था बेचारा। उसे यह भी एक खेल मात्र प्रतीत हो रहा था। वैसे जीवन भी तो एक क्रीड़ा ही है। इसे हर कोई अपने तरीके से खेलता है। कोई अच्छा तो कोई बुरा, कोई सीधा तो कोई टेढ़ा, और कोई–कोई बिल्कुल सपाट। उनके जीवन में कोई उथल–पुथल, कोई संवेदना विशेष का स्थान नहीं रहता। बिना उतार–चढ़ाव के जीवन रूपी गाड़ी खिसक भी जाती है और मैं दिल थामकर अपने बेटे की क्रीड़ाओं का आनंद लेती रही। एकबारगी तो वह दरवाजे तक गया और उसे लगा खोलने। लगा कि अब गिरा कि तब गिरा। भयमिश्रित यात्रा

अक्सर उसको काफी आनंद दे देती है। अक्सर गंतव्य पर पहुँचने से ज्यादा यात्रा में आनेवाली कठिनाईयाँ उद्वेलित कर देती हैं।

ट्रॉली रोप–वे पर चलती हुई पहाड़ी पर चढ़ते हुए होटलों और घरों के ऊपर से सर्र से भागी जा रही थी। एक पतली–सी डोरी और उसकी धुरी पर पूरा चक्र। कहीं डोरी टूट गई तो....! अब जब जीवनरूपी डोरी एक साँस से बँधी होती है और उस पर ही घुमती है, तो यह तो मनुष्य निर्मित मजबूत डोरी थी। इसको तो सुधारा भी जा सकता था, पर ईश्वर की साँस ने एक बार साथ छोड़ दिया तो सब स्वाहा! कुछ भी सुधार की गुंजाइश नहीं बनती। अपने पर विश्वास थोड़ा पुख्ता हुआ।

लो, हम लोग उस अलौकिक दुनिया में पहुँच ही गए, जिसके लिए इतने यत्न किए थे। यह क्या, यह तो कल्पना से परे निकला। एक पहाड़ के ऊपर लंबा फैला हुआ सपाट–सा स्थान और उस पर ढ़ेर–सारी दुकानें। हर तरफ इनसानी साम्राज्य। इनसान और प्रकृति की भाग–दौड़ में इंसान हर तरफ अपने पैर फैलाता जा रहा है। जहाँ उसको जरूरत नहीं है, वहाँ भी पहुँच, वह प्रकृति को बौना कर रहा है। हमें लगा, हम ठगे गए। करीने से कतारों में सजी हुई दुकानें और लोगों का जमावड़ा। ऐसा लगता है, जैसे नीचे का पूरा बाजार ऊपर ही आ गया हो और ऊपर से नीचे लोग तो बेहद छोटे प्रतीत होते थे। इतने छोटे कि उनके बीच रंगभेद करना संभव न था। नीचे तो काफी गोरे घूम रहे थे, पर ऊपर से तो जैसे सब एक जैसे छोटे–मोटे समूह थे। न रंग का भेद, न जाति का, न लिंग का भेद, न रूप का। सबकुछ मानो गौण हो गया था। जहाँ सबकुछ गौण हो, वहाँ उद्देश्यहीन व्यक्ति अनंत दिशाओं में विचर रहे थे। हम ऊपर से उन्हें भीड़ में विलीन होते देख सकते थे। बेटा यात्रा से थोड़ा रूक गया था। उसे विश्राम की सख्त जरूरत थी। वह कोल्ड ड्रिंक पीने एक स्टॉल पर बैठ गया, एक दुकान की छत के नीचे। वहाँ धूप से बचाव के लिए एक बड़ा रंगीन छाता लगाया गया था। हम दोनों ने उसी के अंदर शरण ली। हमारा स्टॉलवाला भी बातूनी व्यक्ति था, खूब गपोड़शंख।

'बैठो भाई, जल्दी क्या है ?' वह हर जानेवाले राहगीर को आवाज दे बैठाता। बात भी सही है, इतना पैसा खर्च करके आए थे, जल्दी क्या थी? कौन–सी ट्रेन छूटी जा रही थी! हम तो सिर्फ वादियों में ठंडी हवा खाने आए थे। फिर पहाड़ों पर क्यों किसी ताजमहल की आशा सँजोए थे! अरे,

जब प्रकृति मदमस्त अपने रूप–यौवन को सराह रही थी तो पहाड़ों और घाटियों का निर्माण हुआ। शायद हमारी आँखें भी अब मुनष्य निर्मित सौंदर्य को निहारने की अभ्यस्त हो चुकी थीं। हमें भी प्रकृति की छटा रूपविहीन प्रतीत होती है। या फिर मनुष्य की पैठ इतनी अंदर तक प्रकृति में हो गई है कि अब उसने अपना रूप समेट लिया है।

'बैठो, बेटा। इधर हवादार जाली के पास आकर बैठो।' हवा का मोल थोड़े है। यह तो कौड़ी के मोल है। सच में, सहज–सुलभ वस्तु की कोई कीमत नहीं होती। कीमती तो वह होती है जिसकी उपलब्धता मनुष्य ने सीमित कर दी है। नहीं तो प्रकृति का भंडार तो हर तरफ बिखरा पड़ा है। हम लोग सिर्फ उसका मूल्यांकन नहीं कर सकते। अगर प्रकृति की हर भेंट की कीमत लगाएँ तो शायद इसी हवा की कमी के कारण हमारा दम घुटने लगे और हम स्वयं समाप्त हो जाएँ–अस्तित्वविहीन। हमारा स्वयं का वजूद हर एक पल इसी धरा पर निर्भर है और उसकी असीमित भेंट पर और ताजी खाली हवा में मैंने कसकर एक साँस ली। अपने फेफड़ों को शुद्धता से भर लेना चाहती थी।

शुद्धता और स्थिरता शायद पहाड़ों के कोटरों में बस गई है। उसके दर्शन हमारे शहरों में दुलर्भ हैं। हमें उन दर्शनों की आदत नहीं शायद।

बेटे ने बैठे–बैठे थम्स–अप पी लिया, चिप्स खा लिये और अब ज्यादा खाने की गुंजाइश न थी, लिहाजा चलने की बात हुई। अब ऊपर भी कोई कितना बैठे! क्या देखे, क्या सुने?

पास की दुकान पर तरह–तरह की ड्रेसें मिल रही थीं। वहीं पर फोटोग्राफर भी घूम रहे थे। एक आकर मेरे बेटे को बोला, 'इसे डाकू की ड्रेस पहनाकर फोटो खींच लीजिए।' अब लो, कर लो बात। भेस बदला तो भी किसका! अरे! लोग तो भेड़िए होते हैं और साधु के भेस में घूमते हैं। यहाँ राम–कृष्ण न बनाकर यह तो सीधे–सीधे डाकू ही बना रहा है। कान पकड़कर तौबा की।

थोड़ा आगे जाकर बेटे ने पिस्तौल उठाकर गुब्बारे फोड़े। और घूमकर हमने ऊपर से नीचे का नजारा देखा। ऊपर से देखने पर तो सिर्फ हरियाली–ही–हरियाली दिखती है, पर नीचे आने पर वास्तविकता का बोध होता है। मनुष्य ने अपने अस्तित्व के विकास में हरियाली का सत्यानाश कर दिया है। वास्तविकता हमेशा कटु होती है।

अब मन ऊबने लगा था तो नीचे के लिए मैं छटपटाने लगी। धरती में अजीब आकर्षण है। सबकुछ अपनी तरफ खींचती है। हाड़–मांस तक एक दिन धरती में विलय हो जाता है, पर धरती अपने अजीब से आकर्षण से वहीं विद्यमान रहती है, आदि से अनादि तक।

दुबारा हम लोग ट्रॉली में सवार हुए और हमेशा–हमेशा के लिए (हमेशा न भी सही तो भी कुछ वक्त के लिए) गनहिल को विदा कहकर नीचे के लिए प्रस्थान कर गए।

ऊपर से नीचे देखने में एक अजीब–सी घबराहट महसूस होती है। गिरने का भय सदा विद्यमान रहता है। चक्कर आते हैं। वैसे भी नीचे कौन खुशी से आना चाहता है ? नीचे गिरने का बोध, अपमान एवं पीड़ादायक है। थोड़ी देर में हम नीचे थे। धरती के करीब।

गंतव्य चाहे जैसा भी हो, पर यात्रा उसे आनंददायक या कष्टप्रद बना देती है और मनुष्य के जीवन का गंतव्य तो बस एक ही है– हर मनुष्य के जीवनरूपी यात्रा का एक सा अंत है। न ज्यादा, न कम। किसी का अंत पहले है तो किसी का बाद में। किसी का ऊँचाई पर पहुँचकर है तो किसी का धरती के बहुत करीब। गंतव्य तक की यात्रा एक रोमांचकारी सफर, नित–नूतन अनुभव, कहीं चिर–आनंद तो कहीं गम! फिर तो हम सब अनन्त में ही विलीन हो जाने हैं।

■

दद्दू के अतीत से

यह कहानी मैंने अपने दद्दू से सुनी थी। दद्दू हमारे गाँव के कद्दावर व्यक्ति थे। उम्र के आखिरी पड़ाव पर पहुँच जाने के बावजूद उनके व्यक्तित्व से कभी उसका एहसास नहीं होता था। वही उत्साह, वही जोश, अपितु रोब–दाब, लंबा–तड़ंगा शरीर और बड़ी–बड़ी मूँछें। कभी उन मूँछों के पीछे हो सकता है कि तल्खी और रूखापन छिपा हुआ हो, पर अभी तो उनमें बचपन वाली चुलबुलाहट आ गई थी। उसके चलते गाँव के बच्चे उन्हें शाम घिरते ही घेर लेते थे और शुरू हो जाता था–कहानियों एवं किस्सों का अंतहीन सिलसिला। वह कहानियों का पिटारा थे। कहाँ से इतनी कहानियाँ लाते थे कि हम सब बच्चे भी इससे अक्सर अचम्भित होते कि वह एक चलते–फिरते कहानियों के गढ़ हैं। हर जगह और इलाके की कहानी उनके हाथों पर थी। बस, स्विच दबाओ और कहानी चलचित्र की भाँति बाहर!

ऐसी ही एक जाड़े की गुनगुनी शाम में हमारे दद्दू ने एक कहानी हम लोगों को सुनाई, जो उस शाम के कुनकुनेपन को गुदगुदा देनेवाली थी।

हुआ कुछ यूँ, कि हमारे गाँव में एक दरोगा आया था। वह उस शाम दद्दू से ऐसे ही कुछ गप–शप करने आ गया। हम लोग कहानी में विलंब होता देख, कुछ कानाफूसी करने लगे थे। दरोगा था कि दद्दू को छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। रह–रहकर कोई विषय छिड़ जाता और वह फिर से दद्दू को घेर लेता। बच्चों के साथ–साथ दद्दू बड़े–बूढ़ों में भी काफी लोकप्रिय थे। गाँव में भी सब दद्दू से सलाह–मशविरा करने आते थे। ऐसे ही उस दिन भी वह दरोगा दद्दू से कुछ राय–मशविरा करने आया था कि हमसब कुछ समय के बाद समवेत स्वर में बोल पड़े, ''दद्दू! कहानी सुनाओ न! रात घिरने को है। घर जाना है, भूख लगने लगी है।''

''अरे–अरे!'' सहसा दद्दू को हम बच्चों का खयाल आया, वह छूटते ही बोले, ''सुनो...।'' और दरोगा का हाथ पकड़कर जबरदस्ती बैठा लिया,

''तुम भी सुनो। आज तुमको नौकरी से जुड़ी हुई, एक घटना सुनाते हैं। वाक्या कुछ यूँ है....।'' फिर दद्दू ने एक बीड़ी जलाई और एक जोर का दम भरकर ढ़ेर सारा धुआँ उगलते हुए बोले, ''चलो, आज हम एक दरोगा की कहानी तुम्हें सुनाते हैं–

''एक था दरोगा–बहुत ही प्रभावशाली। उसका दबदबा कई गाँव तक था। वह जहाँ रहता था, वहाँ सिर्फ उसी की चलती थी। दो–चार डाकूओं से ज्यादा उस अकेले दरोगा के पास शक्ति थी और चोर तो क्या, इलाके के लोग भी उससे डरते थे।'' फिर दद्दू थोड़ा अतीत में खोते हुए से लगे। अक्सर ऐसा होता था कि कहानी सुनाते–सुनाते वह अतीत से कुछ खोजने का उपक्रम करते थे। मानो मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के भग्नावशेषों से वह कुछ अवशेष बीनकर आधुनिक युग के सामने लाना चाहते हैं। बीच–बीच में दद्दू सहसा चुप हो जाते। गहन नीरवता में चले जाते। ऐसा लगता, मानो वहाँ से बाहर आने में कुछ अड़चन आ रही है। हम सब चुपचाप बैठकर उनकी तन्हाई भंग होने का इंतजार करते थे। हम सबकी बेचैनी काफी बढ़ जाती थी, पर उस पर काबू पाना हम सीख गये थे। कभी–कभी ऐसा हुआ कि हमने उन्हें छेड़ा और वह गुस्से में आ गए। उन्होंने कहानी की गति में पूर्ण विराम लगा दिया, फिर हम सबको उन्हें काफी मनाना पड़ता था। इसलिए जब दद्दू तंद्रा में चले जाते थे, तो सारे बच्चे खामोशी से उनके होश में आने का इंतजार करते थे।

थोड़ी देर में दद्दू होश में आ गए। अब जैसे उनके स्वर में हँसी फूट रही थी। उनका पूरा रोम–रोम गद्गद था। मानो वह पात्र को जी रहे थे।

अब बच्चे हिम्मत कर बोले, ''फिर क्या हुआ दद्दू, जल्दी सुनाओ न! रात घिरने को है और हमें घर जाना है। नहीं तो माँ डाँटेगी।'' अब माँ का भय अगर न हो, तो बच्चे अभी घर जाने की जल्दी में न थे। दद्दू उन्हें जीवन की कई सच्चाई से रूबरू कराएँगे। वह भी वहीं बैठकर कहानी के हर पात्र को, मानो अपने में समावेशित कर लेना चाहते थे।

दद्दू ठठाकर हँसे। फिर कहानी को आगे बढ़ाते हुए बोले, ''दरोगा का ट्रांसफर सरकार ने एक दिन खुंदक खाकर सुदूर इलाके के थाने में कर दिया। वहाँ आदमी तो दूर, परिंदा भी ठीक से पर नहीं मार पाता था। जब वहाँ थानेदार पहुँचा, तो इलाके की हालत देखकर पहले–पहल तो कुछ दिन सकते की स्थिति में रहा। कहाँ वह खाने–कमानेवाला आदमी

और यहाँ तीन बजे के बाद सबका मक्खी–मच्छर मार वक्त बीतता था। साल–दो साल से कोई अपराध नहीं हुआ था। यहाँ के लोग ईमानदार थे। उसके लिए वहाँ कोई विशेष कार्य न था। वह लोगों की बेईमानी पर फलने–फूलनेवाला आदमी था। इस ईमानदार देश में उसका क्या कार्य? उसने अपने कर्मों को कोसा, अपनी बीवी के फूटे भाग्य की गवाही दी और पंडित को दिखाया, पर जब सबकुछ करके भी कुछ न हुआ, तो हाथ–पर–हाथ रखकर बैठ गया। वक्त की धारा से वह पंगा नहीं ले पा रहा था। अभी कुछ दिन या महीने उसको इसी जगह पर बिताने थे। फिलहाल कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था। उसने सोचा, 'अरे लानत है, ऐसी सरकारी नौकरी पर। कहाँ फँस गए?' पर आठ–आठ आँसू बहाने के बाद भी कुछ भला होता नहीं नजर आया। अतः वह थक–हारकर बैठ गया।''

दद्दू ने एक नजर बच्चों पर डाली। कहानी उनकी आयु–सीमा से थोड़ी बड़ी थी। उनकी समझ के परे की बात, पर पते की थी। जीवन के सत्य से भी उन्हें कहीं–न–कहीं रूबरू होते रहना पड़ता है, जिससे जब वे जीवन में उतरें, तो हर तरह की स्थिति से वाकिफ रहें।

सभी बच्चे एक साथ बोले, ''उस थानेदार का तबादला एक सुदूर देहात में हो गया था।''

इससे पहले की बच्चे कुछ और बोलते, दद्दू बोले, ''हाँ–हाँ।'' फिर गला खँखारते हुए बोले, ''एक दिन वह अपने ऑफिस गया, तो वहाँ अपने सिपाहियों से बोला–'जरा आलमारी से सारी फाइलें तो निकालो, देखें इसमें क्या है?'

''सिपाही एक–एक करके फाइल निकालते जाते और वह उनके ऊपर की गर्द हटाकर उनको देखता जाता। अब वह धीरे–धीरे हतोत्साहित हो चला था। किसी भी फाइल में वह मसाला उसको नहीं मिला, जो उसको चाहिए था। तभी अचानक एक फाइल पर उसकी निगाह पड़ी और उसकी बाछें खिल गईं। उसकी आँखों में बिल्ली जैसी चमक आ गई, जो अपने शिकार को देखकर आती है।

वह बोला, ''यह फाइल मैं अपने घर ले जा रहा हूँ। कल पढ़कर आऊँगा।' अब भला किसकी हिम्मत कि जो उससे पंगा ले! सारे सिपाही मौन। आज तक इस थाने में उन्होंने कुछ कार्य होते हुए नहीं देखा था। उनको लगा कि थाना प्रभारी पगला गया है। पूरी रात वह थाना प्रभारी उस

केस को पढ़ता रहा और उसे क्लू मिल गया। दूसरे दिन उसने उस फाइल को अपने संरक्षण में ले लिया और केस को फिर से चालू कर दिया।''

बच्चों ने उत्सुक होकर पूछा, ''दद्दू, केस क्या था?''

''अभी पता चल जाएगा, बीच में बोलना नहीं।'' फिर वह आगे बोले, ''एक पार्टी तीन साल पहले कलकत्ता बसने चली गयी थी। वही उसी रात कुछ सिपाहियों के साथ कलकत्ता रवाना हो गया और अगली सुबह वांरट के साथ धीरज सिंह के घर के बाहर खड़ा था। दरवाजा खटखटाया, 'धीरज सिंह हैं ?' पुलिस की वरदी देखकर सब आदमी घबरा गए, 'क्या है?'

'साले, पुलिस के मुँह लगता है। जितना पूछा जाए, उतना ही जवाब दे।' उसकी बात में वह कड़की आ गई थी, जितनी अभी तक उसकी जुबान से सिपाहियों ने नहीं सुनी थी।

'अभी तो निकले हुए हैं।'

'झूठ, पूरे घर की तलाशी लो। उनके नाम अरेस्ट वारंट है।'

बरसों बाद जैसा भूखा शेर गोश्त पर टूट पड़ता है, वैसे ही सिपाही अपने शिकार पर टूट पड़े। सर्च चालू हो गई। धीरज सिंह अपने कमरे में कंबल ओढ़कर मुँह औंधाए पड़ा था।''

दद्दू का मानना था कि जीवन की डगर बहुत कठिन है। बच्चों को जितनी जल्दी यह बात समझ में आ जाए, उतना ही अच्छा है।

तभी दद्दू के पास गाँव के ही हुकुम चाचा आकर बैठ गए। बच्चों के हृदय में हूक–सी उठी–लो, अब दिन गया। चाचा यहीं तक कहानी सुनाकर खत्म करेंगे और हुकुम चाचा के साथ गप्पें लगाने लग जाएँगे। दोनों में खूब पटरी बैठती थी। दिन भर चाचा और दद्दू गप्प लड़ाते रहते थे। हुकुम चाचा का घर गाँव की दहलीज की ओर था, जहाँ उनकी जाति की बस्ती थी। पर दद्दू जैसे जात–पात से ऊपर थे। उन्हें हर जाति के लोग मानते थे और राय–मशविरा करते थे। दद्दू भी चाचा को खूब मानते थे। दोनों शायद कहीं एक साथ काम कर चुके थे और जात–पात से ऊपर उठकर इस गाँव के लिए सच्ची मिसाल थे।

बच्चों को वैसा ही छोड़कर दोनों गप्प मारने लगे। तभी छुटकी की अम्मा उसको बुलाने के लिए आ गई। रात घिर रही थी। घर में ढ़ेर सा काम पड़ा था, जो निपटाना था, लेकिन छुटकी भागकर कहानी सुनने आ जाती

थी। लगता था, उसकी अम्मा किसी कारणवश गुस्से में थी, इसलिए आते ही चीखने लगी, ''पूरी शाम सिर्फ कहानी सुनना और तो कुछ काम–धाम रह नहीं गया। लड़की की जात ठहरी। उस पर बड़ी हो रही हो। घर का काम–काज सीखो, तो भला होगा। ये भला क्या कि दद्दू सबको कहानी की लत लगाए हैं। चल, जल्दी चल।''

''अरे, मिट्ठू कहानी सुनकर हमें बता देना। अभी तो शुरुआत है।''

''ऐ, ना जा। दद्दू की कहानियाँ कौनसी लंबी खिंचती हैं! तुरंत खत्म हो जाएगी।''

''नहीं अम्मा मारेगी। मैं लकड़ी भी काटकर उन्हें नहीं दे पाई। सारे बरतन धोने हैं। फिर मैं बाबू को सँभालूँगी, तो माँ खाना पकाएगी। काफी काम पड़ा है। नहीं जाऊँगी, तो बाबू शराब पीकर डंडे से मारेंगे।'' भय से उसके कदमों में तेजी आ गई।

अब सभी बच्चे बेचैन हो रहे थे, पर दद्दू और चाचा की गप्प समाप्त ही नहीं हो रही थी। दरोगा ने इस बीच बगल वाली चाय की दुकान के आदमी को गरमा–गरम चाय और पकौड़ी का ऑर्डर दे दिया था। चाय और पकौड़ी के नाम पर बच्चों की भूख बढ़ गई थी। अब सब एक–एक करके परेशान होने लगे थे।

तभी दद्दू को जैसे होश आया, ''अरे, बच्चों से जरा बात कर लूँ, फिर चुनाव की बातें करते हैं।''

बच्चों ने राहत की साँस ली।

दद्दू बोले, ''हाँ, तो मैं कहाँ था...। धीरज सिंह कंबल के अंदर दुबका हुआ मिल गया। एक डंडा मारकर उसको थानेदार ने बाहर निकाला।

'साला, छुपा बैठा है। बाहर निकल, खून करके गाँव छोड़ दिया और समझा कि मामला रफा–दफा हो गया!' धीरज सिंह बाहर आया।

'सर।' उसकी आवाज में घिग्घी बँधी थी। उसकी चोरी पकड़ी गई थी। वाकई वह दो साल पहले खून करके भागा था। उसके तीन साथी और थे, पर प्रथमतः मुजरिम उसको ही बनाया गया था।

'तुमने क्या समझा, कानून सो गया है? तुमने थानेदार को पैसा खिलाकर मुँह बंद कर दिया और समझा कि सब खेल खत्म!' वह उसके

शरीर पर एक डंडा मारते हुए बोला, 'अरे, कानून के हाथ बहुत लंबे होते हैं। जब जग सोता है, तब कानून अपना कार्य त्वरित गति से कर रहा होता है।'

धीरज सिंह के नीचे से मानो जमीन ही खिसक गई थी। वह गाँव छोड़कर इसीलिए भागा थ कि उसके खिलाफ कार्रवाई न हो। उसने थानेदार का मुँह बंद रखने के लिए काफी रकम दी थी। कैसे मामला बाहर आ गया? किसने गद्दारी की ? खैर, अब तो मामला सँभालना था और कोई चारा न था।

उसने थानेदार को बड़ी इज्जत से अपने ड्राइंगरूम में बैठाया। खूब खातिर की। सिपाहियों की भी इतनी खातिर पहले कभी नहीं हुई थी। खूब छककर खा रहे थे। पूरा कलकत्ता घूमने की मंशा एक ने जताई। दूसरा तो बाल–बच्चों की फरमाइश की लंबी फेहरिस्त ही तैयार कर लाया था।

बंद कमरे में काफी देर तक गुफ्तगू चली। हर बात पर विचार होता रहा। सभी पहलुओं पर खुलकर चर्चा हुई। अंत में, निष्कर्ष यह निकला कि दस लाख पर मामला सुलटा लिया जाए। थानेदार काफी देर तक ईमानदारी का नाटक करता रहा। इससे उसका दाम बढ़ता चला गया। खैर, एक केस में दस लाख रुपये एक वादी से बहुत था।

अभी दो अभियुक्त और बाकी थे। साल भर की राशि एक केस से ही बाहर आ जाएगी। चलते–चलते वह धीरज सिंह से बोला, 'सँभलकर रहना। कानून के हाथ बहुत लंबे होते हैं।' फिर वह हँसते हुए अपने लोगों के साथ मुंबई की ओर चल दिया। दूसरे अभियुक्तों पर भी हाथ डालना था।

दस दिन में पूरे हिन्दुस्तान का सफर कर और तीनों अभियुक्तों से रू–ब–रू होकर वह थानेदार वापस गाँव आ गया और फाइल को धो–पोंछकर वापस आलमारी में रख दिया। फिर सिपाहियों को यह हिदायत दी कि बहुत सँभालकर रख दो। कोई दूसरा समझदार थानेदार आएगा, तो उसके काम आएगी। वह बहुत काम की चीज है।''

''चलो बच्चो, अब भागो। हमें चाय–पकौड़े खाने दो।''

बच्चे अब उठने लगे थे। सारे बच्चे लौटते हुए उस थानेदार की अक्लमंदी के चर्चे करते जा रहे थे और सोच रहे थे कि वह कौन होगा?

उधर दद्दू, चाचा और दरोगा चाय–पकौड़े पर गप्प कर रहे थे। इस घटना को काफी वक्त बीत गया। हम सब भी बड़े हो गए और अलग–अलग

दिशा में आगे बढ़ गए। अभी कुछ दिन पहले गाँव जाना हुआ। पता चला कि दद्दू अब इस दुनिया में नहीं रहे।

हुकुम चाचा से खैरियत पूछने गए, तो दद्दू की बात निकल आई। किस्से–कहानियों का दौर चल पड़ा। उपरोक्त घटना की भी चर्चा हुई।

''अच्छा चाचा, उस दिन की कहानी में दद्दू को उस घटना का इतनी अच्छी तरह पता कैसे था?''

चाचा थोड़ा रुके, फिर ठठाकर हँसे, ''अरे बुद्धू, वह थानेदार तो स्वयं दद्दू ही थे।''

सच में बुद्धू बन जाने का एहसास साल गया। हम बच्चे समझ ही नहीं पाए कि दद्दू अपने जीवन की घटना को ही कहानी बनाकर सुनाते थे। सच में, जीवन एक कहानी ही तो है और हम सब पात्र!

■

परिचय

''आपका परिचय.....''

''जी, मैं मिसेज आरती सिन्हा।''

आरती एक मध्यम आकार और ठीक–ठाक डील–डौल वाली महिला थी। चेहरा सुंदर था और बाल व्यवस्थित होते हुए भी तितर–बितर, पर कहीं–न–कहीं दृढ़ संकल्प बोलता था।

सामने बैठे प्रधानाचार्य ने पहला प्रश्न ही यह दागा, ''अब इतने वर्ष बीतने के बाद नौकरी में आने का मकसद?'' आरती कहना चाहती थी कि वह घर बैठे–बैठे बोर हो गयी है, जीवन निरूद्देश्य हो गया है, अब घुटन होती है और निरर्थक जीवन की चीख उसके मन में बेहद कौंधती है और उसे बेचैन कर देती है। वह कैद से भागना चाहती है, वह शायद अब अपने से भागना चाहती है, उसे आजादी चाहिए। मुँह से इसके पहले कि यह स्वर निकलते, बस और नहीं, वह सिर्फ इतना ही बोल पाई–

''जी, मैं शिक्षित हूँ और शिक्षा का उपयोग करना चाहती हूँ। अब बच्चों और पति को मेरी जरूरत नहीं, अतः अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती हूँ।''

प्रिंसिपल ने ऐनक के पीछे से उसकी तरफ देखा, मानो बाहर से ही उसे पढ़ लेना चाहता हो और उसकी कमजोरी को मानो ताड़ ले रहा हो। थी तो वह औरत ही, तो क्या वजूद और परिचय तो उसके पति से जुड़ा था। आरती को आत्मग्लानि हुई, तो क्या वह विद्रोही है या फिर वह सिरफिरी, जो अपने अच्छे–खासे घर को दाँव पर लगाकर काम करने निकली है।

सहसा उसके हाथ पसीने से तर बतर हो गए और वह अंदर–ही–अंदर काँप उठी। उसने हँसकर जिक्र अपने माता–पिता से किया था। पिता हँस दिए थे, पर माँ ने उसे बहुत समझाया था–

''क्यों अपने अच्छे–खासे घर में आग लगा रही हो? पैसे की ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी कि अब इस उम्र में नौकरी करने निकलोगी? घर

कैसे चलेगा, पति के पहले अगर निकल गई तो फिर सब कैसे होगा? मैंने अपने पति और बच्चों के लिए अपना जीवन कुरबान कर दिया। आज उसी कुरबानी की देन तुम और तुम्हारा भाई है। इतने अच्छे संस्कार मैं तुम दोनों को दे पाई! क्या जरूरत है नौकरी की ?''

आरती ने अपनी माँ की तरफ देखा। उस कुरबानी का आकलन उसने करना शुरू किया। माँ के चेहरे पर जीवन की थकान बहुत पहले ही आ गई थी। जीवन की नीरसता उनकी तमाम बीमारियों के रूप में उनको निगल जाने के लिए तैयार खड़ी थी। शायद उसकी माँ हँसती कम थीं और क्रोध उनका व्यक्तित्व बन गया था। नहीं, वह माँ नहीं बनना चाहती, किसी भी कीमत पर नहीं। यह तो उसे पक्का पता था और वह समय से पहले मरना नहीं चाहती थी और यह वह ठान चुकी थी। उसका मन कुरबानी की कोई विशेष उपलब्धि नहीं जान पाया, क्योंकि वह और उसके भाई जीवन में ऐसा तो कुछ हासिल नहीं कर पाए। साधारण इंसान बनना कोई अहं की तुष्टि नहीं है। शायद माँ का मातृत्व अपने लालन–पालन की विफलता को स्वीकार नहीं करना चाहता था।

प्रिंसिपल ने कुछ और प्रश्न पूछे। एकाध उसके विषय से जुड़े हुए थे और सामने बैठे सज्जन अपनी नाक पर चश्मा ठीक करते हुए आरती के बायोडाटा का ब्योरा सिलसिलेवार देखने लगे।

सामने बैठे सज्जन एक स्थानीय स्कूल के प्रधानाचार्य थे और आरती उनके स्कूल में शिक्षिका की नौकरी के लिए आवेदन देने आई थी। आरती से अनेकानेक प्रश्न पूछने के बाद जब उनको संतुष्टि मिल गई और उसके उत्तर उनको ठीक–ठाक लगे तो आरती को दूसरे दिन नौकरी के लिए बुला लिया।

दूसरे दिन से आरती को काम पर आ जाना था। इसका उसको तो पहले से ही एहसास था कि उसके अंदर क्षमता थी और वह काम कर सकती थी। रह–रहकर अपने छात्र–जीवन की उपलब्धियाँ उसके सम्मुख चलचित्र के समान दृष्टिगोचर हो जातीं। उसके तो पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। लग रहा था, मानो इस उपलब्धि का कागज ले जाकर पूरी दुनिया को बतलाऊँ। उसने प्रिंसिपल से धीरे से कागज ले लिया और उनके सम्मुख सिर्फ इतना ही बोल पाई–

''जी, कितने बजे आना है?'' उनसे समय पूछकर वह बाहर आ गई।

बाहर आकर तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा, कहाँ वह सिर्फ आवेदन देने आई थी और कहाँ यहाँ तो नौकरी स्वयं उसके पास चलकर आ गई! उसके तो मारे खुशी के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। अच्छी–खासी तनख्वाह मिलेगी, उससे उसके सारे खर्च निकल जाएँगे।

तुरंत बाहर निकलते हुए एक किलो मिठाई का डब्बा लिया और अपनी माँ के घर पहुँच गई। उसकी माँ भी उसी शहर में रहती थी और उसके यहाँ संयुक्त परिवार था। जैसे ही उसने कॉलबेल बजाई, दरवाजा उसके ताऊजी ने खोला। अभी वह पूरी तरह से खोल भी नहीं पाए थे कि पीछे से दादी ने चिल्लाकर पूछा, ''कौन?'' चूँकि दादी अब बूढ़ी हो गई थीं, इसलिए दीवान पर पड़े–पड़े दिन भर वह हर आने–जाने वाले पर निगाह रखे रहतीं थी।

''माँ, भुवन की बेटी आई है। देखो, उसको बोल दो कि पहले मुझसे मिलकर ही अंदर जाएगी।''

दादी से उसको गहरा लगाव था, इसलिए उस लिहाज से वह सबसे पहले उनको जाकर ही यह खुशखबरी सुनाना चाहती थी।

आज दादी का शरीर मात्र हड्डियों का एक ढाँचा होता जा रहा है। अब उनकी काया को एक मुट्ठी में भर लेने का आसानी से उपक्रम किया जा सकता था। कभी वह बहुत लंबी–चौड़ी हुआ करती थीं और पूरे घर पर उनकी हुकूमत चलती थी। वह वक्त अब कहाँ!

बचपन से दादी ही उसे पढ़ाई के लिए प्रोत्साहित करती थीं। उस जमाने में उनकी ननद की पोती, जिसका नाम जूली था, एक अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाती थी। और जब कभी जूली उन लोगों से मिलने आती तो छोटी–सी, सुंदर–सी जूली दीदी गिटपिट अंग्रेजी में बोलती तो दादी को कहीं यह एहसास होता कि छोटी भी, सुंदर–सी जूली दीदी जैसा बने। हालाँकि वह जूली दीदी जितनी खूबसूरत न थी, पर दादी के मन में एक अरमान जग जाता कि उनकी पोती भी किसी लिहाज से जूली दीदी से कमतर न निकलेगी। सबके ढ़ेर विरोध के बाद भी आरती का दाखिला एक अंग्रेजी स्कूल में हो गया। उस समय अंग्रेजी स्कूल में तो बाहर से आकर अंग्रेजी नन स्कूल चलाती थीं और आरती के दादा को भय था कि उनकी पोती जरूर अंग्रेजी मेम बन जाएगी।

''मैं कहे देता हूँ, अगर भुवन की बेटी बिगड़कर स्कूल से न निकले तो जो तुम कहोगी, मैं हार जाऊँगा।'' दादा हड़कते हुए बोले।

अब दादी भी कहाँ हार माननेवाली थीं! तीन बेटों के बीच में उनकी अकेली लाडली पोती–प्यार से पूरी बिगड़ी हुई थी और वह कहाँ टस–से–मस होनेवाली थीं। लिहाजा आरती अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने चली गई।

आरती की नौकरी की खबर सुन, इस उम्र में भी ढ़ेर सपने दादी की आँखों में तैर गए। आरती को ढ़ेरों आशीष दे, वह अपनी जीत पर मुहर लगाना चाहती थीं। शायद, यह आरती की सफलता न होकर कहीं–न–कहीं उनकी सफलता थी, जो आरती के मार्फ़त फलीभूत हुई थी।

दादी से भेंट कर, मैं थोड़ा समय अपनी माँ के पास बिताकर घर की वापसी के लिए निकल गई।

रास्ते में उसकी एक सहेली का घर पड़ता था।

सोचा, चलो उसके यहाँ भी थोड़ा वक्त बिता लिया जाए। फिर कल से तो स्कूल में व्यस्त हो जाएँगे तो कहाँ निकलना होगा।

दरवाजा खटखटाने पर गुड्डू ने दरवाजा खोला। पीछे से उसकी माँ, यानी आरती की सहेली की आवाज आई–

''कौन है ?''

''माँ, चिंटू की मम्मी।''

''अरे वाह, भेज दे अंदर।''

उसकी सहेली प्रतिमा कपड़े प्रेस कर रही थी। जैसे ही वह अंदर पहुँची, वह आकर उससे लिपट गई।

''अरे! बहुत दिनों बाद आना हुआ, क्या इतनी व्यस्त हो गई कि मुझे भूल गई?'' प्रतिमा के स्वर में थोड़ी नाराजगी थी।

''अरे वाह, ऐसा भी कभी हो सकता है, देख मैं इसीलिए न तुझसे मिलने चली आई। एक तू है, कभी याद ही नहीं करती।''

उसके साथ गप–शप में कब वक्त बीत गया, इसका अंदाजा आरती को तब लगा, जब घड़ी पर निगाह गई। ''अरे! डेढ़ बज रहे हैं, अब चलना चाहिए। बच्चों को भी लेने जाना है और रास्ते में कुछ सामान भी खरीदना है।''

पसीने से तर–ब–तर वह बच्चों के स्कूल पहुँची। अभी स्कूल की छुट्टी होने में वक्त था। वह थोड़ा थक भी गई थी, अतः वक्त काटने के लिए एक पेड़ की नीचे बैठ गई। तभी उसके पति के दोस्त की पत्नी सामने से आती दिखी। उनको वह काफी समय के बाद मिल रही थी, ''अरे मिसेज सिन्हा, अगर मैं भूल नहीं कर रही तो आप विनोद जी की पत्नी हैं। अरे, बाल–वाल कटवाकर तो आप पहचान में ही नहीं आ रहीं हैं!'' उसकी भाषा में थोड़ा व्यंग्य था।

उनके वाक्य सुनकर उसे थोड़ी कोफ्त भी हुई और गुस्सा भी आया। न जान, न पहचान, पर लोगों में यह आदत जरूर होती है कि वह कटाक्ष करेंगे। बिना कटाक्ष किए शायद खाना हजम नहीं होता। फिर दूसरों की व्यक्तिगत जीवन शैली, जिससे उनका कुछ लेना–देना नहीं है, उसको जरूर हमेशा इंगित करेंगे। शायद उससे भी ज्यादा कोफ्त हो रही थी कि सुबह से सिर्फ वह किसी की बेटी या किसी की माँ या किसी की बीवी थी। एक नारी, जिसका नाम आरती था, उसका शायद कोई व्यक्तित्व नहीं था।

खैर, दुनियादारी की खातिर उनसे थोड़ा कुशल–क्षेम हुआ, तब तक बच्चों की छुट्टी का वक्त हो गया था। उनको लेकर टैंपो वाले को घर चलने का निर्देश दिया।

घर पहुँचकर भी काफी व्यस्त दिन बीता। वह रह–रहकर अपने पति के आने का इंतजार कर रही थी। आज उसको नौकरी मिली थी, यह खुशी वह अपने पति के साथ बाँटना चाहती थी।

जब उसके पति शाम को घर लौटकर आए तो उनका मूड थोड़ा ऑफ था। शायद ऑफिस में किसी से बक–झक या किच–किच हुई थी। उनसे बात करने की हिम्मत भी वह नहीं जुटा पा रही थी। अपनी खुशखबरी बाँटने के पहले वह पति की तकलीफ को बाँटना चाहती थी।

''क्या हुआ?''

''कुछ भी नहीं।''

''फिर आपका मूड क्यों इतना खराब है?''

''अब हर बात मैं तुमको नहीं न बता सकता, तुम अपने काम से काम रखा करो। औरतों को वैसे भी ज्यादा बक–झक करना शोभा नहीं देता।''

आरती अपने जज्बातों पर नियंत्रण रखे हुए थी।

''फिर भी!''

''कहा न, मेरे काम में टाँग मत अड़ाया करो। अब अगर तुमने एक शब्द भी बोला तो मैं गाली–गलौज करने लगूँगा। तुम्हारी जिंदगी नरक कर दूँगा।''

आरती का पति थोड़ा नहीं, अच्छा–खासा गुस्सैल था। अगर उसके मतलब की बात नहीं होती थी या उसको कुछ पंसद नहीं आता था तो वह हंगामा और तमाशा करने लगता था।

आरती समझ गई, जरूर ऑफिस में झगड़ा करके आए हैं और उसका गुस्सा उसके ऊपर निकाल रहे हैं।

औरत के तकदीर में शायद झिड़की ही लिखी है। ऐसे बेबस क्यों हो जाती है नारी कि चाहकर भी अपने ऊपर हो रहे प्रतिरोध को रोक पाने की क्षमता उसमें नहीं होती ?

तभी घंटी बजती है। सामने आरती के पति के मित्र खड़े हैं।

''अरे, भाभीजी आप! कैसी हैं? और सब कैसा चल रहा है?''

और आरती उनसे हँस–हँसकर बात करने लगी।

''अरे भाई साहब, आप थोड़ा बैठिए, मैं बुलाती हूँ विनोद को। वैसे आज उनकी तबीयत कुछ ठीक नहीं है। वह मुँह औंधाए पड़े हैं।''

''अच्छा, क्या हुआ ?''

अभी आरती बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि विनोद ने कमरे में प्रवेश किया, ''अरे किशन, कब आना हुआ ?''

''बस यार, अभी आया हूँ। सोचा, थोड़ा भाभी से भी गप–शप हो जाए। तब तुमको उठाया जाए।''

''हाँ भाई, इधर मैं देख रहा हूँ कि तुम अपनी भाभी से कुछ ज्यादा ही गप–शप करने लगे हो। भाई, ऐसी हमारी किस्मत कहाँ!'' विनोद के स्वर में व्यंग्य मिश्रित तीखापन था।

आरती भी वाक्य के अंदर निहित व्यंग्य को समझ गई थी। वह तुरंत अचकचाकर रसोईघर में चली गई।

आरती ने महसूस किया कि पूरा समय विनोद का मुँह बना हुआ था। किशन के जाते ही विनोद अपने कमरे में आ गए। आरती आनेवाले तूफान

को भाँपकर काफी घबराई हुई थी। वह विनोद के बगल में काफी देर बैठी रही, पर वह कुछ भी न बोला।

आरती को भाँपते देर न लगी कि विनोद अब गुस्से और शक से पूर्णतः पीड़ित है।

''क्या हुआ ?'' उसने बात सँभालने की कोशिश की।

''कुछ नहीं।'' काफी देर बाद विनोद बोला, ''आपने नौकरी कर ली है और इसकी सूचना अब मुझे गैरों से मिलेगी।''

''अब आप ही इतने गुस्से में थे कि कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे तो मैं क्या करती? मैं तो आते ही बताना चाह रही थी।''

''हाँ, अब नौकरी करो। ऐश है भाई, ऐश!''

''आप तो खामखाँ बात का बतंगड़ बना रहे हैं।''

''बात का बतंगड़! तुमने तो जिंदगी को ही तमाशा बना दिया है।''

अब आरती की सहनशक्ति की सीमा चुक रही थी। वह चीखकर बोली, ''आप पुरुष अपने को समझते क्या हैं ? जब मन में आया चीख दिए, जब मन में आया गुस्सा हो लिए। जो मन में आया, बोल दिए और जब मन में आया तो छोड़ दिए! आप समझते हैं कि औरत का न ही कोई अस्तित्व होता है, न परिचय। उसको अपनी पहचान के लिए भी आप पुरुषों की जरूरत पड़ती है। इसका आप लोग नाजायज फायदा उठाते हैं। हम औरतों का भी अस्तित्व है। अपना एक व्यक्तित्व है।''

दृढ़ विश्वास के साथ वह दूसरे दिन के लिए अपने आपको मानसिक तौर पर तैयार कर, सोने चली गई।

दूसरे दिन जब वह उठी तो अपने को काफी हल्का महसूस कर रही थी। अच्छे से तैयार होते हुए उसका मन काफी प्रफुल्लित था।

आज से उसकी एक नई पहचान थी, जीवन की नई शुरूआत।

किसी के पूछने पर वह बोल सकती है–

''मैं, श्रीमती आरती सिन्हा, शिक्षिका ओरबिट इन्टरनेशनल हाई स्कूल।''

उसने एक दृष्टि अपने पति पर डाली। वह अभी भी सो रहे थे। पुरुष जागता कब है, वह तो सारी उम्र अपनी आँख मूँद बेपरवाह सोता रहता है। किसी की पीड़ा के प्रति वह तब ही जाग पाता है, जब उसको स्वयं पीड़ा पहुँचती है।

दंभी, अभिमानी पुरुष वर्ग तो अबला को सताकर उत्साहित रहता है। वह अपनी पहचान किसी को दमन कर बनाता है। शायद हिटलर और उसके वर्ग में कोई विशेष अंतर नहीं है।

आरती फटाफट सीढ़ियाँ लाँघती हुई स्कूल के लिए निकल पड़ी। आज वह स्वच्छंद आसमान की सारी ऊँचाईयों को छू लेना चाहती थी। वह सारी सीमाएँ लाँघ जाना चाहती थी।

वह अपने नए परिचय के आत्मविश्वास के साथ नई सुबह की शुरूआत में और उसके स्वागत में लग गई।

''गुड मार्निंग मैम, ''एक छोटे से बच्चे के स्वागत ने उसके जीवन को नई पहचान मिल गई! नया परिचय।

■

जाम

''अरे, ड्राइवर क्या हुआ ?''

''कुछ नहीं मैडम, आगे सड़क जाम है।''

''क्या हो गया, देखो तो !''

''जी मैडम!''

भावना और सुनीता आज मार्केट निकले थे। घर में शादी थी और उसी की तैयारी करनी थी। शादी का वक्त भी कम ही रह गया था, इसलिए तैयारी की भी हडबड़ी थी।

''देखो, किसी तरह से भी मार्केट पहुँच सकें। रोज–रोज तो आना होता नहीं है।''

''हाँ, सही बात है। देख ले, अगर कहीं से भी मार्केट निकल चलें।'' सुनीता बोली।

''जी।'' कहकर ड्राइवर उतरकर थोड़ा आगे बढ़कर स्थिति का मुआयना करने लगा। वापस आकर बोला, ''बाप रे, मेमसाहब पूरा जाम है। डॉक्टरों का प्रदर्शन है। उनका कहना है कि डॉ. चंद्रा के बेटे को अपहरणकर्ताओं के चंगुल से जब तक छुड़ाया नहीं जाएगा, तब तक वह ऐसे ही प्रदर्शन करेंगे। डॉ. चंद्रा का इकलौता बेटा था। माँ सुनते ही हॉस्पिटल में है।''

''ओहो ! तो वापस मोड़ लो !''

ड्राइवर मुड़कर पीछे देखता है। पीछे काफी काफिला इकट्ठा हो गया था। ''ऐसा करो, स्वराजपुरो रोड पर मोड़ लो। वहाँ से निकल लेंगे।'' भावना बोली।

ड्राइवर अभी कुछ उपाय निकालने की सोच ही रहा था कि दो गाड़ी छोड़ खड़े टैंपो में महिला दर्द से कराहने लगी। उसके साथ उसका पति और सास थी। उनका भी हाथ–पाँव फूल गया। पति तुरंत टैंपों से कूद

गया और बोला, ''कोई मेरी पत्नी की मदद करो। इसको प्रसव–पीड़ा हो रही है। इसे यहाँ से बाहर निकालो।''

पति परेशान सा इधर–उधर मदद के लिए हाथ–पैर मार रहा था। बूढ़ी सास बहू को बीच–बीच में सँभालने का असफल प्रयास कर रही थी।

तभी पीछे से कोई बोला कि, ''जरा आगे जाकर क्यों नहीं मदद लेते हो ? आगे तो सब–के–सब डॉक्टर ही हैं। कोई–न–कोई मदद के लिए जरूर आएगा।'' पति अपना पसीना पोंछकर गाड़ियों के काफिले में से डॉक्टर लोगों के पास आगे बढ़ा।

''चलो, अच्छा है हड़ताल और प्रदर्शन डॉक्टरों का है, इसको मदद मिल जाएगी।'' भावना ने थोड़ी राहत की साँस ली।

उस महिला का दर्द असहनीय था। औरतों का तो हुजूम ही पूरा जैसे उमड़ पड़ा था। सब तरह–तरह के उपदेश और सलाह उसको देते जा रहे थे।

''बस बेटा, थोड़ा सा और सह लो। डॉक्टर आते ही होंगे। प्रशांत गया है न! मदद लेकर ही आएगा।'' और मदद की आशा में वह औरत कुछ देर चुप हो जाती, पर जब दर्द फिर असहनीय होता तो चिल्ला पड़ती।

पीछे एक सज्जन आकर जानने की चेष्टा करने लगे कि क्या हुआ है? उनके हाथ में फाइल का एक बंडल था।

''अरे बाबा, ये क्या हुआ है ?'' फिर हैरान–परेशान वह घड़ी देखते और चिंतित हो उठते–''ये जाम कब से है ?''

दूसरा सहयात्री उकताकर बोला, ''अगर हमे पता होता कि कब से है, तो यूँ आकर नहीं न फँसते।'' सब लोगों की खिझलाहट बढ़ती जा रही थी।

''अरे, क्या जाम को साफ करने कोई पुलिसवाला इधर नहीं आ रहा है?'' वही सज्जन फिर बोले।

''आएगा, आएगा। क्यों नहीं आएगा। पहले शहर का कचड़ा साफ करवाएगा, फिर जाम भी अपने आप साफ हो जाएगा। अरे, क्यों चिंता करते हो भाई? शांत बैठो। गरमी की प्रचंडता तो दिमाग में तांडव कर रही है। शांत बैठो भाई।'' वह झुँझलाकर बोला।

वह सज्जन चिढ़कर बोले, ''क्या खाक शांत बैठें। 11 बजे मेरा इंटरव्यू था। नौकरी करीब–करीब पक्की थी। अभी साढ़े बारह होने को आ रहे हैं और हम यहाँ फँसे हुए हैं!''

वह एक कोने में सिर पकड़कर बैठ गया। उसका नाम शिव प्रकाश था। जो उस उम्र के हर नौजवान की स्थिति होती है, वहीं उसकी भी थी। उसको एक अच्छी नौकरी की तलाश थी। अच्छी न भी सही तो कोई नौकरी भी चलेगी; क्योंकि उसके घर की पारिवारिक स्थिति कमजोर थी। पिताजी ब्लॉक ऑफिस में चतुर्थ वर्ग के कर्मचारी थे। तनख्वाह से जिंदगी तो अच्छे से काट ली, पर उससे ज्यादा कुछ न कर पाए। तीन–तीन बेटियाँ थीं ब्याहने को। पहले की तो नौकरी रहते ही किसी तरह निपटा दिया, पर उससे ज्यादा उनकी सामर्थ्य न हो पाई। दो कुँवारी बहन का बोझ आ पड़ा, शिव प्रसाद के कंधे पर। पेंशन से बस गुजर–बसर हो पाता था। अपना मकान भी बना पाने में वह असमर्थ रहे थे। एक जगह बहन के ब्याह की बात चल रही थी। बात करीब–करीब तय थी। दिक्कत सिर्फ दहेज पर आकर रुक गई थी। बूढ़े लाचार माँ–बाप की आँखों में सर्वथा निराशा रहती थी। निराशा को आशा में बदल पाना शिव प्रसाद के लिए इतना आसान न था। आज वाली नौकरी के प्रति उसकी संभावना बहुत थी। पर इस प्रकार जाम में फँस जाने से उसका वक्त काफी बरबाद हो गया था। अगर नौकरी मिल जाती तो इस सप्ताह वह बरीक्षा लड़केवालों को दे देता।

ऑफिस जाने के लिए कोई दूसरा रास्ता भी ना था। वह ऐसे मोड़ पर आकर फँस गया था कि न आगे जा सका था, न पीछे। ऐसा कभी–कभी जिंदगी के साथ होता है। जब आगे बढ़ने का रास्ता सिर्फ एक ही नजर आता है और वह भी अवरूद्ध हो जाता है। शिव प्रसाद की आँखों के आगे माता–पिता का चेहरा स्पष्ट रूप से घूम रहा था। उन्होंने चलने के पहले उसको कितना सहलाकर विदा किया था। पिता तो देर तक हाथ पकड़कर मौन खड़े थे। माँ ने अदृश्य देवों से मनौतियाँ माँग उसकी सफलता की कामना की थी। बहन तो दूर तक उसको छोड़ने आई थी। वह हताश बैठा रहा। उसकी आँखों से बड़े–बड़े आँसू टपककर उसकी फाइल पर गिर रहे थे। अच्छा ही था, कम–से–कम सारी उपलब्धियों को विस्मृत कर रहे थे।

उधर उस महिला को भी दर्द अब न सहा जा रहा था। सहते–सहते वह बेहोश सी हो गयी थी। नयी जिन्दगी शायद जाम के चक्कर में कहीं फँस गयी थी।

डॉक्टर अभी भी चिल्ला रहे थे। उनकी माँगे पूरी करने में पूरा प्रशासन लगा था। जाम से सर्वथा बेखबर। जीवन जीते–जीते हम अनायास कब जाम में फँस जाते हैं, हम भी नहीं जानते। ■

कूँ-कूँ

''कूँ–कूँ।'' हल्के स्वर में बाहर टिप्सी रिरिया रहा था। ठंड की रात थी और सीढ़ियों पर थक–हारकर बैठ गया। उसे उम्मीद थी कि छोटू उसकी आवाज बस सुन ही लेगा। उसने एकबारगी कस के भौंकना चाहा, पर इस घर की मालकिन यानी छोटू की माँ ने रात में बिना कारण भौंकने के लिए मना किया था। और वह उनसे डरता था, शायद थोड़ा–थोड़ा प्यार भी करता था, और बेवजह रात में उनकी नींद में खलल नहीं डालना चाहता था।

छोटू को नींद में लगा, जैसे उसका टिप्सी आया है। उसको बुला रहा है और उसे मदद की जरूरत है। वह काफी देर बिस्तर पर लेटा रहा और आँख खोल छत की तरफ ताकता रहा।

नहीं, शायद मन का भ्रम था। टिप्सी तो सिकंदर के पास था। कल गाँव से दादी आई थीं और उनके आने के पहले से ही घर में मानो बवाल सा मच गया था। पूरे घर की कस के सफाई हुई। मीट के बरतनों को एक कोने में रख दिया गया–ताले में बंद करके। पिताजी थोड़ा झुँझलाए, पर बात अपनी माँ की थी, लिहाजा ज्यादा बोलते न बना।

सवाल आकर खड़ा हो गया, टिप्सी का। एक तो कुत्ता, दूसरे एक गैर धर्म के यहाँ से आया था, अतः उसकी पवित्रता पर प्रश्नचिन्ह लग गया था।

छोटू और सिकंदर के पिता जिगरी दोस्त थे। एक ही विभाग में रहते हुए दोनों का घर भी पास–पास था। दिन–रात का उठना–बैठना था। बच्चों में भी अच्छी दोस्ती थी। कोई दिन ऐसा नहीं होता था, जब दोनों एक–दूसरे को देखे बिना काट दें। सिकंदर के पास पॉमेरियन नस्ल की कुतिया थी और बच्चे देनेवाली थी। छोटू जिद पर अड़ गया कि उसको भी एक चाहिए।

उसके जन्मदिन पर रूई के फाहे–सा कोमल टिप्सी डलिया के अंदर बैठे तोहफे के रूप में उसके पास पहुँच गया। धीरे–धीरे छोटू का वह

दिलअजीज बन गया। जहाँ छोटू, वहाँ टिप्सी और जहाँ टिप्सी, वहाँ छोटू। स्कूल से आते ही बैग एक तरफ फेंक छोटू टिप्सी के साथ खेल में व्यस्त हो जाता। टिप्सी भी जैसे दरवाजे पर बैठकर इंतजार करता। घर में कोई बुलाता रह जाता, पर टिप्सी उसी कोने में बैठा रहता।

कल वही टिप्सी छोटू से जुदा होकर सिकंदर के घर चला गया था। छोटू रोता रहा था और टिप्सी कूँकता रहा था। फिर उसी सुबह दादी आ गई। न छोटू स्कूल गया और न ही टिप्सी ने सिकंदर के घर खाना खाया। सिर्फ एक कोने में बैठा रहा और एकटक दरवाजे की तरफ निहारता रहा–शायद अब छोटू आएगा और उसे यहाँ से ले जाएगा! छोटू तो आ न सका। टिप्सी की माँ जरूर आकर उसको दो–तीन बार चाट गई। माँ का स्नेह भी उसकी निष्ठा और चाहत को डिगा न पाया। एक बार भी उसने सिर उठाकर माँ की तरफ नहीं देखा।

''हूँ, मैं क्यों देखूँ? यही माँ थी, जिन्होंने छोटे में मुझे त्याग दिया था! उस समय मुझे कितना कष्ट का अनुभव हुआ था। एक बार भी मिलने नहीं आई। जब मोह टूट गया तो दुबारा पैदा करने का क्या तुक? ''और वह सिर के आगे के पैरों के बीच में रखकर लेटा–बैठा रहा। सिकंदर बीच–बीच में दूध–रोटी उसके सामने रख गया। यह भी कोई दूध है, कोई रोटी है! इसमें वह बात कहाँ! और वह लेटा रहा।

रात को टिप्सी और उसकी माँ को बाहर ही लॉन में खुला छोड़ दिया गया। टिप्सी रात गहराने का इंतजार कर रहा था। पहला मौका पाते ही उसने पीछे वाले गेट के नीचे से निकल भागने में सफलता पाई। पीछे नौकरों का क्वार्टर था और वहीं पर वह छोटा गेट था–लकड़ी का, जो जमीन को नहीं छूता था और टिप्सी उसी में से भागने में सफल हुआ था।

गहन अँधेरी रात में एक बार तो उसका मन काँपा, पर फिर छोटू की याद ने सब भय को गौण कर दिया। प्रेम वस्तु ही ऐसी है। उसके आगे सबकुछ गौण हो जाता है, जीवन का मोह भी।

टिप्सी छोटू के घर के बाहर बैठकर कूँकता रहा। फिर थककर बैठ गया और सुबह होने का इंतजार करने लगा।

छोटू जैसे स्वप्न से जागा। नहीं, उसका अपना टिप्सी ही है! अगर नहीं होगा तो वह वापस आकर लेट जाएगा। एक बार देख आने में क्या हर्ज है? और वह धीरे से उठा, फिर दादी उठ जाएँगी और डाँटेगी। फिर इस डर

से लेट गया। दादी नहीं उठीं तो उसका साहस बढ़ा। दुबारा उठकर दबे पाँव वह बाहर आ गया। पूजाघर की रोशनी जल रही थी। दादी के आने के बाद अब वहाँ रोशनी रहेगी, ऐसा दादी का आदेश था। रात–विरात उनको उठाना पड़ता था तो कहीं चोट न खा जाएँ। वैसे उसने सुबह माँ को कहते सुना था, "ऐसा कब तक होगा? उनके आने से पूरा घर ही अस्त–व्यस्त हो गया। जिधर देखो, उधर उनकी मरजी ही चलती है। मेरे को अपने घर का एहसास हो ही नहीं रहा है। पूछ लो, अगर ज्यादा दिन रहने का प्रोग्राम हो तो मैं मायके ही चली जाऊँगी।'

'ओफ,' तुम भी बस, अभी माँ को आए जुम्मा–जुम दो–चार घंटे हुए हैं और तुम्हारी आफत शुरू।' पापा तैश में बाहर चले गए।

जरूर सिकंदर के घर गए होंगे। वहीं बैठकर सिगरेट पिएँगे और अपना गुस्सा वहीं उतारकर आ जाएँगे।

'ये दादी थी!' छोटू ने मन–ही मन अपने को डाँटा, ' नहीं, दादी के लिए कुछ भी गलत नहीं सोचना चाहिए। दादी इतना भी खयाल नहीं रख सकतीं कि टिप्सी सिर्फ एक छोटा प्यारा कुत्ता है। वह तो अभी बच्चा है। किसी को काटता भी नहीं, फिर इतना क्या डरना? क्या हुआ, अगर सिकंदर के यहाँ से आया है? सिकंदर और मुझमें फर्क भी क्या है? जब से आई हैं, तब से सिंकदर और उसके पिताजी भी घर नहीं आ रहे। क्या सोचते होंगे? जब वह बड़ा होगा तो दादी को समझाएगा। कौन उनको समझाए कि पिछली बार जब वह अस्पताल में थीं तो डॉ. रहमान ने ही उनका इलाज किया था! वह सिकंदर के मामू लगते हैं और जो एक बोतल खून उनको चढ़ा था, वह सिकंदर के पिताजी ने दिया था। दादी भी न!'

अंदर की पीली रोशनी बाहर सीढ़ियों पर पड़ी। वहाँ कोई लेटा था। जरूर मेरा टिप्सी होगा! उसके अलावा और कौन हो सकता है? वह भागा गया। टिप्सी भी उसके कदमों की पद्चाप सुन, उठ गया था। दोनों की आँखें मिलीं और जैसे सब सुख–दुःख कहे बिना बयाँ हो गया।

"कैसे हो टिप्सी?" और टिप्सी उसका जँगले पर हाथ चाटने लगा। मेन गेट से मैं देखता हूँ कि मैं खोल पाऊँ। चाभी फ्रिज के ऊपर लटकी रहती है। उसने स्टूल सटाकर चढ़ने को कोशिश की, पर नाकाम रहा। हल्का–सा स्टूल खिसका और वह गिरते–गिरते बचा।

"कौन है?" दादी की आवाज आई।

छोटू की तो रूह ही काँप उठी और वह दीवार से सटकर खड़ा हो गया। दादी, माँ को उठाएँगी और वह माँ से बहुत डरता था। माँ अच्छे से धुलाई कर देंगी। जब काफी देर तक कुछ नहीं हुआ तो उसने राहत की साँस ली।

टिप्सी, वह उसका क्या करें? उसने थोड़ा आस–पास चाभी ढूँढ़ने की कोशिश की, पर सब नाकाम। अंत में कुछ न सूझा तो दूध और ब्रेड फ्रिज से निकालकर टिप्सी के डिब्बे में डाल दिया। डिब्बे को बरामदे से निकालकर बाहर ले आया और टिप्सी के पास लेकर पहुँचा। डिब्बा तो जंगले के बाहर पहुँचाना है न! डिब्बे को बाहर पहुँचाने के क्रम में दूध और ब्रेड गिर गया। जो थोड़ा–बहुत दूध बाहर गिरा था, टिप्सी उसको चाट गया।

"टिप्सी, तुम ठीक तो हो" और सींखचों के बीच में हाथ–बढ़ाकर वह टिप्सी को सहलाने लगा। सहलाते–सहलाते कब आँख लग गई, पता ही न चला। टिप्सी भी उसके हाथ पर अपना सिर रख, सो गया। दोनों पूरी रात वैसे ही सोते रहे।

सुबह हो चली थी। दूर क्षितिज पर लालिमा फैलने लगी थी।

कूँ–कूँ की आवाज तो तब हुई जब पिता ने दरवाजा खोला। टिप्सी भाग कर अपने घर के अन्दर आ गया। .....दादी की निगाह से बचते हुए वह अपने चिर परिचित कोने में लेट गया।

छोटू टिप्सी के लिए दूध निकाल रहा था। टिप्सी कटोरे में से दूध पीने लगा। छोटू धीरे–धीरे उसे सहला रहा था।

अभी दादी को उठने में काफी विलम्ब था।

■